वैदिक कथाओं का आलोचनात्मक अध्ययन

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल० उपाधि हेतु
प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध

पर्यवेक्षक
डॉ० चन्द्र भूषण मिश्र
पूर्व आचार्य, सस्कृत–विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय

अनुसंधित्सु
ललित कुमार मिश्र
एम० ए० (सस्कृत–वेद)
इलाहाबाद विश्वविद्यालय

संस्कृत विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

१६ नवंबर २००२

प्राक्कथन

वेद अतीन्द्रिय ज्ञान है। यह तप पूतपूज्य ॠषियो की सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि की देन है। इस वसुन्धरा पर प्राणिमात्र की सबसे प्राचीन उपलब्ध धरोहर है। वेद भारतीय जीवन का उपजीव्य तथा हिन्दू धर्म का आधार है। वेद जीवन मे इष्ट की प्राप्ति तथा अनिष्ट के निवारण मे साधनभूत अलौकिक उपायो का ज्ञान कराता है। यह हिन्दुओ का प्राचीनतम विशिष्ट साहित्य है। ग्रथवाची वेद शब्द ''विद्'' धातु से ''घञ्'' प्रत्यय लगाकर बना है। वैदिक साहित्य का तात्पर्य सहिता, ब्राह्मण, आरण्यक् एव उपनिषद् से है। मत्र ब्राह्मणात्मक शब्द–राशि को ही एकीकृत रूप से वेद कहा गया है।–''मत्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्''। वैदिक वाड्मय न केवल आधुनिक भारत के लिए अपितु समग्र मानवजाति के लिए प्राचीन–भारत की सर्वातिशायिनी एव अतिसमृद्ध धरोहर है।

वेद की सत्ता ईश्वर की सत्ता की तरह सनातन एव सार्वभौम है। ऋषियों नें उसका दर्शन कर वर्षों के चिन्तन–मनन द्वारा उन्हें सहिताओ के रूप मे सकलित कर उसे आगे की पीढियो तक पहुँचाया है। वेदाड्गो के द्वारा वेदो की भाषा एव भाव को समझने का तथा इतने महत्वपूर्ण साहित्य की पूर्ण सुरक्षा का प्रयास किया गया है।

सहिताओं के अनन्तर मंत्रों के व्याख्यान के लिए ऐतरेय एव शतपथादि ब्राह्मण ग्रथों ऐतरेयारण्यक आदि आरण्यको तथा बृहदारण्यकोपनिषद् आदि उपनिषदों का प्रादुर्भाव हुआ। तत्पश्चात् वेदार्थ के अनुशीलन के लिए शिक्षा, कल्प, छन्द, निरूक्त, व्याकरण एव ज्योतिष आदि वेदाड्गो की रचना हुयी।

वैदिक वाड्मय मे अनेक कथाएँ है। ऋग्वेद सहिता, शतपथ ब्राह्मण, ऐतरेय ब्राह्मण तैत्तिरीय ब्राह्मण, ताण्ड्य ब्राह्मण, गोपथ ब्राह्मण तथा कठोपिनिषद, छान्दोग्योपनिषद एवम् वृहदारण्यकोपनिषद् आदि में कथाओं के माध्यम से अनेक दार्शनिक, आध्यात्मिक, वैज्ञानिक तथा ऐतिहासिक तथ्यो का व्याख्यान किया गया है।

अनुक्रमणी साहित्य के प्रसिद्ध ग्रन्थ वृहद्देवता मे आचार्य शौनक ने ऋग्वेद के मत्रो की अनुक्रमणी प्रस्तुत करने के साथ ही साथ ऋक्सहिता मे वर्णित अनेक कथाओ को किञ्चित् परिवर्तित रूप मे प्रस्तुत किया है।

इसी प्रकार आचार्य यास्क ने निरूक्त मे ऋग्वैदिक पदो के निर्वचन प्रस्तुत करने के साथ ही साथ अनेक कथाओ का वर्णन किया है। जो नामत ऋग्वेद की कथाओं के समान होने पर भी स्वरूपत· भिन्न है। ये कथाएँ वैदिक आर्यो की सामाजिक आर्थिक, वैज्ञानिक, दार्शनिक तथा आध्यात्मिक स्थिति की सूचना प्रदान करती है। इस प्रकार ये सभी कथाएँ भारतीय संस्कृति की सुदृढ आधार शिलाएँ है।

संस्कृत विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय से वेदवर्ग के छात्र के रूप मे परास्नातमक परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् तदानीन्तन विभागाध्यक्ष प्रोफेसर हरिशंकर त्रिपाठी जी एवं गुरुवर्य प्रोफेसर चन्द्रभूषण मिश्र जी के आशीर्वाद से मुझे **"वैदिक कथाओ का आलोचनात्मक अध्ययन"** विषय पर शोध करने का सुअवसर प्राप्त हुआ।

विषय–वस्तु विन्यास की सुगमता की दृष्टि से मैने प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध को छः अध्यायों मे विभक्त किया है।

1. **वैदिक कथाओ की उत्पत्ति**
2. **ऋग्वैदिक कथाएँ**
3. **ब्रह्मोद्य कथाएँ**
4. **वृहद्देवता मे वर्णित कथाएँ**
5. **निरूक्त मे वर्णित कथाएँ**
6. **वैदिक कथाओ का मूल्याङ्कन एवम् उनका संदेश**

षष्ठ अध्याय शोध–प्रबध के उपसंहारवत् है जिसमें पूर्ववर्ती पॉचो अध्यायो मे वर्णित सामाग्री के आधार पर ''वैदिक कथाओं का मूल्याङ्कन' प्रस्तुत किया गया है और उनमे निहित दार्शनिक वैज्ञानिक, ऐतिहासिक एवम् सामाजिक महत्त्व को सुस्पष्ट किया गया है।

शोध–प्रबध के विद्वान परीक्षको द्वारा परीक्षित होने के लिए प्रस्तुत करते हुए हर्ष का अनुभव कर रहा हूॅ। सुनिश्चित समयावधि मे शोध–प्रबन्ध प्रस्तुत करने की अनिवार्यता के कारण यत्र–तत्र त्रुटिया अवश्यमेव हुयी हैं। एतदर्थ मैं सभी से क्षमा प्रार्थी हूॅ।

इस शोध प्रबन्ध के प्रस्तुतीकरण मे मैने जिन विद्वानों की कृतियो का अनुशीलन किया है, मै उन सभी के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हुॅ।

परम पूजनीय **प्रोफेसर डा० चन्द्र भूषण मिश्र** जी (पूर्व आचार्य संस्कृत विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद) मुझे पुत्रवत् स्नेह प्रदानकर्ता एवम् मेरी जिज्ञासा के आदि गुरू हैं। मेरे अध्ययन रूचि को उद्दीप्त करने में गुरूकृपा नें

एक विलक्षण शक्ति का कार्य किया है। मेरी प्रत्येक विकास कार्य मे गुरुदेव का आशीर्वाद रूप प्रकाश सूर्य एवम् चन्द्र के समान मुझे समय–समय पर प्रकाशित करता रहा है। मै उनकी असीम देववृत्ति का वर्णन करने मे असमर्थ हूँ। सम्प्रति मै जो कुछ भी हूँ वह सब परमादरणीय गुरुदेव का ही कृपा–प्रसाद है, मैं गुरुदेव को शतशः नमन करता हूँ ।

गुरुवर **प्रो० डा० हरिशंकर त्रिपाठी** जी (पूर्व विभागाध्यक्ष सस्कृत विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद) ने मुझे सतत आशीर्वाद प्रदान किया है। एतदर्थ मैं उनके प्रति श्रद्धावनत हूँ।

गुरुवर **डा० राम किशोर शास्त्री** जी (रीडर सस्कृत विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद) का स्नेहिल आशीर्वाद मुझे अवाध गति से प्राप्त होता रहा है।ऐसे सतत प्रेरक श्रद्धेय गुरुवर को शत–शत प्रणाम।

परमादरणीया प्रो० डा० मृदुला त्रिपाठी जी (विभागाध्यक्ष सस्कृत विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद) से प्राप्त निरन्तर आशीर्वाद के लिए मै उनका आजीवन कृतज्ञ रहूँगा।

परमादरणीया **डा० रंजना** जी (रीडर सस्कृत विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद) एवम् **डा० सुचित्रा मित्रा** जी तथा अन्य सभी विभागीय गुरुजन के प्रति भी मै कृतज्ञता ज्ञापित करना अपना पुनीत कर्तव्य समझता हूँ।

उपर्युक्त सभी गुरुओ से प्राप्त ज्ञान–दीप ही मेरे शोध–मार्ग का प्रकाशक सिद्ध हुआ है। एततदर्थ मैं सभी को पौन.पुन्येन प्रणाम करता हूँ।

कीर्तिशेष पूजनीया जननी **श्रीमती सोना मिश्रा** की अदृश्य पुण्य प्रेरणा मुझे इस कार्य को सम्पन्न करनें के लिए उत्साहित करती रही है। इस शोध–कार्य की सम्पन्नता मे उनका अदृश्य आशीर्वाद शोध–पथ पर निरन्तर आगे बढते रहने में एक प्रबल पाथेय सिद्ध हुआ है।

आदरणीया माताश्री के आकस्मिक निधन के अनन्तर मेरे सम्बर्धन मे मनसा, वाचा, कर्मणा तत्पर पूजनीय **पिताश्री श्री ब्रज लाल मिश्र** (अवकाश प्राप्त सस्कृत प्रवक्ता कान्ह शिक्षा निकेतन इण्टर कालेज करहिया बाजार रायबरेली) के पुनीत आशीर्वाद से ही मुझे इस शोध–प्रबन्ध को प्रस्तुत करने का सुअवसर उपलब्ध हुआ। एतदर्थ मै आप दोनो का चिर ऋणी रहूँगा।

पूजनीया पितामही **श्रीमती सम्पति मिश्रा** भी समय–समय पर मुझे इस पुनीत कार्य को यथा सम्भव शीघ्र पूर्ण करने की प्रेरणा देती रही है, मै उनका भी चिर ऋणी हूँ।

शोध की पूर्णता में मेरे पितृव्यद्वय **श्री देवी प्रसाद मिश्र** तथा **श्री छोटे लाल मिश्र** (प्रवक्ता शारीरिक शिक्षा का०शि०नि०इ०कालेज करहिया बाजार, रायबरेली) एवम् ज्येष्ठ भ्राता **श्री रामकृष्ण मिश्र, श्री शीतला प्रसाद मिश्र** तथा श्री देव प्रसाद मिश्र का हार्दिक सहयोग रहा है। एतदर्थ मै आप सभी लोगो का कृतज्ञ हूँ।

वैवाहिक जीवन की अनेक कठिनाइयों का सामना करती हुई मुझे अध्ययन करने एवम तत्पश्चात् शोध–कार्य मे प्रवृत्त होने की सतत प्रेरणादायिनी पाणिगृहीती **श्रीमती आशा मिश्रा** के अविस्मरणीय सहयोग से ही मेरा यह शोध प्रबन्ध निर्बाध पूर्ण हुआ है। एतदर्थ उन्हें साधुवाद प्रदान करना मेरा पुनीत कर्तव्य है।

आदरणीय राजा साहब ''कैथौलेश'' श्रीयुत् **श्री जगत् रणबीर महेश प्रताप सिह** जी तथा उनकी साध्वी धर्मपत्नी करूणामूर्ति परमादरणीया रानी **श्रीमती सरस्वती** जी एवम् उनके आत्मजत्रय श्री **राजकुमार जगदेन्द्र प्रताप सिंह** जी, **श्री बाबू चन्द्र प्रताप सिह** जी तथा **कुँवर सूर्य प्रताप सिह** जी के अप्रतिम सहयोग के लिए मै उनका चिर आभारी रहूँगा।

आदरणीय **डा० यशवन्त सिह** जी एवम् **श्री अमरेश बहादुर सिंह** जी का स्नेह एवं उत्साहबर्धन मुझे सतत प्राप्त होता रहा है, मै आप सबके प्रति भी आभार ब्यक्त करना अपना पुनीत कर्तब्य समझता हूँ।

अन्तत इस शोध प्रबन्ध की लिखित अध्याय–सामग्री को यथा सभव शीघ्र टकित करने वाले एवम् इसे सुव्यवस्थित आकार प्रदान करनें वाले भाई **श्री गुलाब चन्द्र मिश्र** जी के प्रति साधुवाद ज्ञापित करना मैं अपना पावन कर्तब्य समझता हूँ जिसके बिना मेरा यह शोध–प्रबन्ध निश्चित समयावधि मे प्रस्तुत ही न हो पाता।

कार्तिक पूर्णिमा

१६ नवम्बर २००२

ललित कुमार मिश्र

विदुषांवशंवदः

ललित कुमार मिश्र

(शोध छात्र)

सस्कृत विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद

प्रथम अध्याय वैदिक कथाओ की उत्पत्ति १–३३

✓ वैदिक कथाओ की उत्पत्ति ।

✓ वैदिक कथाओ का आदि –स्रोत।

✓ वैदिक कथाये और वैदार्थ–निर्धारण सबधी विविध सम्प्रदाय।

✓ ऋकसहिता मे कथाए

✓ ब्राह्मण ग्रन्थो मे कथाए ।

✓ शतपथ तथा ऐतरेय ब्राह्मण की कथाओ से सबद्ध आधुनिक साहित्य (यास्क–निरूक्त ५०० ई० पू०)

द्वितीय अध्याय ऋग्वैदिक कथाएँ ३४–१०२

✓ दध्यञ्च

✓ च्ययवान--सुकन्या

✓ ऋभुगण

✓ त्रित

✓ शुन शेप

✓ कक्षीवान–स्वनय

✓ नमुचि

✓ दीर्घतमा

✓ इन्द्र मरूद्गण और अगस्त्य

✓ लोपामुद्रा अगस्त्य

✓ त्रिशिरस्

✓ यम–यमी

✓ सरण्यू

घोषा

इन्द्र–विकुण्ठा

सुबन्धु

पुरुरवा–उर्वशी

देवापि

मुद्गलानी

सरमा और पणि

तृतीय अध्यायः <u>ब्रह्मोद्य कथाएँ</u> १०३–१६३

ब्रह्मोद्य कथाएँ

धीर शातपर्णेय और महाशाल जाबालि

अत्ता आयसम्बन्ध तथा पुरूष की अपरूपता. उद्दालक और वैश्वावसव्य

वाजश्रवा कुश्री और सुश्रुवा कौश्य

वैश्वानर अग्नि अरुण, सत्ययज्ञ, जावाल, बुडिल, जनशार्कराक्ष्य और अश्वपति

अग्निहोत्र जनक और याज्ञवल्क्य

दर्शपौर्णमास उद्दालक और स्वैदायन शौनक

अग्निहोत्र प्राचीनयोग्य और उद्दालक

नरक और कर्म सिद्धान्त : वरुण और भृगु

अग्नि होत्र . जनक श्वेतकेतु सोमशुष्य तथा याज्ञवल्क्य

संवत्सर–मीमांसा· प्रीति और उद्दालक

दृप्तवाल्मीकि और अजातशत्रु

याज्ञवल्क्य–मैत्रेयी सवाद

याज्ञवल्क्य एव अश्वल

याज्ञवल्क्य और जरत्कारव आर्त्तभाग

याज्ञवल्क्य और भुज्यु लाट्यायनि

याज्ञवल्क्य–उषस्त सवाद

याज्ञवल्क्य–कहोल सवाद

याज्ञवल्क्य और वाचक्नवी गार्गी

याज्ञवल्क्य और उद्दालक आरूणि

याज्ञवल्क्य और गार्गी

याज्ञवल्क्य – शाकल्य सवाद

जनक याज्ञवल्क्य

जनक और याज्ञवल्क्य

उद्दालक, श्वेतकेतु और प्रवाहण जैबल

आलोचना और निष्कर्ष

चतुर्थ अध्यायः वृहद्देवता मे वर्णित कथाएँ १६४–२०६

दिव्य, त्वष्टा, दध्यञ्च और मधु की कथा

ऋभुओ और त्वष्टा की कथा

दीर्घतमस् के जन्म की कथा

अगस्त्य और लोपामुद्रा की कथा

गृत्समद इन्द्र और दैत्यगण की कथा

एक पुत्रिका–पुत्री विश्वामित्र और शक्ति

इन्द्र का जन्म और बामदेव के साथ युद्ध

त्रयरुण और वृशजान की कथा

श्यावाश्व की कथा

भृगु, अङि गरस और अत्रि के जन्म की कथा

वसिष्ठ और उनके वशज

कक्षीवत् और स्वनय की कथा

सोभरि और चित्र की कथा

अपाला की कथा

सोम के पलायन की कथा

विष्णु द्वारा इन्द्र की सहायता

सरण्यू की कथा

घोषा की कथा

इन्द्र वैकुण्ठ की कथा

सुबन्धु की कथा

पुरुरवस् और उर्वशी की कथा

सरमा और पणियों की कथा

अभ्यावर्तिन् और प्रस्तोक सार्जन्य की कथा

इन्द्र और व्यस की बहन

इन्द्र और ऋषिगण तप का महात्म्य

त्रिशिरस् और इन्द्र

इन्द्र,मरुद्गण और अगस्त्य

अग्नि के पलायन की कथा

देवापि की कथा

सप्त वध्रि की कथा

चायमान और प्रस्तोक की कथा

अगस्त्य एव वशिष्ठ का जन्म

वशिष्ठ और वरूण का कुत्ता

नहुष और सरस्वती की कथा

कण्व और प्रगाथ की कथा

कपिञ्जल के रूप मे इन्द्र

कपोत नैर्ऋत

भूताश काश्यप

राजर्षि त्रसदस्यु और इन्द्र

विश्वामित्र गाधिन के पुत्र

विश्वामित्र सुदास् और नदियॉ

विश्वामित्र और वाच् ससर्परी· वशिष्ठो के विरूद्ध अभिचार

मित्र वरूण और उर्वशी की कथा

रोमशा और वरूण

ऋणचय को वभ्रु का दान

अत्रि की दान स्तुति

भरद्वाज की उत्पत्ति

शश्वती की कथा

इन्द्र के पुत्रवधू की कथा

राजा मित्रातिथि की कथा

सव्य की कथा

पञ्चम अध्याय <u>निरूक्त मे वर्णित कथाऍ</u> २१०—२१६

निरूक्त मे वर्णित कथाऍ

दिव्य त्वष्टा, दध्यञ्च और मधु की कथा

पुरूरवस् और उर्वशी की कथा

गृत्समद् इन्द्र और दैत्यगण

कपिञ्जल के रूप मे इन्द्र

सरण्यू की कथा

ऋभुओं और त्वष्टा की कथा

इन्द्र और मरुद्गण

भृगु और अडिगरस और अत्रि के जन्म की कथा

देवापि की कथा

त्रित की कथा

सरमॉ—पणि की कथा

विश्वामित्र, सुदास और नदियॉ

षष्ठ अध्याय : <u>वैदिक कथाओ का मूल्यायाङ्कन और उनका सदेश</u> २२०—२४३

वैदिक कथाओ का सदेश

वैदिक कथाओ का राष्ट्रीय जीवन मे महत्त्व

वैदिक कथाए एव उनमे उपलब्ध आध्यात्मिक तथ्य

शुनश्शेपाख्यान का शुनश्शेप आध्यात्म अर्थ में

प्रथम अध्याय

वैदिक कथाओं की उत्पत्ति

वैदिक कथाओं की उत्पत्ति

सृष्टि के उषकाल मे जिज्ञासु मानव ने अपने चारो ओर ऋतशासित प्रकृति की शक्तियो का अवलोकन किया । उसमें कुतूहल की राज्य वृत्तियॉ जगी । उसने प्रकाशमान सूर्य को देखा, उसे देवत्व प्रदान किया । उसके विविध कार्यों के अनुसार उसे सविता, विष्णु, हिरण्यगर्भ आदि नाम दिये । सूर्य की तीनो गतियो की विष्णु का वेधा, विक्रमण कहा[1] । उषस् ने प्रतिदिन बन ठनकर चिरनूतन यौवन और नई रंगीनियो के द्वारा मानव के सौन्द्रय–प्रेमी मन को बरबस लुभाया[2] । उसने उसे 'युवति· पुराणी' तथा 'पुन पुनर्जायपाना पुराणी' कहा[3]। किसी ने उसे सूर्य की पत्नी और किसी ने सूर्य की मॉ तो किसी ने उसे प्रजापति की पुत्री के रूप मे कल्पना की । प्रतिक्षण रूप बदलने वाली, अतएव मायावी बादलों का क्षितिज के छोर की ओर से घुमड–घुमड कर उमडना और सूर्य रश्मियों का मद पड़ जाना, उस पर पूर्व दिशा में सतरंगी तिरछी इन्द्र–धनुषी छटा और कभी–कभी बिजली की कडकडाहट, सब कुछ देखने के लिए उसकी आंखे मचल उठी । बूँदे आकाश से चतुर्दिक बरस पडी, और इधर–उधर बिखर गयी । उसने जाना यह युद्ध है – 'इन्द्र और वृत्र का युद्ध' [4] । सूर्य इन्द्र है । उसकी रश्मियॉ उसकी गायें हैं । दिन भर चरते–चरते गाये प्रतीची के छोर की ओर पहुॅची ही थी कि रात्रि के निविर तमने अपने अङ्क मे समेट लिया । सूर्य की प्रथम रश्मि – सरमा ने गायों को प्रात· पुन उन्मुक्त कर दिया । कवि की कल्पना मे यह तथ्य 'वल कें बाडे मे बन्द इन्द्र की गायो और सरमा–पणि संवाद' के रूप में उद्भासित हुई[5]। रात के अन्धकार और दिन के

---

[1] निरूक १२ / १६

[2] ऋ०स० १ / ६२ /४, ६ / ६४ /२ तथा १ / १२३ /११ आदि ।

[3] ऋ०स० १ / ६२ /१० ।

[4] निरूक २ /१६ मे यारक ने वृष्टि कर्म को इन्द्र ७वृत के युद्ध के रूप में प्रस्तुत हुए कहा है –अपाचज्योतिषश्चपिषीमाषकर्मणा वर्णकर्म जायते । तत्रोपपार्थेन युद्धवर्णा भवन्ति –विवृष्या शरीरस्य स्रोतांसि निवारयात्रवकार तिस्मिन् हते प्रसस्यन्दि रे आय ।

[5] ऋ०स० १० /१०

प्रकाश की ऑख मिचौली को निहारा वैदिक कवि ने उसमे स्वर्ग से सीमाहरण की उद्भावना की [1] । उसने सूर्य को इन्द्र और चन्द्रमस् को गोतम कहा। सदैव साथ –साथ रहने के कारण रात्रि उसकी सहचरी और पत्नी है । दिन मे लीन हो जाने के कारण वह अहल्या है। वह ऋषि की कल्पना मे इन्द्र–रूप सूर्य के पास अभिसरण करती है, उसकी गोद मे छिप जाती है । अदित्य उसका जार है[2] । इस प्रकार सारी की सारी प्राकृतिक शक्तियो से संवद्ध–सघटनाओ नक्षत्रीय गति–विधियो सृष्टि की उत्पत्ति इल सबसे सबद्ध प्रश्नो का उत्तर उसने अपने जाने – पहचाने प्रतिदिन के जीवन मे अनुभूत घटनाओ तथा सामाजिक संबधो के अनुरूप कथाओ की कल्पना कर देने का प्रयत्न किया । इसके लिए उसने इनके सघटनाओ से सबद्ध उन शक्तियो का दैवीकरण के साथ –साथ मानवीयकरण भी किया । उसे अवयवो से सयुक्त किया और कथाओ को जन्म दिया । सच तो यह है कि जैसे ही किसी प्राकृतिक – घटना से सबद्ध –शक्ति को मूर्त रूप दिया गया होगा । इस प्रकार पुरातन कथाओ का मूल तद्युगीन –मानव –मन है, जिसने प्राकृतिक – शक्तियो को मानव के समान शरीरी मान लिया गया[3]। इन्हीं कथाओ का बहुविधि विस्तार ब्राह्मणो मे प्राप्त होता है । इन ब्राह्मण– ग्रन्थो मे कर्मकाण्ड की सगति के लिये 'देवासुर – स्पर्धा' 'इन्द्र –वृत्र–युद्ध' 'देव –यजन' तथा 'सृष्टि–रचना' संबधी कथाओं को अनेक प्रकार से कल्पित और विनियुक्त किया गया है । इसके अतिरिक्त सहिता तथा ब्राम्हणो दोनो में ही लौकिक– व्यक्तियो से सबद्ध घटनाएँ भी कथा रूप मे उपनिबद्ध हुई है ।

कालान्तर में उन कथाओ में पर्याप्त विकास हुआ । कभी –कभी तो कथा मूल घटनां से इतनीं दूर चली गयी है कि मूल तथा उसकी विकसित कथा दोनों

---

[1] ऋ०स० १० /१०

[2] अहल्यायै जार शत०ब्रा० ३४४१८ । तत्रवार्तिक – १३६२ ।

[3] निरूक ७ /५–६

ज्वलन्त उदाहरणहै। कभी–कभी यह प्रकिया ऐतिहासिक कथाओ मे भी दृष्टिगत होती है । हरिश्चन्द्र के यज्ञ मे अजीगर्त द्वारा अपने पुत्र शुनश्शेष के रोहित के हाथ विक्रय से सबद्ध कथा[1] लोक मे पर्याप्त परिवर्तित हो गई । लोक – कथाओ मे हरिश्चन्द्र अपने पुत्र– रोहित और स्वय को भी डोम के हॉथो बेचकर कगाल का सा जीवन विताते है । अन्तर केवल इतना ही है कि जहॉ अजीगर्त अभावग्रस्त होकर पुत्र विकम आदि करता है, वहॉ हरिश्चन्द्र धर्म की रक्षा के लिए । ऋग्वेद मे जहॉ प्रारम्भ मे वशिष्ठ –विश्वामित्र मे सौहार्द की मन्दाकिनी बहती थी, वहीं बाद मे दोनो को परवर्ती साहित्य मे परस्पर घोर शत्रु कहा गया है[2]। इस प्रकार प्राय समस्त कथाए बहुश मानव –जीवन की अनुभूतियो पर आधृत कवि की कल्पना के सहारे कर्मकाण्डीय प्रयोजन से पल्लवित हुई ।

वैदिक कथाओं का आदि –स्रोत

प्राचीन इतिहास के अनुसन्धाताओ का अनुमान है कि आर्यजन मूलत किसी एक स्थान पर रहते हुए होगे और वही से ससार के विभिन्न देशो मे फैले होगे । वस्तुत इस अनुमान का आधार भारत की प्राचीन आर्य भाषा (वैदिक सस्कृत) से लेकर आयरलैण्ड तक की विभिन्न भाषाओ का तुलनात्मक एव भषावैज्ञानिक अध्ययन है। इन विभिन्न भाषाओ मे प्राप्त प्राचीन कथाओ के तुलनात्मक अध्ययन से भी यह अनुमान पुष्ट होता है । इसके कुछ उदाहरणो से यह बात स्पष्ट हो जाएगी । ऋग्वेद,[3] शतपथ ब्राह्मण[3] तथा तै० व्रा० मे त्रित आप्त्यो की कथा है । एकत, द्वित, और त्रित ये तीन भाई थे । शट्यायनियो की एक कथा के अनुसार[4] एकत और द्वित ने मिलकर तीसरे भाई त्रित को अधेरे कुऐ मे डाल दिया । त्रित ने मुक्ति हेतु

---

[1] ऐत० व्रा० ३३–१ । कथा के विकास के लिए देखें –करवेदिक लिजेन्डस थ्रू एजेज – एच० एल० हरियणा ।
[2] ऋग्वैदिक लिजेन्ड्स थ्रू दि एजेज , एच० एन० हरियाणा ।
[3] ऋग्वैदिक लिजेन्ड्स थ्रू दि एजेज , एच० एन० हरियाणा ।
[3] शत० ब्रा० १ /२ /३ /१
[4] स्क० स० १ /१०५ /१७ ।

कातर –भाव से देवताओ से प्रार्थना की । वृहस्पति ने उसकी प्रार्थना सुन ली और कुएँ से बाहर निकाल दिया[1]। बाद मे त्रित ने इन्द्र के साथ त्रिशिरस् षडक्ष (६ आखो वाला) विश्वरूप का वध किया और गायो को मुक्त कर दिया । वृत्र –वध मे भी उसने इन्द्र को सहायता प्रदान की।[2]

यह कथा अवेस्ता मे भी वर्णित है । थ्रएतओन (– सं० त्रैतन) अपने दो भाइयो के साथ अजीदहाक को मारने जा रहा था । मार्ग मे दोनो भाइयो ने उसे मारना चाहा । किन्तु वह बच निकला । अन्तत थ्रएतओन ने त्रिशिरस और ड्क्ष, अजीदहाक (– सं० अहिदशक) को मार डाला । यह थ्रएतओन त्रित आथ्व्य का (–स० त्रित आप्त्य) का पुत्र था[3] ।

ऐसी ही एक कथा स्लावीनिक आर्यों मे भी प्रचलित है । इस कथा के अनुसार एक वृद्ध दम्पति के तीन पुत्र थे । उनमे से दो प्रकृत्या कुटिल थे । किन्तु तीसरा ईबान बडा वीर और सुशील था । इनके देश मे एक सर्प के कारण दिन नही हो पाता था । सदैव रात्री ही रहती थी । ईबान ने उससे युद्ध किया और उसकी हत्या कर दी । सर्प के मरते ही यहाँ सूर्य के दर्शन हुए और दिशाएँ प्रकाशित हो गयीं ।

इन तीनो कथाओ मे आश्चर्यजनक समानता है । तीनो मे अन्धकार पर प्रकाश की विजय का सकेत है । यह सर्पराक्षस अन्धकार का प्रतीक है । ऋग्वेद मे उल्लिखित इन्द्र द्वारा मारा गया 'दानु' 'अहि' तथा त्वष्टा का पुत्र (त्रिशिरस्) दोनो ही अवेस्ता के अजीदहाक के व्यक्तित्व का प्रतिनिधित्व करते है । हो सकता है त्रिशिरस् त्वाष्ट्र और अहि प्रारम्भ मे एक ही रहे हो । त्रित आप्त्य, थ्रएतओन, और ईबान प्रकाश के देवता हैं । प्रकाश एव अधकार दोनों के सघर्ष मे अवेस्ता का

---

[1] सक० स० १ /१०५ /१७ ।
[2] सक० स० १ /१८७ /१ ।
[3] हओमयश्त (यस्न ६) ।

थ्रएतओन जिसे अजीदहाक को मारने का श्रेय प्राप्त है, त्रित (–स० त्रित) का पुत्र था । अन्तत प्रकाश की विजय हुई । प्रारम्भ मे त्वष्टा को मारने का श्रेय जो त्रित को प्राप्त था, ऋग्वेद मे इन्द्र की प्रधानता के कारण इन्द्र को मिल गया।[1] शतपथ–ब्राह्मण[2] की कथा से भी यही तथ्य प्रमाणित होता है। अतएव बहुत कुछ सभव है कि पहले इन्द्र प्रकाश का देवता नही हो कर युद्ध एव विजय का देवता रहा होगा[3]। ऋक् – सहिता मे विष्णु – विक्रमण की कथा अनेकश वर्णित है । इन्द्र के कहने पर विष्णु ने इन्द्र के सहायतार्थ लम्बे डग मारे थे । विष्णु ने तीन डगो मे तीनो लोको को नाप लिया । शतपथ ब्राह्मण के अनुसार असुरो से पृथ्वी मे अपना भाग लेने के लिए वामन–विष्णु को देवताओ की सहायता करनी पडी थी । स्वर्ग –प्राप्ति के लिए वे कही पृथ्वी मे छिप गये थे । पुराणो की कथा के अनुसार बलि ने इन्द्र को जीत कर स्वर्ग प्राप्ति के उपलक्ष मे यजन किया । यज्ञ क समय विष्णु को वामन रूप धारण करना पडा । उन्होने दो पग मे दो लोक तथा तीसरे पग मे स्वय बलि को ही नाप लिया और फलत बलि को सदैव के लिए पाताल मे रहना पडा । यह कथा भी अन्धकार पर प्रकाश की विजय का ही सकेत है । वृत्र वध के समय इन्द्र ने कहा था – 'हे सखा विष्णु ! लम्बे–लम्बे डग भरो'। इससे ज्ञात होता है कि जहॉ युद्ध हो रहा था, वहॉ विष्णु का एक पैर पडा था । युद्ध क्षितिज की छोर की ओर नीचे हो रहा था । फलत विष्णु का पैर क्षितिज के नीचे पडा, जहॉ तीसरे पैर से बलि को पाताल लोक मे कर दिया गया । इसीलिए विष्णु के दो पैर तो दिखायी पडते है, पर तीसरा नही । सूर्य की वार्षिक–परिक्रमा के तीन–भाग तीन पद माने जा सकते हैं । दो डगो से प्रकाश बहुल आठ महीने व्यजित होते है । बाद के शेष चार महीने बहुल होने के कारण क्षितिज के नीचे पडने वाले डग के प्रतीक है । इसीलिए पुराणो मे विष्णु को चार महीने तक शेष

---

[1] प० क्षेत्रेश चन्द्र चट्टोपाध्याय 'इन्द्र इन ऋग्वेद एण्ड अवेस्ता एण्ड विफोर चतुर्थ' आ० इ० ओ० का० १९२६ ।
[2] शत० ब्रा० १ / २ / ३ /१ और आगे ।
[3] वही प० क्षेत्रेश चन्द्र चट्टोपाध्याय 'इन्द्र इन ऋग्वेद एण्ड अवेस्ता एण्ड विफोर चतुर्थ' आ० इ० ओ० का० १९२६ ।

शैय्या पर निमग्न बताया जाता है । वह शेष–शैया अधकार की प्रतीक है दूसरी सभावना के अनुसार दिन मे सूर्य को प्रात और मध्याह्न गति विष्णु के दो डगो की, तथा सन्ध्याकालीन गति तीसरे डग की सूचिका हो सकती है ।

यूनानी आर्यो से मिलते–जुलते फ्रीजियन आर्यो मे भी ऐसी ही एक कथा प्रचलित है , जिसमे ऐसा सकेत है कि उनके देवता विष्णु की भाति शीतऋतु मे निद्रा निमग्न रहते थे और ग्रीष्म मे कार्य–रत हो जाते थे। इनकी कुछ कथाओ से ऐसी ध्वनि निकलती है कि उनके देवता शीतकल मे कारागार मे बन्द रहते थे, और ग्रीष्म मे मुक्त हो जाते थे इसी प्रकार आयरिश आर्यो मे भी एक कथा है जिसमे वहॅ के निवासी बहुत काल तक एलिल, मेडिल एव फिगनोग के आक्रमण से परेशन रहते थे। इससे भी वर्ष मे कुछ समय तक अधकार रहने का ज्ञान होता है। इस प्रकार इन सभी कथाओ में शीत और अंधकार पर ऊषा और प्रकाश की विजय का ही सकेत है।

वैदिक साहित्य मे इन्द्र–वृत्र–युद्ध का अनेकश वर्णन मिलता है। वृत्र सभी पदार्थो को आवृत्त की कर स्थित हो जाता है। इन्द्र को मारते हैं मृत कर वृत्र के शरीर के चारो ओर चारो ओर समुद्र ही समुद्र हो जाते हैं और प्रकाश हो जाता है, वृत्र को मार कर इन्द्र 'वृत्रहा' हो गया। इसी प्रकार का युद्ध अवेस्ता में तिश्क्षय और अपौष के मध्य कुरुकुस समुद्र मे हुआ था। वह कुरुकुस कही बादलो के मध्य स्थित था । अपौष वर्णा को रोक लेता है। तिश्थ्य उससे युद्ध करता है। पहले उसकी हार होती है, किन्तु अन्तत वह 'वाजस्ति' से अपौष को मार डालता है। जल युद्ध मे अपौग पर विजय प्राप्ति के अनन्तर तिश्थ्य के प्रकट होने की अवधि एक रात्रि, दो रात्रि, पचास तथा सौ पर्यन्त मानी गयी है । अन्तत जल–राशि प्रकाश का उद्धार हो जाता है। इसी प्रकार की एक कथा नार्स साहित्य में भी है। शीतकाल के अंधदेवता 'टोडर' ग्रीष्म के देवता वाल्डर पर विजय प्राप्त कर उसे मार डालते हैं

परन्तु अन्त में वाल्डर का भाई अध देवता के रूप मे होडर को मार कर भाई की मृत्यु का बदला ले लेता है।[1] इन तीनो कथाओ मे पर्याप्त समानता है। तीनो मे अवर्षण पर ऊष्मा और वर्षा की विजय सकेतित होती है। ऋग्वेद मे वृत्र–वध का जो श्रेय इन्द्र को मिल गया है, वह अवेस्ता मे वेरेथ्रघ्न को न मिलकर तिस्थ्य को मिला।

विश्व के अन्य देशो की अनेक कथाओ तथा नवग्वो की इस कथा मे बहुत अधिक साम्य होता है। इन सभी कथाओ अन्धकार पर प्रकाश की विजय का ही सकेत है।

ऋग्वेद सहिता[2] मे यम–यमी की कथा है। यम–यमी विषयवस्तु एवम् सरण्यू की यमज सताने हैं। एक बार यम यमी से आग्रह करती हे कि मै समुद्र–मध्य इस निर्जन प्रदेश मे तुम्हारे सहवास के लिए उत्कण्ठित हूॅ। क्योकि साय प्रात· आकाश मे तारे रहते है, अतएव उस समय एकान्त नही मिलता। यम उसके इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर देता है। अवेस्ता मे भी यिम और यिमेह की यही कथा मिलती है, जिसमे यिम् (यम) यिमेह के प्रणय –प्रस्ताव को स्वीकार कर लेता है।[3] शतपथ ब्राह्मण मे जल प्लावन की कथा है। जल प्लावन सारी प्रजाओ की मत्स्य बहा ले जाता है। मनु वैवस्वत् के कहने पर नौका मे आरूढ होकर प्रतीक्षा करते है। मत्स्य उन्हे ऊॅचे पहाड पर पहुॅचा देता है, जहॉ वे आहुतियों से उत्पन्न अपनी प्रजा के साथ सहवास करके सन्तानोत्पत्ति करते है। अवेस्ता मे भी यही कथा आई है। जहा विवड्हत् पुत्र यिम सारी उपयोगी सामाग्रियो को नौका मे रखकर उन्हे बचा लेते है।

---

[1] दि आर्कटिक होम आफ दि वैदाज पृ०ण २६६

[2] ऋ० स० ३/३६/५

[3] भारत और ईरान मे यमी यममी की कथा में उपलब्ध वैषम्य दोनो देशों की भिन्न सस्कृतियों में यम यममी के प्रस्ताव की ठुकरा देता है और इरान मे मान लेता है। ऐसा दोनों देशों की सामाजिक प्रथाओं में अन्तर के कारण है। ईरान में मिस्र और बेबिलोनिया के समान रक्त समबद्ध सबसे में निकट की कन्या से विवाह करने का प्रथा रही है। किन्तु भारतीय सस्कृति में सगे भाई बहिन का विवाह वर्जित है।

इस प्रकार उपर्युक्त तथा अन्य अनेक कथाओ मे सारी, घटनाओ तथा उद्देश्यो की समानता देखते हुए यह निष्कर्ष अपरिहार्य हो जाता है कि आर्या जनो की अविभक्त स्थिति मे ही इन कथाओ का जन्म हो चुका था और उनकी विभिन्न शाखाओ ने उन्हे अपने मूल स्थान से दाय के रूप मे प्राप्त कर विभिन्न रूपो मे विकसित किया।

वैदिक कथायें और वैदार्थ–निर्धारण संबंधी विविध सम्प्रदाय–

ब्राह्मणो और उपनिरूषदो मे वैदिक मत्रो की व्याख्या प्रायश याज्ञिक कर्मकाण्ड के प्रसग एवम् मे अध्यात्म मे की गई है। किन्तु उनमे कभी–कभी अन्य प्रकार के अर्थो का भी सद्भाव दीख पडता है। कहीं मत्रो, कर्मो और पदार्थो के विनियोग और उत्पत्ति के सम्बन्ध मे कथाए कही गई है तो कही पर निरूक्तियो का विन्यास । कही–कही पर अध्यात्मिक अर्थो के भी संकेत हैं। उपनिषदो मे तो इसी अर्थ को ही प्रधानता है। इतनी विभिन्नताओ के होने पर भी ब्राह्मणो का कलेवर व अतीव सगत एव सुगठित है। इन ब्राह्मण ग्रंन्थो मे कही भी अध्ययन सम्प्रदायो के उल्लेख नही मिलते हैं।

वैदिक अर्थो से सबद्ध विविध सम्प्रदायो का उल्लेख निरूक्त मे मिलता है। यास्क ने ऐसे १२ सम्प्रदायों का उल्लेख किया है। इन विभिन्न सम्प्रदायो में वैदिक कथाओ की व्याख्या भिन्न भिन्न प्रकार से उपलब्ध होती है।[1] अत यहा पर इनका परिचय प्रसग प्राप्त है–

१ पूर्व याज्ञिक	२ याज्ञिक
३. नैदान	४ वैय्याकरण
५. परिव्राजक	६ अध्यात्म
७.अधिदैवत्	८. आर्ष

६ टात्मप्रवाद   १०. आख्यान समय

११ ऐतिहासिक   १२ नैरुक्त

१ पूर्व याज्ञिक सम्प्रदाय

पूर्वयाज्ञिको का उल्लेख निरूक्त (७/२३) मे मिलता है वैश्वानर को आदित्य मानते हुए उल्लिखित इस प्रसग मे वे है। पूर्व याज्ञिक नाम से ही स्पष्ट है कि उनके तर्क प्रकृति मे कर्मकाण्डीय रहे होगे और यास्क के उल्लेख से भी विदित होता है, कि ये लोग वैदिक–मत्रो का अर्थ वैदिक यागो और तत्सबद्ध विविध कर्मो के प्रसग मे ग्रहण करते है।[1]

२ याज्ञिक

याज्ञिको के मत का उल्लेख निरुक्त में एव ४३–कुल ६ बार हुआ है। नि० _मे ऋक्संहिता केसरासि त्रिशतम् आदि की व्याख्या के सबध मे उनका मत उद्धृत् है। नि० मे से देवता रहित मत्र को प्रआपत्य मत्र कहते हुए बताए गए है। नि० ऐसा निर्देश है कि याज्ञिक लोग , अनुमति, एव राका को पूर्णिमा की रात्रि मानते है। तथा में ये सिनीवाली की अमावस्या की पूर्वरात्रि तथा कुछ को बाद की रात्रि बताते है। याज्ञिको को वैदिक मत्रो मे कर्मकाण्ड के अतिरिक्त कोई भी अन्य अर्थ स्वीकार नहीं है। संभवत उत्तर काल में मीमासक याज्ञिकों की परम्परा के ही पोषक रहे है।

३ नैंदान

---

[1] यथासावादित्यहृति पूर्वे याज्ञिका एषां लोकानाम् राषेण सवनाम् रौह आम्नात। रोहात्प्रत्यवरौहश्चिकीर्षित तामनुकृतिम् हातापि मरुते शस्त्रे वैश्वानरीयेण युक्तेन प्रतिपद्यते।। नि०७/२३

नैदानो का उल्लेख निरुक्त ६/६ तथा ७/१२ मे मिलता है। नि० ६/६ मे ये 'स्याल' निर्वचन सबध मे समीप होने मे निष्पन्न मानते हुए कहे गये है, किन्तु नैरुक्त लोग इसको व्युत्पत्ति स्यात्लाजान् आवपति-- शूर्प से लावे विखेरता है नि० ७/१२ मे नैदान साम को ऋचा सम मेनै, किन्तु नैरूक्त सम्मित ऋचा कहते है। नैदान सम्प्रदाय वस्तुत नैरुक्तो से दो अर्थो मे --१ अर्थ को प्रधान मान कर सज्ञाओ को धातुओ से निष्पन्न मानते एव २ शब्द के विकास के सम्बन्ध मे सहायक के रूप में दृष्टिगत होता है।

४ वैय्याकरण

निरुक्त १/१२, ६/५ तथा १२/६ मे वैय्याकरणो के मतो का निर्देश है। नि० १/१२ मे नैरुक्त सज्ञाओं को धातुज मानते है। किन्तु कुछ वैययाकरण उनसे असहमत वर्णित है। नि० ६/५ मे मण्डूक को व्युत्पति है। वैय्याकरण माण्डूक को 'मण्ड' से किन्तु नैरुक्त 'यस्य' या मद से निष्पन्न मानते है। नि० १३/६ में इन्हे चत्वारि वाक् का अर्थ नामाख्यातोपसर्गनिपात' करते हुए कहा गया है। वैय्याकरण सम्प्रदाय निश्चय ही नैरुक्तो से भिन्न था। यास्क ने निरुक्त १/५ मे इसे व्याकरण का पूरक कहा है। परन्तु वैयूयाकरणो और नैरूक्तो को एक नही माना जाता सकता है। दोनो में मौलिक अतर था। नैरूक्त शब्द के अर्थ पर अधिक जोर देते हुए भी उसके रूप पर भी ध्यान देता है, जब कि वैय्याकरण केवल रूप का भी ही विवेचन करता है।

५ परिब्राजक

नि०२/८ मे वहुप्रजा निऋतिमा विवेश ऋ०स० १/१६४/३ की व्याख्या के प्रसग मे 'परिब्राजक निऋतिमाविवेश का अर्थ कृच्छमापद्यते' करते है। संभवत. परिब्राजक लोग भ्रमण करने वाले संन्यासी थे। अत:

वैदिक अर्थो के सबध मे उनका दृष्टिकोण किञ्चित् दार्शनिक एव आधिभौतिक रहा होगा।

६. अध्यात्म–

अध्यात्मवादियो का उल्लेख निरूक्त १०/२६, १२/२७, तथा १२/३८ मे हुआ। निरूक्त १०/२६ तथा १२/३७ मे शरीर सप्तरदान्ति सदभप्रमादम् एवम् नि० १२/३८ मे अध्यात्मवादियो और उनके अर्थो का निर्देश है।

७– अधिदैवत

अधिदैवत अर्थ बताने वालो का उल्लेख लिरूक्त १०/२६ एव १२/३८ मे किया गया है । निरूक्त १०/२६ मे विश्वकर्मा विमना आदि की व्याख्या है तथा नि० १२/३८ मे तिर्यग्विलश्चसुख ऊर्ध्वध्न आदि की व्यख्या है। इन दोने अस्थानो पर स्थानो पर अधिदैवत अर्थ करने वालो का निर्देश है।

८.९ आर्ष और आत्म प्रवाद

नि०१३/६ मे आर्ष और आत्मप्रवाद सप्रदायो के दृष्टिकोण उद्धृत है पहले सप्रदाय आर्ष की व्याख्या आधिभौतिक और दूसरे सम्प्रदाय आत्मप्रवाद की व्याख्या प्राकृतिक विज्ञानो से प्रभावित प्रतीत होती है।

१० आख्यान समय

इस सम्प्रदाय का उल्लेख नि० ७/७ मे मिलता है।इनका विश्वास है कि वैदिक मंत्रो मे प्राप्त देवगण का वर्णन केवल आलकारिक हैं । वे ऐतिहासिक व्यक्ति नही है। इन प्राकृतिक घटनाओ मे और प्रकृतिक शक्तियो मे मानवीय घटनाओ एवं गुणो का आरोप कर दिया गया है। सम्भवतः इसी सम्प्रदाय मे वैदिक वर्णनो की

व्याख्या कथाओ के रूप मे की होगी । इस प्रकार आख्यान सम्प्रदाय और नैरुक्त सम्प्रदाय मे व्यापक समानता दीख पडती है।

११.ऐतिहासिक

ऐतिहासिको का उल्लेख नि०२/१६, १२/२१ तथा १२/१० मे मिलता है। नि० २/१६ ऐतिहासिक वृत्र को त्वाष्ट असुर मानते है। नि० १२/१ मे अश्विनो को पुण्यभृतौ राजानौ कहा है। नि० १२/१० मे तथा ऋग्वेद १०/१७/२ मे मिथुना शब्द को यम–यमी का वाचक और इसी सम्बन्ध मे इनके माता–पिता विवस्वान और सरण्यू को ऐतिहासिक व्यक्ति कहा गया है। आख्यान समय और ऐतिहासिक सम्प्रदाय मे वस्तुत भेद रहा होगा क्योकि आख्यान समय कथाओं के नायको को प्रकृति शक्ति का मनवीकृत रूप मानता है जबकि ऐतिहासिक उन्हे वास्तविक पुरूष बताता है।

१२ नैरुक्त

नैरुक्त सम्प्रदाय का उल्लेख नि० १/२, १/२/२/८, २/१४, २/१६, ३/८, ३/१४, ४/११, ४/२४, ५/१, ५/११, ६/३, ६/११, ७/४/५, ८/१३, ६/४, ११/२६, २६/३१ तथा १२/४१। मे कुल २० बार हुआ है। इस सप्रदाय मे अनेक आचार्य हुए जिनकी कृतियॉ अनुपलब्ध है और यास्क इस सम्प्रदाय के प्रतिनिधि है । ये कुछ निश्चित सिद्धान्त के अनुसार सज्ञाओ की व्युत्पत्ति धातुओ से करते है। ये लोग शब्दो के विकास के कई क्रमो का निर्देश करते हैं । इस लिए निर्वचन के लिए वाह्य कलेवर पर कम और उनके अर्थ पर अधिक जोर देते हैं। वेदार्थ निर्धारण सम्बन्धी इन विविध सम्प्रदायो मे से केवल पूर्वयाज्ञिक, याज्ञिक,

अधिदैवत, आख्यान समय, ऐतिहासिक और नैरुक्त ऐसे सम्प्रदाय है जिन्होने वैदिक कथाओ की व्याख्या मे यत्र–तत्र अपनीं दृष्टि के अनुसार योग दिया है।

आचार्य सायण ने 'वेदार्थ–प्रकाश के रूप मे वैदिक अध्ययन की परम्परा का ऐस सम्प्रदाय प्रचलित किया जिसे सभी सम्प्रदायो का समन्वित रूप कहा जाय तो अनुचित न होगा। यद्यपि 'ऋग्वेदभाष्यभूमिका' मे ये याज्ञिक सम्प्रदाय से सहमत एव सबद्ध प्रतीत होते थे, किन्तु इनके वेदार्थ प्रकाश मे स्थान स्थान पर व्याकरण का स्पष्टीकरण है। व्युत्पत्ति बताने के लिए यास्क के निरुक्त का भी उद्धरण दिया गया है। प्रत्येक मत्र का याज्ञिक विनियोग बताया गया है। कहीं कही आवश्यकता पडने पर कथाओ का भी निर्देश है तथा उनमे से कुछ कथाये तो सम्प्रति प्राप्त वैदिक वड्मय मे अन्यत्र नही भी मिलती है। इस प्रकार वेदार्थ प्रकाश के रूप मे सायण ने भी सम्प्रदायो को एक सुसगठित रूप दिया। 'वेदार्थ–प्रकाश आज वैदिक–अध्ययन मे एकमात्र सहारा है। आधुनिक विद्वान विल्सन तथा कोलब्रुक भी इसी का अनुगमन करते है।

आधुनिक युग मे पश्चात्यो के वेदाध्ययन के फलस्वरूप भाषाविद्–सम्प्रदाय के उन्नायक जर्मन विद्वान रॉथ है। उन्होने १८४६ ई० मे 'वेद का साहित्य तथा इतिहास' एव 'सेन्टपीटसबर्ग' सस्कृत जर्मन महाकोश का निर्माण किया जिसमे प्रत्येक शब्द का अर्थ और उसका विकास मे दिया गया है। वैदिक शब्दो का अर्थ सकलन स्वय रॉथ ने तथा लौकिक शब्दो का बोथलिग ने किया। इस अध्ययन धारा से सबद्ध अन्य विद्वानो मे ग्रासमान केई तथा ए० बर्गे के नाम उल्लेखनीय है। ग्रासमैन ने १८७६–७७ ई० मे ऋग्वेद का पद्यानुवाद तथा १८७३–७५ ई० मे ऋग्वेद कोष की रचना की। इस सप्रदाय की यह धारणा है कि वेदार्थ निर्धारण के लिए भारतीय परपरा की अपेक्षा तुलनात्मक भाषा विज्ञान, देव शास्त्र तथा आर्य जातीय

रीतिरिवाज अत्यधिक आवश्यकता है। मत्रो की व्याख्या मे प्रयुक्त प्राचीन व्याख्याताओ द्वारा प्रयुक्त कथाओ मे इनकी आस्था नही प्रतीत होती।

भाषाविद् सप्रदाय के साथ ही साथ पाश्चात्य विद्वानो का एक वर्ग ऐसा था, जो वेदार्थ निर्धारण के लिए सायण के द्वारा प्रदर्शित मार्ग को ही श्रेयस्कर मानता था। यह वर्ग तुलनात्मक भाषाविज्ञान को वैदिक साहित्य के प्रसगो तक ही सीमित रखता है। पिशेल एव गोल्डनर का 'वैदिक स्टूडियन' इस दिशा मे एक स्तुत्य प्रयास है। गोल्डनर का ऋग्वेद का जर्मन अनुवाद, तथा कोश वैदिक शोध के दृढ स्तम्भ है। एच० एच० विल्सन ने भी ऋग्वेद का अग्रेजी अनुवाद किया। राजवाडे ने अपने 'वर्ड्स इन ऋग्वेद' (भाग–१ पूना) तथा वेकट मुब्बेया ने 'वैदिक स्टडीज ' (भाग–१ मैसूर) नामक सग्रह मे कतिपय शब्दो के अर्थ की छानबीन समस्त वैदिक प्रसगो की तुलना के आधार पर की है। १८५० ई० मे एच० एच० विल्सन न, १८८६९२ मे टिप्पणियो के साथ रा० टी० एच० ग्रिफिथ ने तथा १९०६ से १९१२ ई० मे पूर्ववर्ती पडितो की व्याख्याओ के निर्देशन मे ओल्डेन वर्ग ने ऋग्वेद का अनुवाद प्रस्तुत किया। इन सब ने सायण के भाष्य का पूर्ण उपयोग किया है। तथा सायण द्वारा उद्धृत कथाओ को भी मान्यता दी है। १८७६८८ मे लुडविग ने भी ऋग्वेद का अनुवाद किया जो पर्याप्त स्वतत्र होने के बावजूद भी सायण के प्रभाव से वचित नही है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने ऋग्वेद तथा यजुर्वेद के भाष्यो मे नूतन अर्थ परपरा की उद्भावना की, जिसे हम विज्ञानाध्यात्म सप्रदाय कह सकते है। इनके अनुसार वैदिक शब्दो का अर्थ नितात निगूढ है जिसके ज्ञान के लिए आर्ष दृष्टि अपेक्षित है। सहिताओ की अपौरूषेयता तथा उसके शब्दो की यौगिकता या योगरूपिता स्वामी जी के भाष्य की आधार शिला है। इनके अनुवर्तकों की लम्बी परपरा में सातवलेकर का नाम विशेष उल्लेखनीय है। दुर्गाप्रसाद ने सहिताओ का

अनुवाद (लाहौर १६१२–२०ई०)किया जो आर्य समाज से प्रभावित है। वैदिक कथाओ की व्याख्या मे भी इनका अध्यात्मपरक ही आग्रह है।

श्री अरविन्द ने **ग्रेटनेस ऑफ इण्डियन लिटरेचर** (सी० आर० ५८) मे एक भिन्न पद्धति पर बल दिया है। जिसे हम मनोवैज्ञानिक आध्यात्मिक सम्प्रदाय कह सकते है। इनके हिन्स टू दि मिस्टिक फायर मे पर ऋग्वेद के प्रारम्भिक अग्नि सूक्तो की व्याख्या इसी पद्धति पर आधारित है। इनकी दृष्टि मे वद मत्र विभिन्न आर्ष प्रज्ञा की तप पूत रश्मियो से आलोकित हैं। उपनिषदो मे बहुश व्याख्यात अद्वैत तत्त्व सहिताओ मे ओत प्रोत हैं। इसी पद्धति का अनुसरण कर कपाली शास्त्री ने ऋग्वेद के प्रारम्भिक सूक्तो पर दो व्याख्या ग्रन्थ लिखे हैं।

मधुसूदन ओझा ने वैदिक विषयो पर लगभग दो सौ निबन्ध लिखकर वेदो मे आध्यात्मिक अर्थ पर जोर दिया है जिसका अनुसरण उनके शिष्य महामहोपाध्याय गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी ने किया है। डा० वासुदेव शरण अग्रवाल ने भी दि वेदाज एण्ड दि 'अध्यात्म ट्रेडिशन' मे अध्यात्म अर्थ पर बल दिया तथा अनेक निबन्धो मे अध्यात्म अर्थ का पल्लवन भी किया। लोकमान्य तिलक, डा० रामशास्त्री तथा राजाराव के विविध निबन्धो मे ज्योतिष संप्रदाय की प्रतिष्ठा हुई तथा साथ ही लोकमान्य तिलक ने 'आर्कटिक होम आफ द वेदाज' मे वैदिक कथाओ की व्याख्या प्रकृति के प्रकाशान्धकार पक्ष के अनुरूप की है।

डा० ए० के० कुमारस्वामी[1] ने वेदार्थ ज्ञान के लिए भक्तो तथा अध्यात्म प्रवण मनीषियो के जीवन दर्शनो का सहारा लेना आवश्यक बताया है। प्रो० नीलकठ शास्त्र सहिता के चतुर्थ विभाग को भारतीय विचारधारा के चार क्रमिक स्तरो का प्रतीक मानते हुए वेद के अपौरूषेयत्व का खण्डन[2] करते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य अनेको विद्वानो ने सहिताओं और ब्राह्मणो का अनुवाद किया। के० सी० राव ने ऋग्वेद का तेलगू मे तथा डी० आर० एस० वेकट कृष्णैया ने कन्नडी[3] में अनुवाद किया। डी० लहरी ने चारो

---

[1] न्यू अप्रोच टू दि वेदाज लन्दन १६३३ ई० तथा ऋग्वेद एज लैंडनबक लन्दन १६३५

[2] इण्डियन हिस्ट्री कान्फ्रेंस १६४०

[3] बैंगलोर १६१३–१५ ई०

सहिताओ का बगला[1] मे अनुवाद किया। के० त्रिवेदी[2] ने अथर्ववेद का हिन्दी अनुवाद, पी० के० नबूदरी ने मलयालम,[3] चिन्नशास्त्री[4] तथा पटवर्धन[5] ने ऋक्सहिता का मराठी अनुवाद प्रस्तुत किया। रामगोविन्द त्रिवेदी ने ऋग्सहिता का हिन्दी अनुवाद किया। डब्ल्यू० एच० हिवटनी तथा लैनमैन[6] ने अथर्ववेद, जी० जे० एगलिग ने[7] शतपथ हाग ने ऐतरेय ब्राह्मण, कीथ[8] ने ऐतरेय तथा कौषीतकि, तथा डा० कैलेन्ड ने गोपथ ब्राह्मण का अनुवाद प्रस्तुत किया। यदि भारतीय विद्वानो ने वेदो को अपौरूषेय ईश्वर निश्वसित कहकर उसकी व्याख्या की है तो पाश्चात्यो तथा तद्नुयायी भारतीयो ने उसे केवल इतिहास के पुननिर्माण की सामग्री समझा है।

ऋकसहिता मे कथाए

ऋकसहिता का अधिकाश भाग स्तुति एव प्रार्थना रूप है किन्तु फिरभी उसमे विविध आख्यान कथा तथा उनके बीज विद्यमान है। इन आख्यानो का इनकी प्रकृति एव वर्णन शैली के आधार पर चार वर्गो मे बॉट सकते है–सवादात्मक, वर्णनात्मक, दानस्तुतिपरक तथा देवो के विविध कार्यों से सबद्ध।

विटरनित्स के अनुसार ऋग्वेद मे सवादो की सख्या कुल बीस है। ओल्डेन वर्ग ने इन्हें आख्यान की सज्ञा दी है, और उन्हे प्राचीन आख्यानो का अवशिष्ट अश कहा है। ये प्रारम्भ मे गद्य पद्यात्मक थे। पद्याश अपेक्षाकृत अधिक मजुल होने से अवशिष्ट रह गये, जबकि गद्याशो का धीरे–धीरे लोप हो गया। डा० सिल्वॉ लेवी,

---

[1] हावडा १६१६
[2] प्रयाग १६१२–२१
[3] १६२५
[4] पूना १६२८
[5] पूना १६४२
[6] ह० ओ० सि० जित्स ७–८ १६०५
[7] प० प्रा० ग्र० १२ २६ ४१ ४३ ४४
[8] ह० ओ० सी० १६२०
[9] विब्लि कलकत्ता १६३२

डा० श्रोदर तथा डा० हर्टल ने इन सवादो को नाटक का अवशिष्ट अश कहा है जिनका सगीत वाद्य एव पात्र के उचित सन्निवेश कर देने पर यज्ञ के अवसरो पर अभिनय होता था। प्रो० विन्टरनित्ज की दृष्टि मे ये सवाद सूक्त वस्तुत प्राचीन भारतीय वीरगाथा काव्य हैं। इन वीरगाथाओ मे नाटकीय तथा आख्यानतत्त्व का होना यह सिद्ध करता है कि ये गाथाए महाकाव्य तथा नाटको की मूलस्रोत हैं। आख्यान से महाकाव्य विकसित हुए और अभिनयादि से नाटक। प्राचीन आख्यानो की रचना सर्वथा गद्यात्मक नही हुआ करती थी। कथा की भूमिका उपसहार तथा कथाओ का परस्पर सबन्ध गद्यमय होता था। अथवा यह भी सभव है कि प्रारभ मे कुछ छोटी–छोटी लोक कथाए भी प्रचलित रही हो और उनके अभाव मे इन सवाद सूक्तो के स्पष्टीकरण मे बाधा पड रही हो।

कि बहुना एक ओर तो ये सवाद सूक्त पूर्णत आख्यात्मक है तो दूसरी ओर अशत। प० बलदेव उपाध्याय भी इसी मत से सहमत प्रतीत होते है।[1] ऋकसहिता के प्रसिद्ध सवाद अधोलिखित है–

१ अगस्त्य, लोपामुद्रा १/१७६

२ इन्द्र अदिति और बामदेव ४/१८

३ अगस्त्य, इन्द्र तथा मरूदगण १/१६५, १७०, १७७

४ विश्वामित्र–नदी ३/३३

५. वशिष्ठ–इन्द्र ७/३३

६ यम–यमी १०/१०

७ मीन धीवर तथा आदित्य ८/६५,६६

८. सरमाणि १०/१०८

---

[1] प० बलदेव उपाध्याय वैदिक साहित्य और सस्कृत

६ इन्द्र, इन्द्राणी तथा वृषाकपि १०/८

१० पुरूरवा–उर्वशी ६०/६५

११ अग्नि तथा देवगण १०/५१,५३

इस प्रकार कुल बाइस कथाए वर्णनात्मक और आत्मकथात्मक हैं। उनमे से तीन कथाए पुरूषोत्पत्ति १०/६० हिरण्यगर्भोत्पत्ति १०/१२१ तथा सृष्ट्यिुत्पत्ति १०/१२६, दार्शनिक तथ्यो का उद्घाटन करती हैं। वस्तुत कथात्मक शैली मे वर्णित होने तथा ब्राह्मणगत अनेक कथाओ का मूल आधार होने के कारण हम उन्हे भी कथा रूप मे ग्रहण कर सकते है। जुआरी की कथा, आत्मकथात्मक शैली का उदाहरण है। गृत्समद और नचिकेता की कथाओ की स्थिति वर्णनात्क तथा सवादात्मक के मध्य की हैं। इन कथाओ की सूची इस प्रकार है–

१ कक्षीवत् और स्वनय १/१२५

२ दीर्घतमस्

३ गृत्समद २/ १२

४ वशिष्ठ–विश्वामित्र ५३,७/३३

५ सोमावतरण ३/४३

६ त्रयरुण और वृषजान ५/२

७ अग्निजन्य ५/११

८ श्यावाश्य आत्रेय ५/२२

६ अश्विन और यतियाज ६/५२

१०. सरस्वती और वध्यश्व

११. बृहस्पति जन्म ६/७१

१२ सुदास ७/१८

१३ नहुष ७/६५

१४ जुआरी १०/३४

१५ असमाति और पुरोहित

१६ प्रजापति उषस् १०/६१/५

१७ सूर्यविवाह १०/८५

१८ पुरूषोत्पत्ति १०/६०

१६ देवापि और शन्तनु १०/६८

२० हिरण्यगर्भोत्पत्ति १०/१२१

२१ नचिकेतस् १०/१३५

विस्तृत कथानको के अतिरिक्त ऋग्वेद मे राजाओ के द्वारा दिए गए दानो से सबद्ध घटनाओ का भी उल्लेख है। इन घटनाओ को लक्ष्य कर अनेक छोटी–छोटी कथाएँ प्रवृत होती है। प्रो० विन्टर नित्ज की दृष्टि मे दानस्तुतिया धार्मिक तथा लौकिक काव्य को जोडने वाली कडी हैं। इस प्रकार के लगभग ५० सूक्तो मे पुरोहित यजमान के दानादि कार्यो के गीत गाता है।

डा० मणिलाल पटेल इनकी सस्था ६८ बताते हैं। युधिष्ठिर मीमांसक मे "ऋग्वेद की कतिपय दान स्तुतियॉ" में अनेको की ऐतिहासिकता को खण्डित करने का प्रयत्न किया है। सर्वानुकमणी के अनुसार ऐसी दान स्तुतियों की सख्या १७ है।

१. स्वनय १/१२५

२ भवियव्य १/१२६

३. सुदास पैजवत ७/१८

४ असग ८/१

५ कारायण पाकास्थाना ८/३

६ कुरूग ८/४

७ कशु ८/५

८ तिरिंदर पार्शब्द ८/६

९ त्रसदस्यु ८/१६

१० चित्र ८/२१

११ सौषाम्ण वरू ८/२४

१२ कानीत्पृथुश्रवस ८/४६

१३ प्रस्कण्व ८/५५

१४ कच्छ और अश्वमेघ ८/६८

१५ आर्क्षश्रतर्वण ८/७४

१६ कुरूश्रर्वण त्रासदस्यत् १०/३३

१७ सावर्णि १०/६/२

ऋग्वेद की चतुर्थ कोटि की कथाए वे हैं जो देवों के व्यक्तिगत कार्यो से संबद्ध है और जिनका सूक्ष्मोल्लेख मात्र मिलता है। विष्णु ने त्रेघा विक्रमण किया। वृत्र–वध के समय इन्द्र की सहायता की। देवो ने राह भटके गर्ग को राह दिखाया। इन्द्र ने कुशिक की कामना पर गाधि के रूप मे जन्म लिया (ऋ० १/१०/११)। असुरपुर का भेदन किया (१/११/४) शुष्ण का वध किया (१/११/७) बल का वध कर गायो को उन्मुक्त किया (१/११/५) पुत्र को मार डाला (१/३२)। कुत्स की रक्षा तथा दसस्यु की सहायता की (१/३३/१४–१५)। अगिरस्, अत्रि और विमल के

सहायक बने (१/५१/३)। पिप्रु के नगरो का विध्वस किया, ऋजिश्वन् को बचाया। कुत्स की शुष्ण से रक्षा की। अतिथिग्व के रक्षार्थ शम्बर का विनाश किया तथा अर्बुद का वध किया (१/५१/६) शर्यात के यज्ञ मे अपनी पुत्री वृचया को कक्षीवान को दे दिया (१/५१/१२–१३) २० राजाओ तथा उनके ६००७६ अनुयायियो का दमन किया (१/५३/६)। तर्वयाण आदि की सहायता की (१/५३/१०)। इसके अतिरिक्त भी इन्द्र ने सुर्वश, तुवीर्त्रि, एतश, पुरूकुत्स, अजाश्व, अम्बरीष सहदेव और सुराधस् आदि पॉच पुत्र तथा त्रसदस्यु, दिवोमदास और दमीति आदि की भी सहायता की। पर्वतो का पक्षच्छेद किया। विकुण्ठा के पुत्रत्व को स्वीकार किया। कृष्ण और दस सहस्त्र सहयोगियो को समाप्त किया। विश्वरूप के ६६ शस्त्रो को विफल कर उसका वध किया। अश्न, रुध्रिका, धुनि, चुमुरि, क्रिवि एव पीयु को मार डाला।

अश्विन प्रतिदिन लोगो की भूलो का सुधार करते है। उन्होने सुदास को धन प्रदान किया। प्यासे गौतम के लिए कुए को तिरछा कर दिया। शंयु की गाय को दोग्ध्री बनाया। रैभ और वदन को असुरो से बचाया। भुज्यु को समुद्र मे डूबने से बचाया। अत्रि को अग्नि मे जलने से बचाया। करकन्धु वैय्य और सुचन्ति को सहायता प्रदान किया। परावृक् को कन्याओ का पति बना दिया। विपश्पला को आयसी जघा प्रदान किया। वशिष्ठ पृश्निगु और कुत्स पर दया दृष्टि डाली। वध्रिमती को सुवर्ण हस्त पुत्र दिया। घोषा का उपचार किया। दीर्घतमा की रक्षा की। जहू और जाहुण को सहायता प्रदान की।

इस प्रकार ऋग्वेद मे प्रार्थनाओ और स्तुतियो के बीच उनके आख्यान भरे पडे है। कोई–कोई तो अतिरोचक एव साहित्यिक सौन्दर्य से युक्त है। इन्हीं कथाओ को आधार मानकर ब्राह्मण साहित्य की विविध कथाओ का पल्लवन एव विस्तार हुआ है।

ब्राह्मण ग्रन्थों मे कथाए

ब्राह्मण ग्रन्थो का प्रधान विषय विधि है। शेष ब्राह्मण अश इसी विधि भाग के पोषक और निर्वाहक मात्र है। यज्ञ का विधान कब किया जाय, उसे कैसे सम्पन्न किया जाय? उसमे किन साधनो की आवश्यकता होती है, कौन व्यक्ति अधिकारी होता है तथा उस यज्ञ को सम्पन्न करने की प्रक्रिया क्या है? इत्यादि समस्याओ का समाधान एव ऋत्विको एव कर्तव्य निर्देश करने के लिए ब्राह्मण ग्रन्थो का उदय हुआ। इनमे स्थान–स्थान पर अनुष्ठेय पदार्थों की पुष्टि के लिए प्राचीन ऐतिहासिक कथाओ का समावेश तो हुआ ही साथ ही अन्य अनेक कथाओ की कल्पना की गयी। यह कथा भाग ही ब्राह्मण का सर्वाधिक आकर्षक अश है। ब्राह्मणो मे इन कथाओ का एक ही प्रयोजन है– और वह है कार्य मे पुरूष प्रवर्तन के प्रति प्ररोचना। यह कथन कि विधि भाग, ब्राह्मण युग की मरुभूमि मे फूटा हुआ एक पुष्प है जिसे दार्शनिक चिन्तन की प्रथम उषा के पूर्व हम कुछ साहित्यिक मान सकते है। अतिरजन मात्र है। सत्य तो यह है कि ये कथाए कर्मकाडीय जटिल प्रक्रिया रूप मरुस्थल मे शाद्वल समुदाय पुष्पोद्यान है जिसकी सुगन्ध से सम्पूर्ण वातावरण सुरभित हो उठता है। अपौरुषेयवादी मीमासकों अनुसार आख्यानो की कल्पना मंत्रार्थ ज्ञान के लिए बाद मे की गयी, न कि आख्यान ज्ञान के लिए मत्रो की रचना की गयी। अतएव ऐतिहासिक दृष्टि से ये असत्य हैं। आख्यानो मे दो बाते हैं वृतात ज्ञान एव प्ररोचना। वृतान्त ज्ञान न तो विधि मे प्रवर्तक हैं और न ही निवर्तक। अतएव प्रयोजन के अभाव मे ये अनपेक्षित हैं। प्ररोचना से कार्य मे प्रवृत्ति या निवृत्ति होती है। आख्यानों मे इतनी ही बात की आवश्यकता है। यद्यपि यह बात अवश्य सत्य है कि कथाओ का उददेश्य प्ररोचना मात्र है, किन्तु मीमासको यह मत कि सभी आख्यान कल्पित ही है, आज के ऐतिहासिक अध्ययन के युग में हास्यास्पद प्रतीत होता है। ऐसे आख्यानो की सख्या जो कि कल्पित हैं अवश्य अधिक है। किन्तु इन कल्पनाओ का कोई न कोई आधार अवश्य हैं जो सहिताओं में दिखायी पडता है। ऋग्वेद वैदिक आख्यानो का मूल स्रोत है जिसके इन्द्र, वृत्र तूर्य, देवासुर

स्पर्द्धा आदि विषयो का ब्राह्मणकारो ने कल्पना का सहारा लेकर। कर्मकाण्ड की सगति के लिए विविध रूपो मे विस्तार प्रदान किया। इसी भॉति पुरूषोत्पत्ति, हिरण्यगर्भोत्पत्ति तथा सृष्ट्युत्पत्ति आदि दार्शनिक सूक्तो के विषय को लेकर शतपथ मे अनेक आख्यानो की सृष्टि हुई। ऋग्वेद की च्यवन सुकन्या दध्यङ्, पुरूरवा, उर्वशी और शुनशेप आदि कथाऍ कल्पित न होकर ऐतिहासिक हैं। ब्राह्मणकारो ने कर्मकाण्ड के प्रसग मे विनियुक्त कर उन्हे भी अनेकश विस्तार प्रदान किया। ब्राह्मणो मे अश्वमेघादि के प्रसग मे आयी फल श्रुतिया इतिहास की अच्छी सामग्री है। इन्ही ऐतिहासिक कथाओ के आधार पर अनेक परवर्ती कथाओ का सृजन हुआ।

शतपथ तथा ऐतरेय ब्राह्मण की कथाओ से संबद्ध आधुनिक साहित्य

(यास्क–निरूक्त ५०० ई० पू०)

वैदिक कथाओ की अध्ययन परपरा मे यास्क का निरुक्त प्रथम सोपान हैं। निरूक्त वैदिक कोष निघटु का भाष्य है जो बाद के साहित्य मे स्वतत्र ग्रन्थ के रूप मे प्रतिष्ठित हुआ। निरूक्त मे कोषगत शब्दो के अर्थ निर्धारण के सम्बध मे उद्धृत मंत्रों की व्याख्या और निरूक्त के साथ ही कथाओ का विन्यास एव उनके स्पष्टीकरण का प्रयास है। इन कथाओं के विन्यास की आवश्यकता मत्रो की रचना की पृष्ठभूमि का सकेत करने के लिए पडी। निरूक्तगत ऐसी कथाओ की संख्या डा० लक्ष्मण स्वरूप ने २६ बताया है। किन्तु मेंरी गणना मे यह सख्या पचास है। यास्क ने कुछ कथाओं को अपने शब्दो मे वर्णित किया है तथा कुछ को मूल रूप मे ही उद्धृत कर दिया है। यद्यपि नैरुक्त सप्रदाय वैदिक कथाओ के अर्थ निर्धारण के संबन्ध मे आख्यान समय के अति निकट है। और उनकी व्यवस्था प्राकृतिक ___ के रूप में करता है, किन्तु यास्क के द्वारा वर्णित कथाओ के सूक्ष्मावलोकन से ज्ञात होता है कि ये कुछ कथाओ को सच्ची ऐतिहासिक घटना तथा, कुछ को प्राकृतिक संगठना मानते हैं एवं शेष को अविश्लेषित छोड़ देते हैं। अगस्त्य, इन्द्र और मरूत्

(१/५–६) शाकपूणि का पर्व (२/८–६), देवापि तथा शातनु (२/१०–१२), विश्वामित्र–नदी–सवाद (२/२४/२७), शुनशेप (३/४), वशिष्ठ का आक्रोश (३/६+१०), त्रृत कृपपातित च्यवन (४/१६), अगस्त्यनीयमुद्रान्तैवासी सवाद (५/३), कक्षीयत् (६/१०), वशिष्ठ अस्थविर के पुत्र परासर (६/३०) हारा जुआरी (७/३, ६/७–८), नृतानद् तथा कपिजलु (६/४–५), वशिष्ठ एव परावृक (६/७), कक्षीवत तथा का भावयव्य (६/६), गृत्सनद इन्द्र एव असुर (१०/१०) ऋजुओ को अमृतत्व प्राप्ति (११/१६) की कथाओ को, यद्यपि इनमे कहीं अति मानवीय तत्व भी है, को यास्क ऐतिहासिक मानते हुए प्रतीत होते है। इन्द्र, वृत्र युद्ध (२/१६), शुष्ण वध (३/११), इन्द्र और अहिल्या (३/१६), उणस् और प्रजापति (३/१६), वाराह वध (५/४), उणसि आदित्य एव अश्विन (५/२१), ऋजाश्व (५/२१), सवर वध (७/२३) तथा विष्णु विश्रण (१२/१८/१६) की व्याख्या प्राकृतिक सघटना के रूप मे करते है। शेष के विषय मे यास्क ने कोई भी समाधान नही प्रस्तुत किया। इसके अतिरिक्त बहुत सी कथाओ का उद्धरण मात्र है।

शौनक[1] वृहददेवता (४०० ई० पू०)

वृहददेवता वस्तुत वैदिक कथाओ के सकलन का नियमित प्रयास है। काव्य शैली मे कही गयी ये कथाए महाभारत मे वर्णित अनेक कथाओ के समान ही है। डा० कीथ ने इन कथाओ को महाभारत से गृहीत माना है। मैकडानेल इस धारणा को समीचीन नही मानते।[2] वस्तुत· एक वैदिक रचना जो सर्वानुक्रमणी से पहले की हो और यास्क से थोडा ही बाद मे लिखी गई हो, महाभारत से कभी भी प्रभावित नही हो सकती। शौनक का उद्देश्य यद्यपि मूलत ऋग्वेद के देवता, छद, ऋषि और विनियोंग की सूची प्रस्तुत करना था, किन्तु मत्र विविष्ट किन परिस्थियो में

---

[1] में कुल ६५ बार शौनक का उल्लेख है। अतएव डा० मैकडालन ने वृहददेवता पृ० २२–२३ मे इसका कर्तृत्व शौनक परवर्ती उन्हीं के सम्प्रदाय से सबद्ध आचार्य को दिया है किन्तु षडगुरू शिष्य ने वेदार्थ दीपिका १.१ १६६, २१, ३५३ ५.६१ १० तथा १०१८१ आदि में तो निश्चित रूप से शौनक को ही वृहददेवता का प्रणेता बताया है।

[2] वृहददेवता प्र० अ० पृ० ३

लिखा गया। इस बात को स्पष्ट करने के लिए उन–उन मत्रो एव सूक्तो से सबधित घटनाओ और कथाओ को कहना पडा। वृहद् देवता के १२२४ श्लोको मे से तीन सौ श्लोक कथा वर्णन मे ही प्रयुक्त है और निश्चय ही यही इस ग्रन्थ का सर्वाधिक रूचिकर एव महत्त्वपूर्ण अश थे। शौनक ने वृहददेवता के प्रथम अध्याय मे इन कथाओ की सख्या ४० कही है।

कात्यायनः सर्वानुक्रमणी (३५० ई०)

कात्यायन की सर्वानुक्रमणी का भी वैदिक कथा साहित्य के अध्ययन की दृष्टि से एक विशिष्ट स्थान है। यद्यपि यह ऋग्वेद के सूत्रो के देवता और छदो की सूची है, तथापि प्रसगत सूक्तो के स्पष्टीकरण के लिए उनके देवता रचना परिवेश एव तत्सम्बद्ध घटनाओ एव कथाओ की संक्षिप्त सूचना है। ऐसे कथा सकेतो की संख्या मैकडानेल (सर्वानुक्रमणी पृ० ६ पादटिप्पणी) ने २० दी है। किन्तु इसमे यह कुल मिलाकर ३० कथाएँ होनी चाहिए।

षड्गुरू शिष्य वेदार्थदीपिका (११८७ ई०)

१२ वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में किसी ने षड्गुरू शिष्य उपनाम से कात्यायन की सर्वानुक्रमणी पर वेदार्थ दीपिका नाम की टीका लिखी। लेखक न केवल प्रतिभसपन्न वैदिक विद्वान ही था, अपितु वह निष्णात् वैयाकरण एव अन्य सात विषयो मे दक्ष था। सभवत इसीलिए वेदार्थदीपिका मे मौलिकता के साथ ही साथ उच्च कोटि की विद्ववत्ता की झलक दीख पडती है। इसमे जहॉ एक ओर क्लिष्ट अंशो की व्याख्या है वही दूसरी ओर वैदिक कथाओ का अति सुन्दर समावेश भी जो प्राय· वृहद्देवता से ली गयी है। कतिपय कथाएं तो अति विस्तार के साथ पद्यबद्ध है और अधिकतर सूक्ष्म रूप मे सकेतित मैकडानेल ने ऐसी कथाओ की संख्या २३ मानी हैं। किन्तु ये कुल मिलाकर ३५ हैं।

सायणः वेदार्थ प्रकाश (१३५० ई०)

सायण का वेदार्थ प्रकाश वैदिक कथाओ का सागर है। इस वैदिक विद्वान की अध्यक्षता मे एक विशिष्ट द्विजमण्डल ने विविध वैदिक ग्रथो, सहिता, ब्राह्मण श्रौतसूत्रों पर भाष्यो की रचना की तथा इन भाष्यो को वेदार्थ प्रकाश की सज्ञा से अभिहित किया गया। ब्राह्मणो मे कहानियो के स्पष्ट रूप मे वर्णित होने से सायण के ब्राह्मण भाष्यो मे कथाओ की दृष्टि से कोई नवीनता नही है। किन्तु सहिता मे कथाओं का प्राय· अति सूक्ष्म सकेत होने से सायण को उन्हे कहने का अच्छा अवसर प्राप्त है। सायण ने कथाओं का प्राय स्वय सूक्ष्म रूप मे वर्णन कर उनकी पुष्टि के लिए अधिकतर ताण्डय, शाख्यायन, ऐतरेय तथा कौशितकि ब्राह्मण सर्वानुक्रमणी और कभी–कभी वृहददेवता निरूक्त एव मनु स्मृति से उद्धरण दिये हैं। कुछ उद्धरणो के स्रोत अज्ञात भी हैं। वेदार्थ प्रकाशगत कथाओं की कुल संख्या १०६ है।

द्याद्विवेदीः नीतिमंजरी(१४४४ ई०)

द्याद्विवेदी की नीतिमंजरी भी वैदिक कथाओ के अध्ययन की दृष्टि से कुछ कम महत्वपूर्ण नही है। नीतिमजरी की रचना क्षेमेन्द्र की चारुचर्या के आदर्श पर हुई है जिससे मंजरी कार ने चार बार उद्धरण दिये हैं। इसमे १६६ नीतियो का समावेश है, जो परस्पर असबद्ध सी प्रतीत होती है। ये नीतियां छद मे लिखी गयी है। पूर्वार्द्ध में प्रतिनयों का कथन एव उत्तरार्द्ध में वैदिक कथाओं और घटनाओं का सन्निवेश किया गया है। ग्रन्थकार ने कथाओं को स्वयं न कहकर प्रायः ऋग्वेद के मंत्रों निरुक्त, वृहददेवता, सर्वानुक्रमणी वेदार्थदीपिका, वेदार्थप्रकाश तथा तथा कभी–कभी शतपथ, ऐतरेय, कौषितकि, आरण्यको, ऐतरेय तथा कौषितकि उपनिषदो, आश्वलायन शाख्यायन, श्रौतसूत्र एवं कौषितकि गृहसूत्रो से उद्धरण लिये गये हैं। कहीं–कहीं कुछ परिवर्तन के साथ और कभी कभी तो प्रसंग निर्देश के बिना भी उद्धरणों का समावेश है। ग्रन्थ विभाग ऋग्वेद जैसा ही है। और उसी क्रम से कथा सन्निवेश भी। कुछ नीतियों में किसी भी घटना का अभाव दृष्टिगत होता है।

आधुनिक

वैदिक तथा साहित्य अति विशाल है। किन्तु आधुनिक युग मे इसके कलेवर की दृष्टि से कम ही विद्वानो ने कार्य किया है। इस दिशा मे प्रथम उल्लेखनीय प्रयास जे० म्योर का हैं, जिन्होने 'ओरिजनल सस्कृति टेक्स्ट' की रचना की। इसमे विविध विषयो से सबद्ध वैदिक कथाओ का सग्रह और उनका ऐतिहासिक मूल्याकन है। भारत मे डा० सीग नें श्यावाश्व आत्रेय, वृषजान और बामदेव, तथा गौतम आदि कथाओ का आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया। साथ ही उनके अध्ययन प्रकार एव अन्वेषण के समान्य सिद्धान्तो पर भी प्रकाश डाला। मैक्डानेल एव कीथ के 'वैदिक इण्डेक्स ऑफ नेम्स एण्ड सब्जेक्ट्स' में सम्पूर्ण ऐतिहासिक और देवशास्त्रीय तथ्यो का उद्घाटन और विविध प्रसगो का समाकलन है। केवल सरमा की कथा का उल्लेख इसमे नहीं है। एफ० इ० पार्जिटर ने 'ऐन्सियन्ट इण्डियन हिस्टोरिकल ट्रेडिशन' मे पौराणिक साहित्य मे अविछिन्न रूप से वैदिक कथाओ का ऐतिहासिक विवेचन प्रस्तुत किया। वेवर[1] ने शतपथ की जलप्लावन, विदेहमाथव, च्यवन सुकन्या और कद्रुविनता की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए उक्त ग्रन्थ का महाभारत की मूल कथा तथा बौद्ध कथाओ के सबन्ध के औचित्य पर विचार किया। विन्टर निट्ज[2] ने पुरूरवा–उर्वशी, जल प्लावन शुनशेप मन–वाणी स्पर्द्धा, इन्द्र द्वारा पर्वतो का पक्षच्छेद, और सृष्टि रचना सबधी कतिपय कथाओ[3] पर विचार व्यक्त किये। मैक्समूलर ने याज्ञवल्क्य मैत्रेयी संवाद, कक्षीवत कवष, ऐलूष, शुनःशेप, जनक, नाभानिदिष्ठ और जलप्लावन की कथाओ का विशद वर्णन किया हैं[4]। प० बलदेव उपाध्याय ने पुराण–विमर्श मे प्रजापति उषस् तारा और चन्द्रमा, इन्द्र–वृत्र तथा अहल्या–मैत्रेयी— इन चार कथाओ की व्याख्या की है। वैदिक साहित्य और सस्कृति मे ऋग्वेद के ३० आख्यानो का निर्देश कर शुनःशेप, पुरूरवा, उर्वशी, च्यवन, सुकन्या वशिष्ठ विश्वामित्र एवं श्यावाश्व तथा रथवीति की कथाओ का मनोरम वर्णन प्रस्तुत किया तथा उनकी शिक्षाओ का सजीव समाकलन किया। इसके अतिरिक्त वैदिक कथाओं का मनोहारी सग्रह प्रस्तुत किया। एच० एल० हरिअप्पा नें ऋग्वैदिक

---

[1] सस्कृत लिट्रेचर पृ०१३४–३८ एव १८६
[2] इडियन लिट्रेचर पृ० २०६–२५
[3] शत० ब्रा०२/२/४ ११/१/६/१–११, ६/१/१, ११/२/३/१
[4] एशिययट सस्कृत लिट्रेचर ।

लीजेन्ड्स थ्रू दि एजेज मे सरमा, शुनशेप तथा वशिष्ठ, विश्वामित्र_इन तीनो कथाओ के विविध विकास क्रमो पर प्रकाश डाला है। मेक्डानेल की 'वैदिक माइथोलॉजी' और कीथ की 'इण्डोइरानियन माइथोलॉजी' भी इस दृष्टि से कुछ कम महत्त्व की नही है।

इसके अतिरिक्त समय—समय पर विभिन्न विद्वानो ने कथा विशेष को भी अध्ययन का विषय बनाया। 'काट्रीब्यूशन टू दि इटरप्रेटेशन ऑफ दि वेद' मे ब्लूमफील्ड ने कथाओ की व्याख्या के प्रमुख सिद्धान्तो पर विचार किया। पौरत्स्य तथा पाश्चात्य देशो की विभिन्न जल प्लावन की कथाओ के अध्ययन के आधार पर वैद्यनाथ अय्यर[1] ने शतपथ की जलप्लावन की कथा को सबका मूल माना है। डा० सूर्यकान्त ने 'फ्लड लीजेण्ड्स इन सस्कृत लिटरेचर' नामक स्वतत्र ग्रन्थ लिखा,[2] जिसमे समस्त भारतीय कथाओ के अतिरिक्त पाश्चात्य जल प्लावन कथाओ का अध्ययन प्रस्तुत किया और यह निष्कर्ष निकाला कि भारतीय कथा अन्य किसी भी विदेशी प्रभाव से परे है। साथ ही ऋग्वेद (७/८८/३—५) मे कथा के बीज की सभावना प्रस्तुत की। ज्वाला प्रसाद सिघल ने शतपथ ब्राह्मण की कथा के आधार पर पजाब को आर्यो का आदि देश कहा है।[3] ए० पी० कर्मस्कर ने भी उक्त कथा के तीन संस्करणो का निर्देश किया।[4] इसके अतिरिक्त धुरनीफ,[5] प्रो० बेबर,[6] एस् विलियम्स,[7] जॉन म्योर,[8] बी० आर० रामचन्द्र दीक्षितार,[9] आदि विद्वानो ने भी उक्त कथा को अध्ययन का विषय बनाया। शुन शेपाख्यान ने भी अनेको विद्वानो का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया। सर्वप्रथम रॉथ ने कथा के दो सस्करणो का उल्लेख किया। बाद मे एच० डी० नरहरि[10] ने अपने शोध निबन्ध 'शुनस्यलीजेण्ड इन वैदिक एण्ड पोस्ट वैदिक लिटरेचर' मे राय के मत से असहमति व्यक्त की और तीन सस्करणो का निर्देश किया।

---

[1] जे० पी० ए० एस० १९२६

[2] एस० मन्द एण्ड कम्पनी १९५० दिल्ली।

[3] क्वा० पृ० ४५७—६६ तृतीय भाग।

[4] फस्तशिफ्तकाणे पृ० (२५३—५७)

[5] भागवत त्रृभाग भूमिका पृ०

[6] छ० स्टू० (१६०)

[7] इण्डियन एपिक पोएट्री पृ० (३४)

[8] बी० एस० टैक्स्ट पृ० (१८१—९६) तथा (३२४)

[9] मत्स्य पुराण ए स्टडी मद्रास १९३५

[10] पूना बोरि० काणे कर्ण० वाल्यूण १९४१

एच० एल० हरियप्पा ने भी प्रस्तुत कथा को शोधप्रबन्ध की परिधि मे ग्रहण किया। इसके अतिरिक्त जॉन म्योर[१] ,कीथ[२] , डा० सामशास्त्री,[३] विल्सन,[४] रीजन,[५] ओल्डेन बर्ग[६] ने भी अपने–अपने मत व्यक्त किये। एम० राजा राव ने 'दि एक्लिप्स कोड ऑफ ऋग्वैदिक आर्यन्स ऐज रिवील्ड इन शुनशेप हिम्स एण्ड ब्राह्मणाज'[७] लेख मे इसकी ज्योतिषशास्त्र परक व्याख्या की। आर० एन० सूर्यनारायण[८] ने ऐतरय की एव सुब्रह्मण्यम्,[९] ने तै० आरण्यक की कथा को अध्ययन का विषय बनाया। एफ० बैनेर ने 'दि लीजेण्ड आन शुनशेप इन तैत्तिरीय ब्राह्मण एण्ड आश्वलायन स्रौतसूत्र'[१०] तथा पी० एस० पडित ने 'लीजेण्ड ऑफ शुनशेप' नामक शोध निबन्ध लिखे।[११]

जॉन म्योर ने आरिजिनल सस्कृत टेक्स्ट' मे पवर्ग्य कर्म से सबद्ध विविध कथाओ का सग्रह किया। डा० सामशास्त्री ने उक्त कथा की ज्योतिष–शास्त्रीय व्याख्या प्रस्तुत की। राजाराम ने 'ए स्टोरी ऑफ प्रोसेसन ऑफ इक्वीनाक्स' शोध निबन्ध मे प्रस्तुत कथा को प्राचीन भारतीय पचाग के पुनर्निमाण की घटना का प्रतीक कहा है।[१२] इसी तरह हाग[१३] तथा एगलिग[१४] ने भी अपने अपने विचार व्यक्त किये है।

---

[१] बी० एस० टैक्स्ट टी० पृ० ३५५–६०
[2] जर्नल रा० ए० सी० एस० १६११ पृ० ६८८
[३] ट्प्स
[४] ऋग्वेदानुवाद
[५] ऋग्वेदानुवाद पृ० ६०
[६] दि स्टोरी ऑफ इण्डियन गाडविडेन (ए——————————एण्ड क० लन्दन १६११)
[७] पृ० और भाग ६ १६४२ पृ० १–२६
[८] पृ० औ० १६३८
[९] अ० औ० रि० प०
[१०] एकेडमी जापान वर्लिन १६२६
[११] श्री अरविन्द एण्ड जयन्ती ८/१६४६
[१२] पृ० औ० त० भाग ३, १६४३
[१३] ऐ० ब्रा० ४/१८
[१४] श० ब्रा० १४, भूमिका

के० रेनो ने 'त्रित आप्त्य'[1] तथा 'विश्वरूप'[2] शोध निबधो मे विश्वरूप को 'सर्पदेव' सिद्ध किया है। डब्ल्यू एन० ब्राउन ने ऋग्वेद १०/१२४ को आधार मानकर देवो तथा असुरो के सबन्ध पर प्रकाश डाला है। तै० स० तथा ब्राह्मण के अशो के साक्ष्य पर पैन्सुनु[3] ने देवो तथा असुरो को एक ही नाम से सबद्ध तथा बाद मे नैतिक स्तर और जीवन मूल्यो मे अन्तर आ जाने से पृथक बताया है। प० क्षेत्रेश चन्द्र चट्टोपाध्याय[4] ने इन्द्र पुत्र युद्ध का मूल स्थान सप्तसिधु प्रदेश माना है। वेन्फे तथा रेनो ने वृत्र एण्ड वृत्रघ्न मे अवेस्ता साहित्य मे किसी देव के द्वारा राक्षस के मारे जाने की घटना का अभाव माना है।[5] उनके अनुसार भारतीय साहित्य मे इन्द्र वृत्र युद्ध की घटना बाद मे विकसित हुई जिनमे विजयी देव, सर्वकारक इन्द्र और जलोन्मेचन इन तीन घटनाओ का मिश्रण है। हॉकिन्स ने १६६५ मे उसिक पाइथालोजी मे रामायण एव महाभारत के इन्द्र–वृत्र युद्ध की समानताओ का निर्देश किया। शातिपर्व <u>१२/३४२/७८</u> तै० भाष्य <u>२/५/१</u> के समान है। उद्योगपर्व का अश (५/६) भी शातिपर्व के समान है। केवल दो श्लोक ही ७/८/५ मे समानता रखते है। डब्ल्यू सिफेल ने १६४८ मे त्रिसिरस पर विचार करते हुए बताया कि वृत्र की जिस कार्य का श्रेय इरानी साहित्य मे प्राप्त हुआ। वह श्रेय भारतीय साहित्य मे इन्द्र को मिल गया। ए० सी० चित्र 'स्टडीज इन वर्ड मिथ्स'[7] ने भी त्रिसिरस की कथा का शोध का विषय बताया।

डा० फतेह सिंह[8] ने इसे ध्रुव प्रदेश मे प्रकाश की प्रथम किरणों के आगमन का रूपक बताया है केशवमणि शास्त्री ने सुपर्ण से **शिक्षा** लेख में उसकी महत्ता और शिक्षाओ पर विचार किया । सोम इन द लीजेन्डस[9] मे बी०एच० कपाडिया नें

---

[1] उफल १६८७
[2] बु०स्कू०बी० स्ट० १६३०–३२
[3] क्वा०ज०पी०सो० १६३७
[4] छठा आ०इ०जो०का० १६३०
[5] पेरिस १६३४
[7] पृऔ भाग ४,५
[8] पृऔ भाग ४५
[9] चुन्नीलाल गाधी विद्या भवन ५अगस्त,१६५८

सोम परक अनेक कथाओ का सकलन प्रस्तुत किया। डा० फतेह सिह ने 'यम–यमी' कथा[1] को भी प्रकाश और अन्धकार के वतावरण मे उद्भुत कहा । पी०एस० शास्त्री ने भी 'यम–यमी' सवाद का विवेचन किया। उक्त लेखक ने भी इन्द्र के साथ मॉ के जन्म कथा को सूर्य और उशस् के सहोदय का प्रतीक बताया है। कीथ ने कुमार स्वामी स्मृति ग्रन्थ १६३८ 'गन्धर्वाज' शोध निबन्ध मे गन्धर्वो से सम्बन्धित सभी कथाओ का विवेचन किया। <u>पी० इ० डूनाट</u> ने <u>ब्लूम फील्ड</u> के मत से असहमति व्यक्त करते हुए वज्रएकपाद को सूर्य के रथ को स्तम्भ बताया है जो आकाशीय यात्रा मे सूर्य को सहारा देता है।[2] वी० वी० दीक्षित ने 'ब्रह्मा एण्ड सरस्वती' लेख मे पिता–पुत्री के सबन्ध से सबद्ध कथा के स्तरो पर प्रकाश डाला।[3] डा० धीरेन्द्र वर्मा ने मिथ ऑफ अहल्या मैत्रेयी मे अहल्या की कथा के विकास सूत्रो की विवेचना पस्तुत की। आर० एन० दाण्डेकर न 'वृत्रहा' इन्द लेख प्रस्तुत किया[4]।

यू० बी० शाह ने 'वृषाकपि इन ऋग्वेद'[5] मे भारतीय इन्द्र तथा इरानियन वृषाकपि सम्प्रदाय मे संघर्ष की कल्पना की है। प० क्षेत्रेश चन्द्र चट्टोपाध्याय के अनुसार वृषाकपि सूक्त की कथा द्रविडो मे नहीं उत्पन्न हुई।[6] कथोद्भवन के समय सूर्योपासना के स्थान पर इन्द्रोपासना प्रधान होती आ रही थी। आर्यो के किसी न किसी रूप मे ईरानियो से सबद्ध होने की भी सभावना लेखक ने व्यक्त की। प्रो० वेलकर ने सप्तवध्रि और वध्रिमती की कथा की पूर्ण व्याख्या ऋग्वेद <u>५/७८</u> के आधार पर किया। उनके अनुसार सप्तवध्रि एवं वध्रिमती पति–पत्नी है। सम्पूर्ण सूक्त सोमयाग मे अश्विनो को सबोधित है जिन्होने प्रसवादि अनेक अवसरो पर वध्रिमती एव ऋषि की सहायता की है। यह सप्तवध्रि स्वय अत्रि ऋषि है। सामशास्त्री ने रोहित को सूर्य मानकर उसकी ग्रहण परक ज्योतिष शास्त्रीय व्याख्या प्रस्तुत की है।

---

[1] बना० हिं० यूनि० चौथा भाग।
[2] तेलगू, भारती, वद्रास जून,६२४ ४८३–८६
[3] ज० अमे० जोरि० सी० १६३३
[4] प्री० औ० भाग–८ पृ० ६६–६७
[5] ज० औ० इ० व० ८ (१) ४१–५०
[6] इ० युनि० १६२५, पृ० ६७–१५६ ।

के० आर० श्रीनिवास आयगर ने 'उर्वशी' लेख मे कथा के याज्ञिक महत्त्व तथा प्रतीको पर विचार किया।[१] ऋग्वेद १०–६५ 'पुरुरवस उर्वशी'[२] मे एच० डी० जे० डेजार्ट ने सूक्त की व्याख्या तथा उर्वशी एण्ड पुरूरवश मे सम्सनवाला ने अनुवाद प्रस्तुत किया है।[३] पी० एस० शास्त्री ने सवाद सूक्ताज ऑफ दि ऋग्वेद,[४] उर्वशी–पुरूर्वश सवाद[५] तथा 'पुरुवस् ए वैदिक ड्रामा[६]' लेख प्रस्तुत किया। इन्दिरा नलिन ने दि लीजेन्द ऑफ पुरूरवा एण्ड उर्वशी[७] तथा डी० डी० कौशाम्बी ने उर्वशी एण्ड पुरूरवस्[८] नामक लेख लिखा। मधुसूदन ओझा ने वैज्ञानिकोपाख्यानम्–वैदिकोपाख्यानम्[९] तथा रसिक बिहारी जोशी ने सस्कृत वाङ्मये कथा साहित्यस्य विकास मे अनेक वैदिक कहानियो का वर्णन एव विश्लेषण किया। पी० एस० शास्त्री ने अगस्त्य, लोपामुद्रा–सवाद[१०] डेमेट्रिक फ्रे[११] ऋग्वैदिक वैलेट्स[१२] तथा ऋग्वैदिक लीजेण्डस ऑफ माइथेलॉजी नामक शोध निबन्ध लिखे। लीजेण्ड फ्राम दि शतपथ ब्राह्मण[१३] पूषन लीजेण्ड इन शतपथ ब्राह्मण[१४] विष्णु लीजेण्ड ऑफ दि शतपथ ब्राह्मण[१५] तथा प्रजापति लीजेण्ड फ्राम दि शतपथ ब्राह्मण[१६] कथा पर भी शोध निबन्ध लिखे गये। हाउर तथा बी० एन० मुकर्जी ने अथर्ववेद की दान स्तुतियो का अध्ययन किया। हॉपकिन्स ने भी सूर्या से सबद्ध कथाओ की व्याख्या की।[१७] डा० भावे ने प्राब्लम्स ऑफ दि डायलॉग हिम्स ऑफ दि ऋग्वेद मे नाटकीय तत्त्वो की

---

[१] श्री अरविन्द मदिर एनुअल जयन्ती स० ८ १९४८

[२] ओ० नी० ल० १९४८ पृ० ३६३–७१

[३] गोडे स्मृति ग्रन्थ १९६० पृ० ३७–३९

[४] प्रो० वा० इ० औ० क० तेरहवा सत्र भाग दो नागपुर, १९५१ पृ० १५२८ ।

[५] भारतीय मद्रास जुन १९४४ पृ० ४८३–८६

[६] ब० युनि० ९९ १९५६ पृ० ४१–४३

[७] ज० अ० व० युनि० १९(२) सि० १९५० पृ० १९६३

[८] बी० बी० आर० एस० २७ पृ० १–३० ।

[९] जयपुर १९५०।

[१०] तेलगू नवोदय मद्रास १९४३ पृ० १४–१६

[११] १६ (२) पृ० ४३४

[१२] पृ० औ० १० पृ० ६२–१००

[१३] लेख सक्षेप १६ वॉ रा० इ० ओ० का लखनऊ १९५१ पृ० २१–२३

[१४] लेख सक्षेप १६ वॉ आइ० ओ० का अहमदाबाद १९५३ पृ० ६

[१५] लेख सक्षेप रा० इ० ओ० का अन्नामलाई नगर १९५५ पृ० १–१०

[१६] लेख सक्षेप स्पी० २० वॉ आइ० ओ० सेक० का० भुवनेश्वर १९५६ पृ० १२

[१७] ज० इने० ओ० सो० १९३८

ाववचना को तथा कीथ ने इन्ही सवादो से नाटको की उत्पत्ति बताया है।[१] स्टेन कोनो ने भी सवाद सूक्तो से ही नाटको की उत्पत्ति माना है।[२]

[१] दि आरिजिन ऑफ सस्कृत ड्रामा १९२४

[२] इण्डिशे ड्रामा १९२०

द्वितीय अध्याय

ऋग्वैदिक कथाएँ

१.दध्यञ्च

इन्द्र के श्वेत अश्वो द्वारा चालित रथ ने महर्षि दध्यञ्च के आश्रम मे प्रवेश किया। रथ रुका उस पर से उतरे पीतवसन, मदारमाला, स्वर्णाभरण विभूषित मुकुटधारी, शची पति इन्द्र। ऋषि ने सुरेन्द्र को देखा। एष्णाओ को तिलाजलि देने वाली अग्नि से तप्त स्वर्ण तुल्य ऋषि काया कटि प्रदेश पर नत हुई।

"पुरन्दर!" ऋषि ने इन्द्र को प्रणाम किया। सादर बोले, "आश्रम आपका स्वागत करता है। कृपया पाद्य, अर्ध–आसन, तथा मधु–पर्क ग्रहण कीजिए।"

इन्द्र ने पुष्पित आश्रम को एक बार ऑखे घुमाकर देखा। यज्ञ बेदी से उठती हुई हवि की सुरभित धूम्र राजि वायु मण्डल को शुद्ध कर रही थी। ऋषि को हृदयस्थ पवित्रता विकसित होकर आश्रम के कण–कण मे मुखरित थी।

" महात्मन!" इन्द्र ने कहा, " आपको किसी वस्तु की आकाक्षा नही है। मैं जानता हूँ तथापि चाहता हूँ कि आप मुझसे अभीष्ट फल प्राप्त करे। मै आपकी इच्छा पूर्ण करूँगा। कहिए क्या वर मागते हैं।"

"मधवा ! मुझे मधु विद्या दीजिए।" "मधु!"

इन्द्र आश्चर्यचकित हुए।

"हॉ ! सुरेश्वर!"

दध्यञ्च ने निश्चयात्मक स्वर मे उत्तर दिया।

"तपस्वी, यह दुर्लभ है।" इन्द्र की मुद्रा गम्भीर हो गयी। "आपकी कृपा से सब कुछ सुलभ है।"

इन्द्र असमजस मे पड गये। मधु देना नही चाहते थे। किचित् ठहरकर बोले,"मैं उसका रहस्य बता सकता हूँ। किन्तु एक शर्त होगी।" "मुझे स्वीकार है।"

इन्द्र गगन मण्डल की ओर देखने लगे। क्या मै शर्त जानने का अधिकारी हो सकता हूँ। ऋषि नें इन्द्र के मुख–मण्डल पर दृष्टि स्थिर करते हुए पूँछा।"यदि आप इस रहस्य को उद्घाटित करेगे तो आपका मस्तक काट दिया जायेगा।" इन्द्र ने हाथ मे बज्र घुमाते हुए कहा–"भगवन्!" ऋषि ने दृढतापूर्वक कहा,"मुझे आपकी शर्त स्वीकार है। मैं उसका उल्लघन नही करूँगा।"

इन्द्र ने दध्यञ्च ऋषि को मधु विद्या का उपदेश दिया। ऋषि उसे सहर्ष ग्रहण कर कृतार्थ हुए।

अश्विनि कुमारो को बात मालूम हो गयी। दध्यञ्च ऋषि को इन्द्र ने मधु का रहस्य बता दिया। इन्द्र तथा अश्विनी कुमारो मे वैमनस्य था।

महर्षि तपस्या रत् थे। अश्विनी कुमारों ने शनैः–शनै प्रवेश किया। दोनों कुमारो को ऋषि ने देखा अविलम्ब पहचान गये। उनका पाद्य, अर्घ्य और मधुपर्क से सुस्वागत किया। कुशासन बैठने के लिए दिया । आश्वस्त होने पर ऋषि ने सादर प्रश्न किया "अश्विनी द्वौ! आपके शुभागमन का प्रयोजन क्या जानने का अधिकारी हो सकता हूँ ?"

"महात्मन्! एक विशेष प्रयोजन से आपके आश्रम मे आये हैं। हमारे प्रयोजन की सिद्धि आपके द्वारा होगी। यही हमारी एकान्त कामना है।"

आपके पास एक गुण है, उसके हम आकाक्षी हैं।"

महात्मन्! हम आपसे गुण दान चाहते है।"

"कौन दाता सामर्थ्य रहते दान नही करना चाहेगा?" ऋषि ने किंचित् मुस्कराकर कहा।

"आपके पास है।"

"तो—दूँगा।"

"महात्मन्! मधु–रहस्य उद्घाटन।"

ऋषि सहसा हतप्रभ हो गये। कल्पना नही की थी कि अश्विनी कुमार इस रहस्य को जानते थे।

"महात्मन्! हम जानते है। इन्द्र ने आपसे वचन लिया है। उसका उल्लघन करने पर आपका मस्तक छिन्न हो जायगा।"

'हा, किन्तु–?"

"महात्मन्! आपकी अकाल मृत्यु नही होगी। हम कुशल वैद्य हैं। कुशल शल्य चिकित्सक है।"

"ऋषिवर! इन्द्र आपका कुछ नही बिगाड सकेंगे। आपकी कुछ हानि नही होगी।"

"ऋषिवर! हमने उपाय निकाल लिया है।"

ऋषि की चुभती निगाहे अश्विनी कमारो की ओर उठी।

"साधारण बात है। आपका मस्तक काट कर हम अलग रख देगे। उसके स्थान पर अश्व के मस्तक लगा देगे। अश्व के मस्तक द्वारा मधु रहस्य का उदघाटन् आप कीजियेगा। इन्द्र वज्र से आपका मस्तक काट देगे। वह आपका अश्व मस्तक होगा। हम उसके स्थान पर आपका पुराना मानव मस्तक पूर्ववत् पुन: लगा देगे।"

"महात्मन्! इसमे चिन्ता की कोई बात नही है आपके वचन का उल्लघन नहीं होगा। आपने जिस मस्तक से वचन दिया है। वह मस्तक वचन उल्लघन का दोषी नहीं होगा। दोषी होगा अश्व मस्तक जिसे हम आपकी ग्रीवा पर मानव मस्तक के

स्थान पर जोड देगे। अपराध अश्व का मस्तक करेगा। दण्ड उसे भोगना होगा। आपका मानव मस्तक अछूता रहेगा।''

दध्यञ्च ने मधु रहस्य अश्विनी कुमारो को उद्घाटित किया।

मधु का रहस्य उद्घाटित होते ही, इन्द्र का क्रोध उग्र हो उठा। उन्हे ऋषि के वचन उल्लघन पर क्रोध आया। वे वज्र लेकर दौडे। क्रूर वज्र को आते देखकर महर्षि ने चित्कार किया। वज्र प्रहार से ऋषि का अश्व मुख छिन्न हो गया। बहुत दूर पर्वत स्थित शर्पणावृत सरोवर मे जाकर गिर गया। वह शर्पणावृत तीर्थ बन गया और प्राणहीन धड भूमि पर गिर पडा।

अश्विनी कुमारो ने अविलम्ब ऋषि के मानव धड पर, ऋषि का मानव मस्तक जोड दिया।

शल्य चिकित्सक अश्विनी कुमारो के अद्भुत शल्य–कौशल को देखकर जगत आश्चर्यचकित हो गया।

अश्विनी कुमार मधु की शक्ति के कारण यज्ञ मे बैठे। उन्हे यज्ञ भाग मिलने लगा।

उनकी प्रतिष्ठा देव समाज मे बढ गयी। इन्द्र ने प्रतिहिसा का आश्रय नही लिया।

और दूसरी ओर दध्यञ्च ऋषि कुशासन पर आश्रम मे बैठे थे उनकी दिब्यदृष्टि ज्योतिर्मय थी। उन्हे दिब्य मन्त्रो का दर्शन होने लगा। उनकी वाक्शक्ति जाग्रत हो गयी। शुद्ध कण्ठ से सस्वर वेद ऋचाएँ निकलने लगी। वायु मण्डल, पवित्र वाणी से वेदमय हो गया। और जगत ने दर्शन किया एक सूक्तद्रष्टा, याज्ञिक, अग्नि

प्रज्ज्वलन कर्त्ता और उनका जहा मस्तक गिरा था, वह हो गया शर्णावत् तीर्थ, अपनी इस चिरकथा की स्मृति सर्वदा जगत् को दिलाता हुआ।*

२– च्यवान–सुकन्या

विचरणशील शर्यात मानव का अस्थायी शिविर धूमधाम से लगा। चहल–पहल थी। शर्यात अपने कुटुम्ब के साथ थे। उनकी पुत्री सुकन्या साथ थी। कुमारगण साथ थे।

शिविर स्थापित हो चुका था। कुमार खेलने लगे। खेलते–खेलते वे एक स्थान पर पहुँचे। कुमारो ने देखा। मृत्तिका से भरा मानव जीर्ण शरीर। बाल जिज्ञासा जागृत हुई। वाल्मीक पर कीडावश लोष्ट प्रहार करने लगे।

विचित्र घटना घटी। राजा के गॉव मे फूट पड गयी। अनायास लोग एक–दूसरे से झगडने लगे। पिता–पुत्र लडने लगे। भाई–भाई भिड गये माता कन्या मे झडप होने लगी भाई–बहन परस्पर प्रहार करने लगे।

शर्यात विकल हो गये, देखकर यह अनहोनी। उन्होने विचार किया। स्यात उनसे कुछ पाप हो गया था। उन्होने कोई द्वेषपूर्ण कार्य कर दिया था।

किन्तु शर्यात की समझ मे कुछ नही आया। उन्हे अपना कोई अनुचित कर्म, अव्यवहारिक आचरण दिखाई नही दिया। किन्तु अपराधो के कारण उन्हे महान् कष्टों का सामना करना पड रहा था। उनकी समझ मे नही आया।

---

* आधुनिक सर्जरी अर्थात शल्य–चिकित्सा बहुत विकसित मानी जाती है। वैदिक काल की सर्जरी कम विकसित नहीं थी

[2] अश्विनी कुमार शल्य तथा भैषज चिकित्सा के आचार्य माने जाते हैं। आधुनिक सर्जरी ग्राफ्टिग के ढग पर प्राचीन काल मे भी सर्जरी होती थी। दध्यञ्च के मस्तक को काटकर उसके स्थान पर अश्विन कुमारों नें अश्व का मस्तक अश्विनी कुमारो ने लगाया थ। लगा मस्तक पूर्व कालिक मान मस्तक तुल्य कार्य करने लगा। यही बात कहानी रूप मे वेद मे लिखी गयी है।

'ऋग्वेद १८०१६, शतपथ ब्राह्मण १४११ ताण्डय ब्राह्मण १२८६ तथा गोपथ ब्राह्मण १५२१ में वर्णित है।

उनके साथ चिन्तनीय मुद्रा हो गयी गोपालकादि को। उनमे एक अकस्मात बोला

"हॉ, स्मरण आया।" सबकी दृष्टि उसकी ओर उठ गयी। उसने स्मरण करते हुए कहा

"यहॉ एक जीर्ण–शीर्ण पुरूषाकार वल्मीकि है। उसे कौतूहलवश कुमारो ने लोष्टो से आहत किया है। सम्भव है उस तपस्वी के क्रोध का यह सब परिणाम हो रहा हो।"

"निश्चय–।" शर्यात को जैसे एक सूत्र मिल गया। उन्होने आदेश दिया, "रथ लाओ।" रथ आया। राजा ने अपनी कन्या सुकन्या को साथ लिया। रथारूढ हुए। ऋषि के पास पहुॅचे।

"नमस्ते! महात्मन्!" राजा ने करबद्ध वेदवेदागो से निष्णात तपस्यारत ऋषि च्यवान को नमन् करते हुए कहा।

"भगवन! इस अकिचन का नाम शर्यात है। मेरा समीप ही शिविर लगा है।" ऋषि की ऑखे खुली। उनका शरीर कुमारो के लोष्ट प्रहार से आहत हो गया था। ऋषि ने शर्यात का विनय देखा। उनका क्रोध शान्त होने लगा। शर्यात ने अपनी कन्या सुकन्या को उनके सम्मुख करते हुए कहा "ऋषिवर यह मेरी सुकन्या नाम्नी कन्या है।"

ऋषि की दृष्टि सुकन्या पर पडी।

मुनिवर! आपको कुमारो ने कष्ट पहुॅचाया है। हम उसके लिए क्षमा प्रार्थी हैं।" राजा ने करबद्ध निवेदन किया।

"महात्मन्! इस कन्या को आप स्वीकार कीजिये। इसी मे मैं अपने पाप का प्रायश्चित देखता हूॅ। यह आपकी सेवा करेगी।"

शील भार से सुकन्या का मस्तक नत हो गया। ऋषि की बुझी ऑखो ने ज्योतिर्मय युवती के निर्मल नयनो को देखा। ऋषि विचार करने लगे। शर्यात ने कहा, "भगवन्! गोत्रो के परस्पर द्वन्द्व तथा व्याप्त अराजकता को कृपया बन्द कीजिए।"

ऋषि का अभय मुद्रा मे हाथ उठ गया। शर्यात प्रसन्न हो गये। सुकन्या से बोले

"पुत्री! च्यवान तुम्हारे पतिदेव हैं। उनकी सेवा मे तुम्हारे जन्म की सार्थकता है। शिविर मे शान्ति हो जायेगी। रक्तपात से लोग बच जायेगे।" सुकन्या ने पतिदेव के चरणो का पत्नीवत् स्पर्श किया।

"ओ सुन्दरी!" अश्विनी कुमारो ने सुकन्या को आश्रम मे एकाकी विचरण करते हुए देखा। सुकन्या ने अपने सम्मुख दो अत्यन्त सर्वांगीण सुन्दर युवक कुमारो को देखा। सुकन्या ने उनकी तरफ ध्यान नही दिया। उसके नेत्रो मे उपेक्षा झलक रही थी। "तन्वी! " अश्विनी नें कहा, "तुम्हारा यह अनुपम रूप, यह युवावस्था, यह रति को भी मात देने वाली काया। नेत्रो मे छलकती काम मादकता——।

दैव कितना निर्दयी है। उसने तुम्हारा विवाह एक महा वृद्व, जीर्ण–शीर्ण, मृतवत काया से कर दिया है।"

"वे मेरे देवता हैं–।" "कुमारो! जब तक वे जीवित हैं, मेरे पति हैं। मैं उनका त्याग कैसे कर सकती हू। आप लोग जाइये।"

सुकन्ये! कुमारो ने तुमसे क्या बाते कही है।" सुकन्या को समीप आते देखकर ऋषि च्यवान ने पूछा।

"दूषित विचार है। उन्हे सुनकर क्या कीजिएगा?" सुकन्या ने विषाद–पूर्वक कहा।

"वे पुन आयेगे?" ऋषि ने कहा।

"यदि वे पुन आये तो उनसे कहो——। "वे समृद्व नही है। पूर्ण नही है।

"और यदि वे पूछे, वे किस प्रकार असमृद्व हैं, तो क्या उत्तर दोगी?"

"उनसे कहना——प्रथम आप लोग मेरे पति को युवा बना दीजिए। तत्पश्चात् आपको कारण बताऊॅगी।"

सुकन्या ने शकित दृष्टि से ऋषि की ओर देखा ऋषि ने मुस्कराते हुए कहा सुकन्ये! मै जैसा कहता हूॅ करो। इसमे दोष नहीं है। वे तुम्हारा कुछ अनुपकार नही कर सकेगे।" "सुन्दरी! " अश्विनी कुमारों ने आश्रम मे पुष्प चयन करती सुकन्या को देखकर सम्बोधित किया।

सुकन्या ने उपेक्षापूर्वक उनकी ओर देखा। पुष्प चयन करती रही। सुकन्या ने कहा–"आपसे क्या बाते करूॅ ? आप समृद्व नहीं हैं। आप अपूर्ण हैं।" किस प्रकार–?

"यह बात कहने की नही है।"

"हम अश्विनी कुमार हैं। देवता हैं।"

"तथापि आप असमृद्ध हैं। अपूर्ण हैं। आपके साथ कौन रहेगा?"

"सुहासिनी! हम पर यह लाछन लगाने का आधार क्या है?"

"बताऊॅगी——।"

"कब——?"

प्रथम मेरे पति को युवा बनाइये।"

"यह कौन असाधरण बात है?"

"तो कीजिए——।

"सुनो! तुम अपने वृद्ध पति को समीपस्थ ह्रद मे ले जाओ। उसमे डुबकी लगवाओ। जितने वर्ष के युवा वे होना चाहेगे, उनका उतना ही रूप तथा वय हो जायगा।"

सुकन्या प्रसन्न हो गई।

"जराक्रात ऋषि आगिरस च्यवान प्रसन्न हो गये। पत्नी का सहारा लेकर वे ह्रद मे स्नान करने चले।

"सुकन्ये! तुम्हारे पति युवा हो गये। उनका कायाकल्प हो गया। उन्हे सौन्दर्य मिल गया। यौवन मिल गया युवती! हमारी कामना पूर्ण करो।"

"अश्विनी कुमारो! आपकी कृपा से पति युवा हो गये। हम आपकी पूजा करते है। किन्तु आपका प्रस्ताव मैं कैसे स्वीकार कर सकती हूँ?" "आप लोग अपूर्ण है। आपसे कौन सम्बन्ध स्थापित करेगा?" सुकन्या ने प्रगल्भ स्वर मे कहा।

"तुमने कहा था। कारण बताओगी।"

"क्यो नही बताऊॅगी?"

सुकन्या ने उनकी ओर मुस्कराते हुए देखकर उत्तर दिया।

"कुरूक्षेत्र मे यज्ञ हो रहा है। देवता कर रहे हैं। उन्होने यज्ञ से आपको बहिष्कृत कर दिया है। अतएव आप पूर्ण देवता नहीं हैं। आप स्वय असमृद्व हैं। अपूर्ण हैं।

अश्विनी कुमार वहाॅ पहुॅचे। उन्होने देखा। उनके लिए वहाॅ स्थान निश्चित नही था। वे बहिष्कृत थे।

अश्विनी कुमारो ने पूछा "यज्ञ मे हमारा स्थान क्यो नही है।"

"आप मनुष्यो मे विचरण करते है। उनसे मिलते है।"

"हम आमन्त्रित क्यो नही किये गये?"

"आप लोग मानवो मे मिलकर घूमते है। उनके साथ रहते है। उनमे प्रायश्चित करते है।"

"किन्तु आपका यज्ञ पूर्ण नही होगा।"

"क्यो?"

"विशीर्ण बलि से आप यज्ञ करते है। यह कैसे पूर्ण हो सकता है ?"

"तो—?"

"हम विशीर्ण को ठीक कर देगे।"

"यह किस प्रकार होगा?"

"हमे आमन्त्रित कीजिये।"

देवताओ ने विचार–विमर्श किया। वे बोले, "विशीर्णता दूर हो जायेगी?"

"अवश्य—?'

अश्विनी कुमार अध्वर्यु बन गये। बलि की विशीर्णता दूर हुई। वेदोच्चार होने लगा। यज्ञ पूर्ण हुआ और उनको भी पूर्णता प्राप्त हुई। उन्हे यज्ञ मे भाग मिला। और आश्रम मे तरूण मन्त्र–द्रष्टा च्यवान, युवती सुकन्या की प्रसन्नता मे प्रसन्न हो गये।*

---

* **बृहद्देवता** इस कथानक मे अन्तर्जातीय विवाह का सूत्र मिलता है। विवाह एक वर्ग तथा एक जाति तक सीमित नहीं था। वह आर्य मात्र में हो सकता था। राजा अपनी कन्या सहर्ष ऋषि को दान कर देता है। वह प्रजा की आपत्ति निवरणार्थ कन्या का मोह तथा उसके ऐश्वर्य के भविष्य की भी चिन्ता नहीं करता। राजा के लिए प्रजाहित सर्वोपरि था।

नोटः इस कहानी मे कायाकल्प का निदर्शन किया गया है। कालान्तर मे 'च्यवन प्राश' आदि औषधिया इस उपचार के रूप में निकल आयी। (इस गाथा में व्यग्य तथा परिहास भी है। यह वैदिक युग के सामाजिक रूप का एक चित्र उपस्थित करता है। वैदिक प्राणी हम लोग जैसे मानव थे। अर्थ तथा काम उनके जीवन का अंग था। वे अप्राकृतिक नहीं अपितु प्राकृतिक प्राणी थे।)

३—ऋभुगणः

सुधन्वन अगिरस् के पुत्र थे। सुधन्वन के तीन पुत्र ऋभुगण, विम्बन और वाज हुए। तीनो पुत्र त्वष्टा के शिष्य थे। वे कुशल शिल्पी थे।

त्वष्टा ने उन समस्त बातो की शिक्षा तीनो शिष्यो को दी, जिसमे वे स्वय पारगत थे।

उनकी कला निर्माण तक ही सीमित नही थी। उन्होने धेनु भी बनायी। वह अमृत तुल्य मधुर दूध देती थी। सत्याशय, सरल और स्नेही ऋभुओ ने जराजीर्ण अशक्त माता—पिता को अपनी कला से युवा बना दिया था।

त्वष्टा ने चमस पात्र बनाया था। अपने गुरु त्वष्टा से भी वे शिष्य कला म प्रवीण हो गये। उन्होने एक स्थान पर चार चमस पात्र बना दिये। वे अपनी कला, हस्त—कौशल तथा कर्म से स्तुति प्राप्त करने लगे। वे देवताओ के मध्य भी विचरने लगे। वे मानव थे, तथापि उन्हे यज्ञ—भाग भी मिलने लगा।

ऋभुओ की कार्य—कुशलता से सूर्य प्रसन्न हो गये। मरणधर्मा होने पर भी उन्हे अमरत्व प्रदाने किया।ऋभुओ ने निरन्तर परिश्रम तथा शुभ कर्मो द्वारा अमरत्व प्राप्त किया। अग्नि देवताओ के दूत बनकर आये।

अग्नि बोले,"ऋभुगण! मैं देवताओ के कार्य से आपके पास आया हूँ।"

"ऋषिवर! आज्ञा?" ऋभुओं ने नम्रतापूर्वक कहा।

"त्वष्टा ने एक चमस बनाया है।"

"ज्ञात है महात्मन्! "

"एक चमस को चार भागो मे विभक्त कर दीजिये।"

"इससे लाभ? "ऋभुओं ने साश्चर्य कहा।

"देवताओं के तुल्य आप यज्ञ का भाग प्राप्त करेंगे।"

"ऋभुगण विचार करने लगे।"

"महात्मन् हम चार बना देगे।" तीसरे ऋभु ने कहा।

अग्नि प्रसन्न हो गये। बोले, "तुम्हारे गुरू त्वष्टा ने चमस को चार बनाने की योजना को स्वीकार लिया है।"

ऋभुगण हर्षित हो गये। उन्होने चार चमस बनाकर दिये।

"ऋभुओं " अग्नि ने कहा, "आप हस्तब्यापार कुशल है। अमरत्व प्राप्ति के मार्ग पर गमन कीजिए।"

ऋभुओ को यज्ञ मे भाग मिलने लगा। त्वष्टा चमसो को देखकर प्रसन्न हुए। उन्होने उनको ग्रहण किया।

ऋभुओ ने अश्विनीकुमारो के लिए तीन आसनो का दिव्य रथ निर्माण किया। इन्द्र के लिए दो अश्वो से चलने वाले शीघ्रगामी रथ को बनाया। गाय तथा अश्व बनाए। देवताओ के निमित्त अभेद्य कवच बनाया। आकाश एव पृथ्वी को पृथक् किया। वे प्रथम सोमपान करने वाले हुए। वे तीसरे सवन मे स्वधा के अधिकारी हुए।

कनिष्ठ ऋभु वाज देवताओ से, मध्यम ऋभु वरूण से तथा ज्येष्ठ ऋभु इन्द्र से सम्बन्धित हुए। इन्द्र के सखा हुए। इन्द्र के साथ सोमपान करने लगे। वे अरूण तथा मरूद्गण के साथ सोमपान करने लगे।

ऋभुओ ने अश्विनीकुमारो के लिए तीन पहियो का एक देदीप्यमान रथ बनाया। वह बिना अश्व के अन्तरिक्ष मे विचरण करता था।

अपनी कर्तव्यनिष्ठा के कारण वे देवता हुए। उन्होने मानव के लिए देवत्व प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त किया। मानव देव हो सकता है, यह आशा मानवो मे उत्पन्न

की। मानव देवताओ की पूजा करते है, परन्तु अपने कर्म से स्वय पूजित हो सकते है।*

४—त्रित

त्रित गायो के गोष्ठ की ओर जा रहा था। साला वृकी के निर्दय पुत्रो ने त्रित पर आक्रमण किया। त्रित अपनी रक्षा का प्रयास करने लगा। उसने गुहार किया। स्थान निर्जन था। उसकी वाणी गूँजकर रह गयी। उसकी रक्षा—निमित्त किसी दिशा से कोई सहायता प्राप्त नही हुई।

साला वृक के पुत्रो ने गायो को निर्दयतापूर्वक पीटना आरम्भ किया। कोलाहल मे शान्त सरल स्वभाव त्रित की समझ मे कुछ नही आया। क्या करे? गायो पर पडते प्रहारो को दखकर व्याकुल हो गया। उन पर पडता एक—एक प्रहार जंसे उसके शरीर पर पड रहा था। वह शाला वृको से करबद्ध विनती करने लगा। किन्तु कूर आततायी ने त्रित की करूण पुकार पर ध्यान नही दिया। त्रित गायो के पास दौडकर आता। उनके शरीर पर प्रहारो द्वारा पडे नील साटनों पर हाथ से रोता सहलाता। गाये त्रित की ओर करूण नेत्रो से देखती पुन उन पर प्रहार होता। वे भागती। लौटकर त्रित को घेरकर खडी हो जाती।

"गाये इसे नही छोडेगी।" आतताइयो ने कुद्व स्वर मे कहा।

"इसे गायो से अलग करो।" कर्कश वाणी गूँजा।

"अलग कर दो।" उततेजित स्वर गूँजा।

---

* नोट· इस कथानक द्वारा मनुष्य द्वारा अपने कर्म से देवत्व तथा यज्ञ मे देवता तुल्य भाग प्राप्त करने के सिद्वान्त का प्रतिपादन किया गया है। जाति बडी नहीं, किन्तु कर्म बडा माना गया है। कर्म से सब कुछ भी प्राप्त किया जा सकता है। कर्म से ऋभुगणों को इन्द्र तथा सूर्य के साथ सोमपान करने का अधिकार देवताओं के शिल्पी होने पर भी प्राप्त हो गया। उन्हें आहत किया जाने लगा। कोई शिल्पी (बढई) होने से ऊँच या नीच नहीं होता। कर्म मनुष्य को ऊँच—नीच बनाता है। इस कथा में जन्मना वर्ण के स्थान पर कर्मणा वर्ण के सिद्वान्त का प्रतिपादन किया गया है।

क्रूर, लोभी, आततायी, साला वृकी के दुष्ट पुत्रो ने त्रित को बलपूर्वक पकड लिया।

आततायी इधर–उधर देखने लगे। त्रित को छिपाने का स्थान खोजने लगे। कोई उपयुक्त स्थान नही मिला। मानव का आवास कही समीप नही था। उन्हे तृणाच्छादित एक पुराना कूप दिखायी दिया। पाप के उत्साह और क्रूरता की प्रेरणा से वे प्रसन्न हो गये। त्रित को उठाकर उन्होने कूप मे डाल दिया। गायो को पूर्णतया अपहृत कर लिया गया। आततायी चले गये। कूप जलहीन था। सूखा था। घास–फूस से ढॅका था। ईटो से बॅधा था। उसके जल का प्रयोग नही होता था। बहुत दिनो से बन्द हो गया था। उसकी मरम्मत किसी ने करवाने का प्रयास नही किया।

घास–फूस के कारण उसकी हड्डिया टूटी नही। किन्तु गिरते समय उसे कुऍं की क्रूर ईंटो का धक्का लगा। उसका शरीर विदीर्ण हो गया रक्त स्राव हुआ। वेदना से अर्ध–चैतन्य को गया।

त्रित का आकाश कूप का ऊपरी स्तर ही था। विशाल और छोरहीन आकाश के स्थान पर, अत्यन्त सकुचित, सीमित आकाश कूप तल से दृष्टि–गोचर होता था। कूप के अन्दर सब कुछ परिमित था, सकुचित था। पैर फेलाने भर की जगह थी। चारो ओर गोलाकार ईंटो की दिवारे थीं। त्रित कूप की परिमित भूमि, बॅधी वायु, अन्धकार तथा सडी दुर्गन्ध से व्याकुल होने लगा। उसे प्रतीत हो रहा था, जैसे शरीर उसका साथ छोडना चाहता था। त्रित के सम्मुख मृत्यु की मनहूस मूर्ति धीरे–धीरे आयी।

खडी हो गयी। अनेक प्रकार के विचार उसे घेरने लगे।

"जिस त्रित का सामर्थ्य मरूतो ने युद्ध मे नष्ट नही होने दिया था। वे मरूत उसे आज हवा पहुँचाने मे असमर्थ थे। बाहर उसकी हड्डियॉ फेक दी जायेगी। झझावात आयेगा। पवन उसके साथ खेलेगी। जिस त्रित ने त्रिशिरा का वध किया था, आज वही त्रित उपेक्षित था। निर्बल था, जीर्ण–शीर्ण कूप मे बिना प्रयास मर रहा था। जिस त्रित ने सोम देकर सूर्य को तेजस्वी बनाया था, उस त्रित पर आज सूर्य अपनी रश्मियॉ पहुँचाने मे असमर्थ था और यदि बाहर उसकी हड्डियॉ फेक दी गयीं तो अपनी प्रचण्ड प्रखर किरणो से उन्हे तपाने से बाज नही आयेगा। "वरूण हमारे मित्र थे। आज वरूण एक बूँद जल से मेरे शुष्क कण्ठ को सिचित करने की कृपा नही कर रहे है।

"मैने सोम की शक्ति से वृत्र का मान–मर्दन किया था। आज अपने सर पर झूलती, लम्बी सूखी घास उखाडकर, सूर्य प्रकाश अपन तक लाने मे असमर्थ हूँ। असुर नेता बल के दुर्ग को मैने विदीर्ण किया था और आज पुरानी, लोना लगी, निष्प्रभ ईंटो को तोडकर, इस कूप के अस्तित्व का लोप कर, अपने जीवन के लिए, बाहर निकलने की शक्ति नही रखता हूँ"

"इन्द्र ने मेरे लिए गाये उपलब्ध की। उन गायो के कारण मैं कूप मे पडा हूँ। इन्द्र आज मुझे एक बूँद दूध देने के लिए तैयार नहीं है। मैं इन्द्र के समान कर्मी हूँ तथापि कर्मगति पर ऑसू बहाता शरीर के कर्म की अन्तिम घडी की बाट जोह रहा हूँ।"

त्रित व्याकुल हो गया। ऊपर देखा। घास–फूँस, पादपो से छन कर आते क्षीण प्रकाश मे उसने लक्ष्य किया। त्रित को मूर्छा आने लगी। उसके जीवन का अध्याय बन्द होने जा रहा था। त्रित विचलित हो गया। व्यग्र हो उठा। सर पर सूखे घास–फूस सरसरा उठे। उसके उठने की आहट से कूप के वृक्षो पर बैठी छोटी–छोटी चिडियाँ फुर्र–फुर्र करती बाहर उड़ गयी। अपने में लीन हुआ। उसे

जीवन वृत्त स्मरण होने लगा। माता के गर्भ मे था। किन्तु माता के गर्भ मे किसने उसका पोषण किया? किसने इसी प्रकार एक अत्यन्त सकुचित कुक्षि मे उनकी रक्षा की? विचार आते ही, उसकी चेतना जैसे पुन लौटी। उसने स्तवन किया, "देवगण! आपके नियमो का आधार क्या है? वरूण की व्यवस्था कहॉ है? दुष्टो के पार अर्यमा हमे किस प्रकार कर सकोगे? रोदसी! हमारे दु ख को समझो। "मै जल पुत्र त्रित को जानता हूँ। सप्त रश्मिधारी सूर्य से मेरा पैतृक सम्बन्ध है। मै उन रश्मियो की स्तुति करता हूँ। रोदसी! मेरे दु खो को समझो।

"इन्द्र सब वीर पुरूषो से युक्त, इस स्तोत्र द्वारा युद्ध मे विजय प्राप्त करे। मित्र,वरूण, अदिति, सिन्धु, पृथ्वी, द्यौ मेरे इस स्तोत्र का समर्थन करे।" समस्त देवताओ का त्रित ने आह्वान किया। उसके आह्वान पर, उसकी करूण अवस्था पर,बृहस्पति की करूण जागृत हुई। बृहस्पति त्रित के समीप आये।

"त्रित!" बृहस्पति की दयनीय अवस्था देखकर दु खी हो गये। उन्होने मृदु स्वन मे कहा, "तुम्हारी शोचनीय स्थिति पर किस पाषाण हृदय मे करूणा उत्पन्न नही होगी?"

"बृहस्पति!" त्रित ने बृहस्पति को 'शिरसा नमामि' कहते हुए आभार प्रकट किया, "इन कूप की निर्जीव ईंटो ने मुझे आहत किया है। मेरी यह दुर्दशा ______?"

"मन्त्रविद्!" बृहस्पति ने सप्रेम कहा, "तुम्हारा कल्याण होगा। निराश मत हो।" बृहस्पति ने त्रित का उद्धार किया। त्रित ने जगत देखा। उसके अभाव मे जगत मे किंचिन्मात्र परिवर्तन नही हुआ था। बृहस्पति ने त्रित की अपहृत गाये साला वृकी के पुत्रो से वापस ली, सादर उसे दे दीं। *

---

* त्रित की कहानी एक अच्छी कहानी कही जायेगी परन्तु इसका आध्यात्मिक प्रयोजन क्या था गवेषणा का विषय है। मेरा अनुमान है कि त्रित से ही कालान्तर में 'त्रिदेव' का सिद्धान्त विकसित हुआ है, क्योंकि त्रित तीन भाई थे।

५–शुनः शेप

यज्ञशाला मे काष्ठ के तीन यूप गडे थे। शुन शेप बलि निमित्त उनसे पाशबद्ध था। बन्धन मे था। मुक्त नही था। जीवन आशा त्याग चुका था। यजमान उसे यज्ञाहुति चुन चुका था। वह हवि था। पवित्र हवन सामग्री था। परन्तु पवित्रता उसे मुक्त नही कर सकी थी। उसकी मुक्ति की किसी को कामना नहीं थी। उसकी बलि मे लोगो को सुख था। उसके बन्धन पाश मे लोगो की कामनाये गुम्फित थी। उसके दु:ख मे लोगो का सुख था। उसके अवसान मे लोगो के उदय की झलक थी।

मृत्यु उसे निरख रही थी। यज्ञ शिखा तृषित थी। यज्ञ मण्डप का पवित्र वातावरण उसके शरीर मोह को तिरोहित नही कर सका। वह अपने अमगल की प्रतीक्षा मे व्याकुल था। वह अपनी काया का रक्षाकाक्षी था। यज्ञमान उसकी काया विनष्टि मे अपने सुन्दर भविष्य का दर्शन कर रहा था। शुन शेप निस्सहाय था। हताश था।

लोगो का स्वार्थ उसके विनाश मे था। और उसका स्वार्थ अपनी रक्षा मे था। परस्पर विरोधी स्वार्थों के सघर्ष मे, जीवन–मृत्यु के द्वन्द्व मे, उत्सर्ग और अस्तित्व के अधर मे उसे स्मरण आये, निस्सहायावस्था के एकमात्र सम्बल, एकमात्र आशा, एकमात्र सन्तोष, वरूणदेव। उसकी यह क्षीण आशा करूण वाणी मे मुखरित हुई

"वरूण! निशदिन बन्धनयुक्त मैं आपका स्तवन करता हूँ। विज्ञ एव दुर्धर राजा वरूण! मुझे पाश मुक्त कीजिये। पाश बन्धन खोलिये। अग्नि का ग्रास मुझे मत बनाइये।"

शुन शेप की दशा शोचनीय थी। आसन्न मृत्यु भय नेत्रों मे झलक रहा था। जगत उसकी दृष्टि में किसी समय लोप हो सकता था।

भयकर भावनाये उदय होते ही वह मृत्यु दु ख से कातर हो गया। उसे विषाद हुआ। विवशता पर झुँझलाया। लोगो की क्रूरता पर क्रोधित हुआ। किन्तु वह पाशबद्ध था। उसकी भावनाएँ मूर्त न हो सकी। उसकी दयनीय वाणी यज्ञ मण्डप मे गूँजी। किन्तु उसकी करूणा बन गयी, लोगो के कोतुहल की सामग्री। उसने वरूण का करूण स्वर से स्तवन किया

"हे वरूण! दण्डवत्, यज्ञ और आहुतियाँ आपके कोध का निवारण करे। विज्ञ, बली, यशस्वी, सौभाग्यदायक वरूण! हमारे मध्य पधारिये। मुझे कृत पापो से मुक्त कीजिये।"

"पाश पीडा से पीडित शुन शेप के नेत्रो से अविरल अश्रुधारा बह चली। उसकी दयनीय अवस्था लोगो की आँखो मे आश्चर्य बन गयी।" मनुष्य होकर वह बलि से भयभीत है? वह मृत्यु से डरता है? देवकार्य मे प्रसन्नता के स्थान पर रोता है? स्वर्ग पथ से विचलित होता है? किन्तु शुन शेप ने अपने निर्मल अश्रु जल से वरूण को अर्ध्य देते हुए स्तवन किया, "वरूण! मेरे ऊपर के पाश को नष्ट कीजिए। मध्य के पाश को नष्ट कीजिए। और नीचे के पाश को नष्ट कीजिए।

अजीगर्ति शुन शेप ने वरूण को स्मरण करते हुए पुन स्तुति की। शुन शेप ने हव्य वाहन अग्नि की स्तुति की

"अग्नि! आप सतत युवा हैं। तेजस्वी हैं। अग्ने! आप सचमुच पुत्र के स्नेही पिता है। सम्बन्धी के सम्बन्धी है। मित्र के मित्र हैं। देवताओं की पूजा करते हुए भी हम आपको ही हवि देते हैं।

"अमर्त्य अग्नि! आपकी तथा मानवो की प्रशंसादायक वाणियाँ स्नेहमय हैं। बल पुत्र अग्ने! आप अपनी समस्त अग्नियुक्त हमारी प्रार्थना सुनिये।

शुन.शेप नें इन्द्र–सोम की स्तुति की ।

शुन·शेप ने इन्द्र की स्तुति की, उन्हे अञ्जलि बद्ध प्रणाम किया। अग्नि ने उसे सहस्त्र यूप बन्धन से मुक्त कर दिया । उसका पाश बन्धन खुल गया।

इन्द्र उसके सम्मुख प्रकट होकर बोले, "शुन शेप ! तुमसे प्रसन्न हूँ । यह हिरण्यमय रथ तुम्हारे लिए है, सूक्तद्रष्टा।"

६. कक्षीवान–स्वनय

राजकीय शोभायात्रा अकस्मात रुक गई। राजा स्वनय के विमल नेत्रो ने देखा मार्ग के पार्श्व मे शयनशील ऋषिकुमार। ऋषि तरुण था। गाढी निद्रा मे था। मार्ग की श्रान्ति मिटाता अनायास सो गया था। पद धूल से भरे थे। प्रतीत होता था, कही दूर से एकाकी वन मे आ गया था। राजा ने उसकी आकर्षक यौवनसुलभ शोभा देखा। प्रसन्न हो गया। उसे एकटक देखने लगा। पार्षद पीछे रूके। निद्रित ऋषि को कोलाहल का आभास हुआ। ऋषिकुमार ने राजा को देखा। वन मे भीड देखी। कौतूहल बढा। राजा ने स्नेह से पूछा.

"ऋषिकुमार! आपका आगमन कहॉ से हो रहा है?" राजा ने कहा

ऋषिकुमार ने कहा, "राजन! मैंने विद्याध्ययन समाप्त किया है। गुरू आश्रम से घर लौट रहा हूँ।"

"मुझे लोग स्वनय भावयव्य कहते हैं। मैं सिन्धुतटीय भूखण्ड का राजा हूँ।" राजा ने मृदुस्वर मे कहा। "मेरा नाम" ऋषिकुमार ने किचित् रूकते हुए कहा, "मुझे उशिज पुत्र कक्षीवान् कहते हैं। मेरे पिता का नाम दीर्घमस् है। मैं प्रज वशीय हूँ। कुछ महानुभाव मुझे काक्षीवत औशिज भी कहते हैं। "

ऋषि! आप मन्त्र–द्रष्टा हैं। आप सुयोग्य हैं। आप अपने गृह की ओर लौट रहे हैं। क्या गृहस्थ आश्रम मे प्रवेश करने का विचार हैं?" ऋषिकुमार की दृष्टि राजा

की सुन्दर कन्याओ पर पडी। वे ऋषिकुमार के युवक पुष्ट शरीर को देखकर प्रसन्न हो रही थी। राजा की भार्या कुमार को जामाता को दृष्टि से देखने की कल्पना कर रही थी। राजा ने अपनी भार्या की तरफ देखा। भार्या मुस्कराई। दोनो ने नेत्रो द्वारा परामर्श कर लिया।

राजा ने पूछा

"ऋषिवर। आपके वश का विशेष परिचय जान सकते हैं?"

"नृपवर। मै अगिरस के वश का हूँ। मैं उच्थ्य पुत्र ऋषि दीर्घतस् का पुत्र हूँ।"

राजा ने कहा "ऋषिकुमार। हमारे और आपके गोत्र तथा वर्ण मे विरोध नही है। हम एक–दूसरे से सम्बन्ध कर सकते है।" राजा स्वनय ने अपनी दस कन्याओ का एक साथ पाणी–ग्रहण सस्कार कक्षीवान् के साथ कर दिया। कक्षीवान् गृहस्थ बन गया। उसके जीवन का एक अध्याय समाप्त हुआ। राजा ने आभूषणो से भूषित कन्याओ को कक्षीवान् को दिया। कन्याओ के वाहनार्थ दस रथ दिये। प्रत्येक रथ मे स्वस्थ सुदृढ शरीर विभिन्न वर्णों के अश्व, धन, बर्तन, बकरिया तथा भेडे भेट की। साथ ही साथ राजा ने कक्षीवान् को एक शत निष्क तथा एक शत वृषभ दिये। राजा ने कक्षीवान् को एक हजार साठ गाये और दी। कक्षीवान् धन और अपनी पत्नियो के साथ दस रथो पर आरूढ हुआ। अपने पिता के आवास की ओ चलने के लिए उद्यत हुआ। राजा की बन्दना कीं। अपनी बुद्धि द्वारा स्तोत्र भेट किया। पशुधन तथा पत्नियो के साथ प्रस्थान किया। कक्षीवान् ने अपने पूजनीय पिता को गाय दी। तत्पश्चात् श्रद्धापूर्वक सूक्त स्तवन किया· "दानी व्यक्ति सूर्य की उदय होती किरणो के साथ दान देता है। विद्वान लोग उस दान को ग्रहण करते हैं। उस धन से सन्तान, आयु, बल सहित रक्षा होती है। उसे असख्य अश्व, गाय, स्वर्ण राशि मिलती हैं इन्द्र की दानियो पर कृपा होती है। वे उन्हे सामर्थ्य देते हैं। प्रातःकाल उन्हे धन

से पूर्ण कर देते है।" शोभन कर्म युक्त यज्ञ के अवलोकनार्थ निमित्त मे रथारूढ आ गया हू। दानी का स्वर्ग मे सत्कार होता है। देवताओ के वर्ग मे पहुचते है। जलस्रूप घृत, नदिया उनके निमित्त प्रवाहित होती है। उनकी दक्षिणा सर्वदा वार्धक्य प्राप्त करती है । दानियो के पास ऐश्वर्य है। दानी के निमित्त आकाश मे सूर्य स्थित हैं। दानी दान स्वरूप अमृत प्राप्त करता है। उन्हे दीर्घायु प्राप्त होती है। दानी के समीप दुख नही आता। उसे पाप आवृत नही करते। जगत के शोक केवल अदानी व्यक्ति को व्याप्त करते है।

समय बीतता गया। कक्षीवान् ने राजा स्वनय की इच्छानुसार एक शत यज्ञानुष्ठान किये। उशिज पुत्र कक्षीवान् ने अपनी विद्या तथा कार्यो से ख्याति प्राप्त कर ली। उसकी प्रसिद्धि दूसरो के लिए अनुकरणीय हो गयी। अश्विनद्वय उसकी सर्वदा रक्षा करने के लिए उद्यत रहते थे। उन्होने उसके लिए वर्षा की।

कक्षीवान् की बुद्धि उत्तरोत्तर प्रशस्त होती गयी। कक्षीवान् ने विद्वान ऋषि तथा द्रष्टाओ मे यश प्राप्त किया। उसने देवताओ को सोम दिया। उसके बदले मे देवताओ ने उसे पशुधन प्रदान किया। हर्षदायक सोमपान से उसकी बुद्धि दिन–प्रतिदिन कुशाग्र होती गयी। दीर्घ–कालीन शत वर्षीय जीवन प्राप्त किया। उसके वयस्क हो जाने पर भी इन्द्र ने प्रसन्न होकर उसे 'वृचवा नामक पत्नी दी।' ♣

७–नमुचिः

यज्ञस्थल मे भगदड मच गयी। ऋषिगण भयग्रस्त हो गये। देखते–देखते असुर नमुचि ने यज्ञ भग कर दिया। त्रस्त ऋषियो ने इन्द्र का आह्वान किया। मायावी असुर नमुचि के सहार की प्रार्थना की ।

♣ ____________________

युद्धस्थल पर उपस्थित योद्धा के साथ युद्व करना सरल था। किन्तु मायावी असुरो के साथ युद्ध करना कठिन था। पराकमी इन्द्र ने अपनी शक्ति का प्रयोग किया। दास नमुचि को माया शक्ति से हीन कर दिया। असुर की एक शक्ति का लोप हो गया।

नमुचि प्रबल था। उसकी माया का नाश हुआ। किन्तु उसकी शक्ति का नाश नही हुआ। वह इन्द्र के भय से दूर देश मे पलायन कर गया। नमुचि प्रबल था। उसे हराना सरल नही था। युद्ध–स्थल मे नमुचि और इन्द्र निर्णायक युद्ध निमित्त उठ आये।

वज्रिन इन्द्र परम वेग से नमुचि सेना की ओर बढे। उनके सहायक अश्विनी–कुमारगण थे। अश्विनीकुमारो ने उन्हें पुष्टिकर सोन पान कराया। सोम पीते ही इन्द्र ने अतुलित बल का अनुभव किया। उनका रूप अत्यन्त उग्र हो गया। रूद्र रूप इन्द्र नमुचि की सेना पर टुट पडे। अश्विनीकुमार उनकी रक्षा मे तत्पर थे।

असुर वाहिनी पराजित हो चुकी थी। शत्रु सेना का सहार हो चुका था। नमुचि बच गया था। नमुचि ने युद्ध स्थल से पलायन किया। इन्द्र ने असुरो के ९९ नगरो को नष्ट किया। एक नगर अपने निवास निमित्त नष्ट होने से बचा लिया।

नमुचि भागकर प्राण नहीं बचा सका। इन्द्र प्रबल वेग से उसके समीप पहुॅच गये। अपने शत्रु को इन्द्र ने प्रत्यक्ष देखा। पराक्रमी इन्द्र का स्वरूप जाज्ज्वल्यमान अग्नि की तरह प्रज्ज्वलित हो उठा।

नमुचि हनन से मनु का मार्ग सरल हो गया। वे देवताओ के पास सीधे पहुॅच सकते थे। असुर का व्यवधान मार्ग से दूर हो चुका था और दूर हो गया ऋषियो

का असुर आतक। देवता यज्ञो से अपना भाग प्राप्त करने लगे। और नमुचि अर्थात जो जाने न दे, वह स्वय जल फेन द्वारा इस जगत् से चला गया। *

८.दीर्घतमा–

"ममते !" बृहस्पति ने अपने ज्येष्ठ भ्राता उचथ्य की भृगुवशीय पत्नी को कामलोलुप दृष्टि से देखा। ममता सुन्दर थी। युवती थी। सरस थी। मधुरभाषिणी थी। आकर्षक थी। स्वर्णमयी प्रतिभा थी। काम सहचरी रति तुल्य रूपवती थी। सहसा उसमे उत्पन्न हुए सकोच ने उसका अप्रतिम रूप और बढा दिया। उस रूप को देखकर बृहस्पति का मन चचल हो गया।

"बृहस्पति!" ममता वस्त्रो मे अपने अग उपाग को समेटती बोली, "आपका यह अशोभनीय व्यवहार? मै आपके ज्येष्ठ भ्राता की पत्नी हूँ। इस शरीर पर आपका अधिकार नहीं है ।

"यौवन और रूप सबकी ऑखे देखती हैं। उन्हे छिपाकर रखना होता, तो देव इतनी सुन्दर रचना क्यो करते!" रति सुख के अभिलाषी बृहस्पति ने लज्जा को तिलाजलि दे दी थी।

"ओह!" ममता सहमी।

स्थान एकान्त था। पादपो की मजरियॉ सुरभि दान कर रही थी। मरूत के शीतल स्वास्थ्यकर प्रवाह ने कामोत्तेजित शरीर मे बल बढा दिया था। बृहस्पति की सतर्क दृष्टि ने चारों ओर देखा।

---

* यह कथा शतपथ ब्राह्मण में एक दूसरे रूप में दी गयी है। कालान्तर में यह कथा नरसिहावतार की कल्पना का मूल स्रोत हुई। पुराणों में अस्त्र–शस्त्रों द्वारा तथा भूमि अथवा आकाश में न मरने का वर प्राप्त हिरण्यकश्यप को भगवान विष्णु ने नरसिह का अवतार लेकर पलथी पर रख कर मारा। इस प्रकार न तो वह भूमि पर मरा और न आकाश में। हिरण्यकश्यप का ह्रदय अपने नखों से विदीर्ण किया। किसी प्रकार के आयुध का प्रयोग नहीं किया। यहाँ भी जल के फेन से इन्द्र ने नमुचि का सिर मरोडकर उसे चूर्ण किया। किसी आयुध अर्थात अस्त्र–शस्त्र का प्रयोग नहीं किया।

प्रकृति मुसकरा रही थी। सरोवर मे हस–हसिनी किलोलरत थे। प्रफुल्लित थे। कुमुदिनी अमुकुलित थी, पद्म सूर्य को देखकर प्रसन्न था। कुमुदिनी शशि के वियोग मे उदास थी। पुष्पित पुष्प पर भ्रमर बैठी थी। उसके चारो ओर भ्रमर फिरता था। गुनगुनाता था। आकुल होता था। भ्रमरी का पीछा करता उडता था।

प्रकृति के सरस वातावरण मे वृहस्पति आन्तरिक कामजन्य सरसता का अपूर्व अनुभव करने लगे। मन को ढील देने मे उन्हे विचित्र अनुभूति होने लगी। ममता के स्पर्श से सुख मे खो जाने के लिए तैयार हो गये। वे ममता की ओर बढे।

अबला ममता पुरूष बल का सामना न कर सकी। वृहस्पति के बाहुपाश मे लता तुल्य सिकुड गयी। विकलित ममता ने वृहस्पति से आर्त निवेदन किया, "वृहस्पति! मेरे गर्भ मे तुम्हारे बडे भाई की सतान है।"

"ममता! मैं तुम्हारे रति दान का अभिलाषी हूँ । तुम्हारा गर्भ मेरे कर्म मे बॉधा नही डाल सकता।"

वासना के तीव्र प्रवाह मे वृहस्पति प्रवाहित हो चुका था। वर्षाकालीन क्षुद्र नदी की प्रचड बेगवती धारा की तरह वासना–वेग किसी व्यवधान से रूकने वाला नही था। सबका अतिक्रमण करता जलप्लावन के समान बह चला।

"वृहस्पति!" गर्भस्थित गर्भ ने वृहस्पति के शुक्रोत्सर्ग के समय कहा, " मैं यहॉ पूर्व से ही सम्भूत हूँ।"

गर्भ का प्रतिरोध बढता गया। कामोत्तेजना मे ठेस लगती रही। रति सुख मे बाधा पडती रही अतृप्त वासना की प्रतिक्रिया प्रतिहिसा मे हुई। काममूर्ति क्रोधमूर्ति मे हो गई। उन्होने आवेश मे शाप दिया.

दीर्घतमा के मार्मिक, दार्शनिक स्तवन से देवताओ को उस पर दया आ गयी। उसे चक्षु प्राप्त हो गये। दीर्घतमा लोक मे द्रष्टा तथा देवता बन गया।

खिन्न परिचारक षडयत्र मे लग गये। अपने स्वामी वृद्ध तपस्वी दीर्घतमा से छुटकारा पाने के लिए।

दीर्घतमा के परिचारक उसे स्नानार्थ नदी तट पर ले आये। दीर्घतमा की इन्द्रियॉ शिथिल थी। यष्टि का सहारा लेकर खडा था। कमर झुकी थी तथापि तपस्वी था। द्रष्टा था। उसकी हत्या सरल नही थी।

स्नान निमित्त परिचारको के सहारे नदी मे उतरा। क्रूर परिचारको ने उसे गहरे जल मे धकेल दिया। दीर्घतमा हाथ –पैर पटकते सहायतार्थ आर्तनाद करने लगा। परिचारक उसे डूबता न देखकर घबराये।

त्रेतन ने अपनी कृपाण निकाली। दीर्घतमा जल मे मृत्यु से जूझ रहे थे। त्रेतन ने कृपाण द्वारा उन पर आक्रमण किया। क्रूर त्रेतन को वृद्ध पर दया नही आयी।

आश्चर्य! परिचारक भागे। त्रेतन का शस्त्र दीर्घतमा पर आक्रमण नही कर सका, बल्कि उसी के शरीर के सिर स्कध एव वक्षस्थल के टुकडे उसी की कृपाण से हो गये। उसका मृत शरीर जल मे बह चला।

दीर्घतमा संज्ञाशून्य हो गये। जल प्रवाह मे बहते रहे। कही सरिता तट पर जाकर लगे। वहॉ वे पुन जीवन प्राप्त कर सके। शतवर्षीय आयु प्राप्त की। और एक दिन अनेक सूक्तो का द्रष्टा ब्रह्मलीन हो गया।*

---

* पुराण तथा महाभारत मे दीर्घतमा की कथा दी गयी है। ऋषि बहते–बहते अग देश में पहुँचे। वहाँ जल धारा से निकाले गये।

अगराज की दासी उशिज सतानहीन थी। पुत्रकामना से राजा ने उसे ऋषि के पास भेजा। ऋषि द्वारा काक्षीवत आदि सताने पैदा हुई। सत्कृत होकर ऋषि ने वहाँ सुखपूर्वक जीवन यापन किया।

ऋग्वेद में यह घटना नही वर्णित है वृहददेवता मे है। परन्तु ऋग्वेद कालीन आर्यों को अंग देश का ज्ञान नहीं था। यह घटना कथा को पूरा करने के लिए कालातर में मिला दी गयी। अतएव इसे यहाँ नहीं दिया गया है।

६. इन्द्र, मरुद्गण और अगस्त्य

इन्द्र ने मरूतो को सबोधित किया, " मरुद्गण! किस सौभाग्य के कारण आप सम वयस्क हैं, समस्थानी है, समशोभायुक्त हैं? आप किस देश से आये है ? आपका मतव्य क्या है? वृष्टिकारक! आप क्या धन की कामना से शक्ति की पूजा करते है?"

"ऐश्वर्यशालिन ! मरूतो ने कहा, "आपने बहुत कर्म किये है। परन्तु वह सब हमारी सयुक्त शक्ति के कारण सपादित हुए हैं। महाबलिन्! हम लोगो ने भी बहुत कर्म किये हैं। और अपने कर्म द्वारा अपनी इच्छानुसार हम मरुत् हैं।"

"मरूद्गण!" इन्द्र ने मरूतो की गर्वोक्ति का उत्तर दिया, " मैने अपने पराक्रम से, अपने उग्र क्रोध से वृत्र का वध किया है। मै वज्र धर हूँ। मैने प्राणियो के निमित्त निर्मल, मृदु गतिशील सलिल का सृजन किया है।"

अगस्त्य ऋषि तप कर रहे थे। अपने तप द्वारा इन्द्र तथा मरूतो के सवाद को जान लिया।

तिरोभाव अगस्त्य ने दोनो की मैत्री की कामना करते हुए कहा, " मरूद्गण! आपकी मनुष्य स्तुति करते हैं। अपने मित्रो के समीप शीघ्रता पूर्वक गमनशील होइये। उत्तम धनो की प्राप्ति के साधन होते हुए लोगो मे कर्म की प्रेरणा कीजिए।"

अगस्त्य ने इन्द्र निमित्त एक हविष्य का निर्माण किया। तत्पश्चात् वेगपूर्वक इन्द्र के समीप गये। वहॉ पहुँचकर उन्होने मरूतो तथा इन्द्र की स्तुति की। उन्होंने इन्द्र तथा मरूतो के मध्य सन्धि स्थापित करने के विचार से मरूतो को वह हवि देने का निर्णय किया जिसे वे इन्द्र को देना चाहते थे।

अगस्त्य की दाहक भावना इन्द्र समझ गये। इन्द्र ने अगस्त्य को सबोधित किया

''अगस्त्य! आज तथा कल कुछ नही है, जिसका कभी अस्तित्व ही नही रहा उसको कौन जानता है? जिनका मन चचल है वे चिन्तन किये हुए विषय को भी भूल जाते है।''

''इन्द्र! '' अगस्त्य ने कहा, '' मरूतो के साथ अच्छी तरह आप यज्ञ का भाग स्वीकार कीजिए। मरूद्गण आपके भ्राता है।''

''आप मित्रो के आश्रय हैं। आप मरुतो के समान है। हमारी हवि स्वीकार कीजिए।''

अगस्त्य की बातो से इन्द्र प्रसन्न हुए। अगस्त्य ने मरुतो को हवि समर्पित की।

सोम बनाया गया। इन्द्र ने मरुतो के साथ सोमपान किया।

अगस्त्य ने मरुतो की स्तुति की। इन्द्र की स्तुति की। जहॉ–जहॉ इन्द्र मरुतो के साथ गये वहॉ वे मरुत्वत् हुए।

१०. लोपामुद्रा अगस्त्य

अगस्त्य का साथ यौवन त्याग चुका था। अगस्त्य का साथ बुद्धि ने प्रार्थक उचित नही समझा। पर्वत है अग पर्वत का स्तम्भन करने वाले का नाम है अगस्त्य, किन्तु कामवेग मे पर्वत उड जाता है।

तपोवृद्ध, वयोवृद्ध अगस्त्य को देखा लोपामुद्रा की चचल की ऑखो ने। काम की ऑखो ने। उसने देखा अगस्त्य मे काम रति लोलुप लोपामुद्रा चली काम से मिलने। बसत ने दुदुभी बजायी। अगस्त्य ने देखा एक नारी।

रूप आकर्षण है। रूप का यही प्रयोजन है। प्रकृति सहायक हुई। अनुरूप वातारण पैदा किया। प्रकृति ने नर नारी बनाये। काम रति बनाये। आकर्षण बनाया। मिलन बनाया। मिलन सुख बनाया और उस सुख का परिणाम बना प्राणी।

"सुश्रोणि!" अगस्त्य के स्वर मे काम ने प्रवेश किया, "काम प्रकृति का गुण है।"

"तन्वी!" अगस्त्य ने कामदृष्टि से लोपामुद्रा के उत्फुल्ल मुख कमल की ओर देखते हुए कहा, " हमारा परिश्रम व्यर्थ नही हुआ है, देवता हमारे रक्षक है। हम स्पर्धाशीलो को वश मे करते है। शत शत साधनो का उपयोग करते हैं।"

लोपामुद्रा प्रसन्न हो गयी। अगस्त्य ने उसके प्रसन्न मुख को देखते हुए सस्मित कहा

" प्रिये! हम नर नारी रूप से, स्त्री पुरूष रूप से, पति–पत्नी रूप से गृहस्थ धर्म का पालन करेंगे।"

"गुरूवर!" शिष्य ने नतमस्तक हो अगस्त्य और लोपामुद्रा के सम्मुख आकर प्रणाम किया।

"शिष्य!" कहो क्या बात है? अगस्त्य ने मुस्कराते हुए पूछा। उनके तप से ओजस्वी मुखमण्डल की अबूडन मानवीय सरल प्रतिमा मे परिणत हो चुकी थी।

शिष्य का मुख लज्जा से नत् था। वह चाहकर न बोल सका। ऋषि ने उत्साहित करते हुए कहा, " कहो वत्स्!"

"पीताब्धि!" शिष्य ने पति पत्नी को 'शिरसा नमामि' करते हुए कहा, " मैने पाप किया है।"

" पाप?" आश्चर्य से ऋषि ने कहा।

" हॉ"

"कैसा?"

"मैने आपका सभोग सलाप सुन लिया है। मैने पाप किया है। मै ब्रह्मचारी हूँ। मुझे नही सुनना चाहिए था। "

ऋषि मे क्रोध का सचार नही हुआ। वे स्थिर दृष्टि से शिष्य को देखने लगे। लोपामुद्रा ने वात्सल्य प्रकट करते हुए कहा

" वत्स! तुमने कोई पाप नही किया है। तुम्हारा विचार दूषित नही था।"

"ठीक है प्रिये! यह निष्पाप है।"

शिष्य की ऑखो मे अविरल अश्रुधारा बह चली। उन अश्रुविन्दुओ मे ऋषि ने देखी प्रायश्चित की पवित्र रेखा।

"पुत्र!" अगस्त्य ने कहा, "तुम निष्पाप हो।"

सूक्त द्रष्टा लोपामुद्रा ने प्रेम से शिष्य को उठाकर हृदय से लगा लिया। उसकी मूर्धा का चुबन करते हुए बोली, " प्रिय तुम प्रशंसनीय हो।"

सूक्त द्रष्टा अगस्त्य उठकर खडे हो गये। उन्होने शिष्य को अंक मे लेकर उसके मूर्धा का चुबन लेते हुए कहा

"शिष्य! तुम पवित्र हो"

---

* काम प्राणीमात्र की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। काम के कारण ही प्राणी का गर्भाधान होता है। काम के अभाव में प्रजनन नहीं हो सकता। प्रजनन यदि रूक जाय तो जगत का काम नहीं चल सकता। हमारे अस्तित्व का लोप हो जायेगा।

११.त्रिशिरस्

त्रिशिरस् त्वष्टा का पुत्र था। असुरो की बहन से इसने जन्म ग्रहण किया था। देवताओ का पुरोहित था। परन्तु असुरो के साथ सबध था, अतएव इसका झुकाव सुरो की अपेक्षा असुरो की ओर अधिक था। इसके तीन सिर थे। अतएव इसका नाम त्रिशिरा पडा था। एक मुख अन्नाद था, उससे यह अन्न खाता था। दूसरा मुख सोमपीथ था, उससे सोमपान करता था। तीसरा मुख सुरापीथ था, उससे वह सुरा पान करता था। त्रिशिरस असुरो की शुभकामना किया करता था। यज्ञ का हवि भाग असुरो को दे देता था।

त्रिशिरस् युवा था। स्वय सूक्त द्रष्टा था, ऋषि था। त्रिशिरा के पवित्र मस्तको को इन्द्र ने बज्र द्वारा काट कर गिरा दिया। देव पुरोहित की हत्या हुई। त्रिशिरस् ब्राह्मण था। ब्रह्महत्या के दोष से इन्द्र मुक्त नही हो सकते थे।

ब्रह्म हत्या होते ही वाक् ने इन्द्र को सम्बोधित किया "इन्द्र! तुमने हत्या की है। ब्रह्महत्या की है। तुमने विश्व रूप का वध किया है। वह परागमुख होकर भी शरणागत था।"

ब्रह्महत्या के दोष से इन्द्र म्लान हो गये।

जिस मुख से त्रिशिरा ने सोमपान किया था, वह मुख भूमि पर गिरते ही कपिजल पक्षी बन गया। जिस मुख से सुरापान किया था, वह कलविक बन गया और जिससे उसने अन्न ग्रहण किया था, वह तित्तिर पक्षी बन गया।

इस कथा में मानसिक तथा शरीरिक अपराध तथा उसकी दण्ड प्रक्रिया पर प्रकाश डाला गया है। शिष्य ने अपना अपराध स्वीकार कर लिया है। उसने मानसिक अपराध अपनी दृष्टि से किया था। उसका वह दण्ड पाना चाहता था। परन्तु अगस्त्य तथा लोपामुद्रा ने उसे अपराध नहीं माना यह उस समय के सामाजिक व्यवहार तथा आचरण की ओर ध्यान आकर्षित करता है। शारीरिक के साथ मानसिक अपराध की गणना उन दिनों अपराधों में की जाती थी। मानसिक अपराधी भी दण्ड का भागी हो सकता था।

आधुनिक न्यायशास्त्र जब तक अपराध प्रत्यक्ष रूप से पूर्ण नहीं हो जाता उसकी गणना अपराध में नहीं करता और न यह अपराध दण्ड की श्रेणी में आता है। मानसिक अपराध तथा अपराध की तैयारी करना उस समय तक दण्डनीय नहीं होता जब तक वह घटना घट नहीं जाती। वैदिक विधिशास्त्र और आज के विधिशास्त्र में यही अन्तर है।

इन्द्र ने अपने पातक को तीन भागो मे विभाजित किया। उन्हे आवास की समस्या उपस्थित हुई। वे जहॉ स्थापित किये गये उनमे दोष उत्पन्न हो गये। इन्द्र ने अपने पातक को पृथ्वी वृक्ष तथा स्त्रियो स्थापित किया। अतएव पृथ्वी मे सडने का दोष उत्पन्न हो गया। वृक्षो मे अनायास टूटने का दोष पैदा हो गया और स्त्रियो मे रजस्वला होने का दोष प्रविष्ट हो गया। रजस्वला स्त्री सगम द्वारा उत्पन्न सन्ताने दोष युक्त होने लगी। रजस्वला स सगम करना त्याज्य माना गया।

इन्द्र को अपना पातक दूर करना था। यह स्थिति बहुत दिनो तक चल नही सकती थी। अतएव ऋषि सिन्धुदीप ने इन्द्र के पाप निवारण का विचार किया, उन्हे जल से अभिसिचित किया।

अभिषिक्त जल इन्द्र के मूर्धा पर पडा। ब्रह्महत्या इन्द्र का शरीर त्याग कर भाग चली। पातक शरीर के मैल की तरह इन्द्र की काया से धुल कर गिर गया।*

१२– यम–यमी

"बहन!" यम अपनी सगी बहन की चचलता देखकर चकित हुआ। उसके वक्षस्थल पर लगे आर्द्र अगराज सहसा सूखने लगे, "हमारा तुम्हारा सखा–सख्य का सबन्ध नही है। हम यमज हैं। माता के गर्भ मे एक साथ रहे है। यद्यपि हमारी तुम्हारी योनि भिन्न है फिर भी तुम मेरे लिए अगम्या हो। हमे यह अभीष्ट नही है।"

बहन की प्रगल्भता पर यम स्वय लज्जित हो गया। उसकी दृष्टि बहम के कामोद्वेलित नेत्रो की तरफ नही उठ सकी। भूमि की ओर उसकी दृष्टि लगने लगी।

---

* **त्रिशिरस** अन्न सोम तथा सुरापान तीनो का सेवन त्रिशिरस करता था। अलकारिक भाषा मे उन्हें तीन सिरो का प्रत्येक से खाना तथा पीना कहा गया है। परन्तु यह कहानी सुर तथा असुरो के बीच विवाह प्रचलन तथा उसकी मान्यता को स्वीकार करती है। सुरो का पेय पदार्थ सोम था असुरों का पेय सुरा थी और मनुष्यो का भोजन अन्न था। त्रिशिरस् की माता असुर कन्या थी। पिता सुर ऋषि था। अतएव उसमें सुर–असुर दोनों के गुण और अवगुण विद्यमान थे। सुर तथा असुर से उत्पन्न सन्तान हीन नही मानी जाती थी। समाज में उसका आदर होता था त्रिशिरस् इस प्रकार की सन्तान होते हुए भी देवताओं का पुरोहित था। वह सूक्त द्रष्टा था। स्वयं ऋषि था। उसे ब्राह्मण माना गया था। उसको मारने पर इन्द्र को ब्रह्महत्या लगी थी। यह कहानी अन्तर्जातीय विवाह को मान्यता देकर, उनसे उत्पन्न सन्तान को हीन मानकर समाज में अन्य लोगों के समान उच्च स्थान देती है।

यम अपनी बहन के अशोभनीय प्रस्ताव से कॉप उठा। धीरे से कहा "बहन! देवताओ के गुप्त दूत सर्वदा उपस्थित रहते है। वे रात्रि–दिन पृथ्वी पर विचरण करते रहते है। उनके सर्वदर्शी नेत्र कभी बद नही होते। रात्रि अथावा दिन उनके कार्य मे बाधा नही डाल सकते। ओ! नश्वर प्राणी! तुम शीघ्रतापूर्वक किसी दूसरे से प्रणय कर, रथ के दो पहियो की तरह उसके साथ काम मे सलग्न हो।" "बहन वह युग आ गया है, जब बहन भाई का वरण नही करेगी। बहन उसका वरण करेगी, जो उसका भाई नही होगा। अतएव मेरे स्थान पर तुम किसी दूसरे को अपना पति वरण कर लो और अपने हाथ का सुखद तकिया अपने पति को लगा दो।" यमी खिन्न हो गयी और उसने अपने यमी भाई को उपालम्भ देती हुई बोली

"यम वह क्या कोई भाई है, जिसके रहते बहन का पति न मिले, वह बहन कैसी, जिसके पास दुर्भाग्य दौडता आता है, मै काम–वासना से अत्यन्त पीडित हूँ, मै तुमसे सानुनय विनती करती हूँ। तुम अपना शरीर मेरे शरीर से मिला दो।"

"बहन!" यम घृणापूर्वक कहा, " मै तुम्हारे स्पर्श से दूर रहना चाहता हूँ। उन्हे पापी कहा जाएगा, जो अपनी बहन से सबन्ध करेगे। तुम किसी दूसरे के साथ अपनी काम वासना की तृप्ति करो। मुझे इस काम सुख की इच्छा नही है।"

कन्दर्प ज्वर पीडित यमी की भावना मे ठेस लगी। काम–क्रोधित वह बोल पडी– " आह!यम!! तुम दुर्बल हो। मै तुम्हारी बुद्धि और हृदय को नही समझ पा रही हूँ। कोई अन्य तन्वी अश्व के तग अथवा वृक्ष की लता की तरह अपने आलिगन में तुम्हे बॉधना चाहती है।" " बहन!" यम ने गम्भीर स्वर मे कहा, " अन्य व्यक्ति तुम्हारे आलिगन का पात्र है। वह अन्य व्यक्ति वृक्ष लता की तरह तुम्हारा आलिगन करेगा। उसका प्रणय प्राप्त करोगी। वह तुम्हारा प्रणय प्राप्त करेगा और तुम्हारा वर मिलन आनन्दमय हो।"

यम ने बहन को आशीर्वाद दिया। आशीर्वाद की पवित्र औषधि मे, जैसे यमी का काम ज्वर शान्त होने लगा। यम अग्नि है, पृथ्वी यमी है। यम अग्नि–यमी पृथ्वी के सुगन्धि नष्ट करने का साधन नही बन सका।

१३– सरण्यू

त्वष्टा चतुर शिल्पी थे। वास्तु निर्माणकार थे। वास्तुकला के आचार्य थे। इन्द्र के लिए उन्होने वज्र बनाया था। विश्व प्रसिद्ध तीन शिल्पी ऋभु, बिम्वान तथा वाज उनके शिष्य थे। त्वष्टा मजु है। सुपाणि है। तक्षण कलाकार है। लोह परशु धारण करते है। उनके रथ मे दो अश्व योजित होते है। अत्यन्त भास्वर हैं। जटिल रचना के विशेषज्ञ हैं। ब्रह्मणास्पति के लौह–कुठार को तीक्ष्ण करते हैं। आयस पाश बनाते है। श्रेष्ठ पात्र बनाते है। देवताओ क निमित्त शोभन पात्रो का निर्माण किया था। चमस, सम्पत्तिपूर्ण कलशा, सोम पात्र, उनके विलक्षण शिल्पकला के नमूने थे। उन्होने नवीन चमस पात्र बनाया। परन्तु उनके शिष्य ऋभु ने चार चमस पात्रो की रचना कर दी। उनका चमस ही वर्ष है। रात्रि का आकाश उनके चमस पात्र तुल्य है।

त्वष्टा निर्माता है। सार्वभौम के पिता कहे जाते है। उनहोने विविध प्राणियो को उत्पन्न किया है। सोम के अभिभावक हैं। त्वष्टा के ब्रह्मणस्पति पुत्र हैं। वायु उनका जामातृ है। देव भी उनकी सन्तान है।

---

* नोट– 'सुदूर पूर्व काल मे आर्य लोग यमुना के तट से मिस्र को नील नदी और कैस्पियन अर्थात कश्यप सागर तक फैले थे। वहॉ के निवासी आज भी आर्यो की सन्तान हैं परन्तु देश तथा परिस्थितियो के अनुसार रीति–रिवाज तथा विचारो में अन्तर पड़ता गया। एक ही स्रोत से अनेक शाखाए, प्रशाखाए निकलीं। मिस्र के लोग आर्यो के समान सूर्योपासक थे। वहॉ सगे भाई–बहन का विवाह उत्तम समझा जाता था। मिश्र के राजा फराहे का विवाह अपनी बहन के साथ के साथ सनातन काल से होता रहा है। यमज भाई बहन का विवाह औ उत्तम माना जाता था। यहॉ सगे भाई बहन के विवाह की प्रथा को वर्जित किया गया है। मुसलमानों मे दूध बचाकर विवाह करने की प्रथा आज भी प्रचलित है। ऋग्वेद में इस प्रकार के विवाह को अमान्य माना है इस कहानी की यही कथावस्तु है।

यम–यम का अर्थ युगल किंवा जुडवा शिशुओं का होता है। मिन्न लिग के जुडवा शिशु को 'यमौ मिथुनौ' कहा गया है। मृत्यु के देवता हे। पिता सूर्य तथा माता सरण्यू थी। प्रथम मर्त्य प्राणी यम है। यमी यम की जुडवा बहन है।

उनकी दो सन्ताने थी। सरण्यू उनकी कन्या थी। त्रिशिरा पुत्र थे। सरण्यू युवती हुई। त्वष्टा ने कन्या के लिए वर खोजना आरम्भ किया। पिता की चिन्ता सुपात्र अन्वेषण निमित्त सावन की बेल की तरह बढती गयी। विश्व पर्यनत ढूढा। उन्हे विवस्वत जैसा उपयुक्त वर दूसरा दिखाई नही दिया।

त्वष्टा ने विवस्वत के सम्मुख विवाह का प्रस्ताव रखा। विवस्वत स्वय आदित्य है। सूर्य है। वह रात–दिन प्रकट करते है। प्रकाश पुज उनसे प्रकट होता है। विवस्वत तथा सरण्यू मे अलौकिक प्रेम था। सुखमय समय बीतता गया। दाम्पत्य जीवन आदर्श था। विवस्वत को सरण्यू के गर्भ से दो जुडवा सन्तानो ने जन्म ग्रहण किया। उनका नाम यम और यमी था। यम ने अपनी बहन से पूर्व पृथ्वी का स्पर्श किया था। अतएव यमज होने पर भी ज्येष्ठ यम हुए। विश्व की वे प्रथम सन्तान थे। परलोक पहुँचने पर यम वहॉ के राजा हुए। वैवस्वत यम मृतको को शरण देते है। पितृ लोक के पालक है।

तीन लोको मे यम त्रितीय अर्थात सर्वश्रेष्ठ यम–लोक तथा सवितृ शेष दो लोको के स्वामी हैं। यम अपने लोक मे वीणा की सगीत स्वर लहरियो से घिरे रहते हैं। उन्हे वीणा वादन प्रिय है। यम को घृत प्रिय है। अतएव उन्हे घृत अर्पण किया जाता हे। यम ने मृत्यु को अगीकार किया था। स्वत. अपने शरीर का त्याग किया था। यम का प्रशस्त पथ मृत्यु है। यम के दूत उलूक तथा कपोत पक्षी है।

दिवगत होने पर परलोक मे मृत व्यक्ति का आगमन होता है। वहॉ वह यम तथा वरूण का दर्शन करता है। यम के अश्वो के स्वर्ण नेत्र और लौह खुर हैं। वह पितरो के आवास का प्रबन्ध करते हैं। उन्हे विश्राम देते हैं। और उनकी बहन यमी जलीय दिवागना है।

सरण्यू को सूर्य का प्रखर तेल उत्तरोत्तर असह्य होने लगा। सूर्य का वेग सहन करने मे वह असमर्थ होने लगी। भगवान भुवन भास्कर विवस्वत एक दिन अनुपस्थित थे। उनकी अनुपस्थिति का सरण्यू ने लाभ उठाया।

सरण्यू ने अपने सदृश एक रूपवती छाया स्त्री की सृष्टि विवस्वत के परोक्ष मे की । उसे आदेश दिया दिया। सूर्य के साथ पत्नीवत् तथा उसकी सन्तानो के साथ मतृवत् व्यवहार करे।

प्रतिमा सरण्यू की छाया मात्र थी। उसमे सरण्यू के रूप, रग, आकार, वाणी आदि सब कुछ समावेश था। उस छाया नारी को देखकर सन्देह नही हो सकता था, वह मूल सरण्यू नही है। सरण्यू ने उसे सवर्णा किवा स्थानापन्न स्त्री बनाया।

सरण्यू की बाते सूर्य को मालूम नही हुइ। उसकी सन्तानो को भी पता नही चला। अनन्तर सरण्यू ने अश्वी का रूप धारण किया। वह भूमण्डल मे विचरण करने लगी।

सूर्य ने छाया को सरण्यू समझा। किचित मात्र सन्देह नही हुआ। सरण्यू उनका परित्याग कर चली गई है।

सूर्य ने छाया के साथ अनभिज्ञतावश, पत्नीवत व्यवहार किया। सूर्य को छाया से मनु पुत्र हुए। उनकी सज्ञा वैवस्वत मनु नाम से हुई। वही मानवो के आदि पुरूष हैं। अतएव मनुष्यो को विवस्वान आदित्य की सन्तान कहा जाने लगा।

मनु ने अग्नि प्रज्वलित की। सप्त होताओ के साथ देवताओ के हवन योग्य सामग्री एकत्रित की। मानव का कल्याण, उपकार आदि हेतु मनु ने विहित यज्ञ की सरल परम्परा स्थापित की। यज्ञ–प्रथा का आरम्भ मनु ने किया था। यदि यम अमर हैं, परलोकवासी हैं, तो उनके विमातृ भ्राता मनु मरणधर्मा प्राणी है। मरणधर्मियों के

राजा है। पृथ्वी पर उत्पन्न होने वाले प्रथम राजा मनु है। मनु जगत के प्रथम राजर्षि है।

"यम!" पिता विवस्वत ने यम से सस्नेह पूछा "तुम उदास क्यो रहते हो?" यम पिता के चरण की तरफ देखने लगे। विवस्वत ने पुन पूछा, " तुम्हारी माता के प्रेम मे कुछ अन्तर आ गया है क्या?" यम की ऑखे भर आईं। पिता ने पुत्र के हृदय का भाव समझा।

उन्होने पूछा "माता के व्यवहार मे अन्तर आ गया है यम?"

"पिताजी! माता का प्रेम मनु पर अधिक है।" पिता गम्भीर हो गये। यम चुपचाप उद्यान मे चला गया।

विवस्वत अपनी पत्नी की दिनचर्या पर सतर्क दृष्टि रखने लगे। उसके व्यवहार का अध्ययन आरम्भ किया। उन्हे प्रतिभासित होने लगा। वह पूर्व की सरण्यू नही रह गयी थी। उसके विचारो मे, उसके व्यवहारो मे अन्तर आ गया है। यम ने यमी के प्रति उस छाया सरण्यू मे वह वात्सल्य नही था, जो मनु के साथ प्रकट करती थी।

एक दिन छाया सरण्यू यम तथा यमी पर अकारण रूष्ट हो रही थी। मनु के प्रति पक्षपातपूर्ण व्यवहार देखकर विवस्वत से नही रहा गया। उन्होने पूछा सरण्यू! तुम अनायास यम और यमी पर रूष्ट क्यो हो रही हो? तुमहारा व्यवहार विमाता सदृश्य लगता है"

" क्या तीनो तेरी सन्तान नही हैं?"

छाया सरण्यू नीरव थी।

"स्त्री!" विवस्वत छाया के अत्यन्त समीप पहुँचकर तीक्ष्ण स्वर मे बोले उत्तर क्यो नही देती?"

छाया के प्रति प्रत्युत्तर का साहस नही रह गया था।

"सुनती हो! मै कुछ प्रश्न पूछ रहा हूँ?" छाया का शरीर कटि प्रदेश पर झुक गया। "तुम! सरण्यू!"

छाया रो उठी। " बोलो! आवेश मे विवस्वत ने उसे अपनी ओर खीचते हुए कहा, "तुम कौन हो? तुम सरण्यू नही हो सकती!"

छाया रोने लगी। मनु रोने लगा। यम और यमी पिता से लिपट गये। उनके क्रोधित मुख की ओर भय विहवल दृष्टि से देखने लगे, विवस्वत ने छाया का हाथ छोड दिया। हाथ भूमि पर गिर पडा। वह दोनो हाथो से मुख छिपा कर रोने लगी।

छाया ने भय से विवस्वत का पद पकड लिया। उसका कपोल अश्रुधारा से तरल हो गया था। भूमि पर पडे हाथ से उसने मुख छिपा लिया। उसके इस दयनीय रूप को विवस्वत ने देखा। उनको दया आई उन्होने मन्द स्वर मे पूछा "निर्भय होकर बोलो सरण्यू कहॉ है ? तुम कौन हो ?"

छाया भूमि की ओर देखती अपने अचल से ऑसू पोछती बोली

" मै उनकी छाया हूँ।"

"और वह?"

"आपकी अनुपस्थिति मे वह मुझे यहॉ छोडकर चली गईं।"

मनु मॉ के गले से लिपट गया। पिता को क्रोधित रूप देखकर घबरागया था।

"अश्विनी बन कर मृत्युलोक मे हैं।"

"ओह ! और यह मनु!"

विवस्वत की छाया पर से दृष्टि हटी। अपने अविज्ञान के फल मनु की ओर देखने लगे।

अकस्मात उसे एक अश्वी विचरण करती दिखाई दी। अश्वी ने सलक्षण अश्व देखा। एक–दूसरे को दोनो ने पहचान लिया। दो बिछुडे मिले। पति–पत्नी मिले। पत्नी ने पति से मैथुन की आकाक्षा की। काम वेग उत्पन्न हुआ। विवस्वत ने सरण्यू अश्वी पर सवेग आरोहण किया। अश्व का शुक्र उद्दीपन के कारण स्खलित होकर भूमि पर गिर गया। सन्तानेच्छु अश्वी ने उस तेज को सूघा। उसके सूघते ही, उसकी नासिका से स्वर्ण–काति–पुज, मधु–वर्ण, दो दिव्य पुरूषो ने जन्म ग्रहण किया। उनकी सज्ञा नासत्य और दस्र हो गयी। उन्हे देखते ही अश्व विवस्वत ने प्रसन्न होकर कहा

"प्रिये!" पुत्रो की ओर वात्सल्य भाव से देखते हुए विवस्वत ने कहा, "देवताओ के चिकित्सक होगे। ये आदि वैद्य हैं।"

सरण्यू प्रेमपूर्वक अश्विनीकुमारो को अक मे लेने लगी। विवस्वत ने सरण्यू का पत्नी भाव से देखते हुए स्नेह से कहा " सरण्यू तुमने प्रथम मृत्यु प्राप्त प्राणी यम को जन्म दिया। तत्पश्चात मृत्यु और व्याधियो से रक्षा करने वाले प्रथम वैद्यो को जन्म दिया है। तुम दोनो की जननी हुई।"

"और मेरी छाया!" सरण्यू मुस्कराई।

" उसने मरणधर्मा मनु को जन्म दिया।"

" चलो लोक परलोक दोनो अपने हैं।"

अश्व विवस्वत्, अश्वी सरण्यू और अश्वनीकुमार सब प्रसन्न हो गये।

नोट— विवस्वत द्वारा यम—यमी की तथा अश्विनी कुमारो की उत्पत्ति सरण्यू के गर्भ से हुई थी। सरण्यू की छाया से मन अर्थात मानव के आदि पुरूष हुए थे। मनु से मरणशील प्राणी हुए। सरण्यू से देवता यम तथा अश्विनीकुमार हुए। सूर्य ही मर्त्यों और अमर्त्यो दोनो के पिता है। सरण्यू तथा उसकी छाया उनकी माता है। इस प्रथा द्वारा देव तथा मनुष्यो के एक ही स्रोत को स्वीकार करते हुए यह दिखाने का प्रयास किया गया है कि मनुष्य देवता की छाया है। सूर्य ने यदि सरण्यू से यम को उत्पन्न किया तो उसी से ही यम द्वारा आक्रान्त प्राणियो की रक्षा करने वाले अश्विनो को भी उत्पन्न किया। अर्थात प्राणियो का मूल स्रोत सूर्य से आरम्भ होता है।

१४.घोषा

"घोषे !" कक्षीवत ने सस्नेह कन्या को पुकारा ।

"पित!" कुसुम सी फुदकती बालिका ऋषि की गोद मे आ गई।

बालिका उषा तुल्य सुन्दर थी। पिता की प्रतिमूर्ति थी। स्थान की शोभा थी उससे सब खेलते थे, सब स्नेह करते थे, आश्रम के पशु—पक्षी वृक्ष,जड—चेतन पुष्प सबकी प्रिय थी। खिलौना थी।

समय दौडता गया।

घोषा युवती हुई। युवती से प्रौढा हुई। प्रौढा से वृद्धा हुई उसे पति नहीं मिला। उसका वरण किसी ने न करना चाहा।

कक्षीवत ने बहुत प्रयास किया। वर उसे देखने आते, किन्तु उसका शरीर विकृत था। शरीर मे आकर्षण नहीं था।

कक्षीवत ने कन्या के विवाह की आशा त्याग दी। कोई त्यागी पुरुष नही मिला। उसकी जीवन नैया पार लगाने के लिए कोई नही हुआ।

एक समय आया। विवाह की आशा सर्वथा त्याग देनी पडी। कक्षीवत उदास हो गये। घोष साठ वर्ष की हो गयी। उसने अपना मन आश्रम मे लगाया। स्वाध्याय मे चित्तवृत्तियो को केन्द्रस्थ किया। अग्नि–उपासना में आत्मसमर्पण कर दिया।

उसका जीवन नियमत था। आहार नियमित था। विहार नियमित था। विराम नियमित था। क्रिया–प्रतिक्रिया विहीन जीवन पत्थर तुल्य हो गया था। घोषा के लिए प्रकृति सौन्दर्य मे रस नही रह गया था। हर एक दिन उसके लिए भार लेकर आता और निशा भार हल्का करउसे सुला देती।

एक दिन की बात थी। वह प्लक्ष तरू छाया मे बैठी थी। शीतल मलय चचल था। आकाश गामी पक्षी गीत गाते चले जा रहे थे। पुष्पित क्यारियॉ सुरभि दान रत थी। गाय बछडे को दूध पिला रही थी। भ्रमर, भ्रमरी के पीछे भाग रहा था। मृग अपनी हरिणी के साथ था। मृग–शावक के साथ था। अपनी छोटी गृहस्थी के साथ था। न्यग्रोध की छाया मे वे साथ बैठे थे। नील गगन मे पश्चिम से बरसे उज्ज्वल मेघ आते, उडते चले जाते। भूमि पर उनकी छाया पडती। उनके साथ भागती। घोषा की कल्पना जैसे जागी।

पिता कक्षीवत का अनायास ध्यान आया। ध्यान के साथ स्मृतियॉ हरी हुई। पूज्य पिता ने अश्विनी कुमारो की कृपा से दीर्घ आयु, शक्ति, स्वास्थ्य लाभ किया था। उन्हें यौवन, आरोग्य एव ऐश्वर्य मला था। उन्हीं नासत्यो की कृपा से सर्वभूत विष को उन्होने प्राप्त किया था।

साठ वर्षीया वृद्धा घोषा के श्वेत केश किंचित मरूत प्रवाह मे लहराये। उसने जैसे भूले यौवन का अनुभव किया। तपस्विनी घोषा मन्त्रदृष्टा हुई। उसे सूक्तो का

दर्शन हुआ। उसने अश्विनीकुमारो का शुद्ध कण्ठ से स्तवन किया "अश्विनीकुमार! आपका रासभ युक्त रथ सर्वत्र गमनशील हे। आपके निमित्त सुदृढ रथ का रात–दिन यजमान आहवान करते है। उसी रथ का स्मरण करते है। जिस प्रकार पिता का स्मरण कर मन प्रसन्न होता है, उसी प्रकार आपके रथ का स्मरण कर हम सुखी होते है।"

"दस्र! अपने रथ पर आसीन कर राजा पुरुमित्र की कन्या शुन्धव को आप ले गये। विमद के साथ उसका शुभ विवाह सम्पन्न कराया। आपको गर्भिणी वध्रिमति ने आहूत किया था। उसके दुख को कृपापूर्वक आपने सुना। उसे सुखपूर्वक वेदनारहित प्रसव कराया।"

"स्वर्वैद्य! आपने विश्पला को लोहे का पॉव लगाया। उसे गमन योग्य बनाया। रेभ को शत्रुओ ने मरणासन्न समझ कर गुफा मे फेक दिया था। उस समय आपने अग्नि–कुण्ड को शीतल कर दिया था।"

"आरोग्यवर्धन! टापने वृद्धा शयु नामक गौ को पुन पयस्विनी बनाया। वृक मुख स्थित वार्तिका पक्षी का उद्धार किया। उसे आरोग्य प्रदान किया। अश्विनौ! टपने निन्यानवे अश्वो के साथ एक श्वेत वर्ण अश्व राजा पेदु को दिया था। उस अश्व के अवलोकन मात्र से शत्रु सेना पलायन कर जाती थी।"

भृज्यु का समुद्र से आपने उद्धार किया। आपने राजा वृश, महर्षि अत्रि तथा उशना कवि की रक्षा की। दानी आपके मित्र होते हैं।

वृद्धा घोषा ने अश्विनी कुमारो की स्तुति करते हुए उन्हे अपने मानस मन्दिर मे देखा। श्रद्धा–भक्तिपूर्वक शिरसा। उसकी शुष्क जर्जर काया से अश्विनी कुमारो के पवित्र ध्यान द्वारा उद्भूत प्रभा उत्पन्न होने लगी। उसकी पलके मिल गईं।

"घोषा! अश्विनीद्वय ने स्नेहपूर्वक कहा, "तुम्हारा स्तवन मार्मिक है। हम तुमसे प्रसन्न है।"

"महात्मन!" घोषा ने अपने दोनो हाथो से अश्विनी कुमारो के चरण कमलो को दृढतापूर्वक पकडते हुए कहा, "पगु और पतित के आप शरण हे। नेत्रहीन, बलहीनो, के आप चिकित्सक हैं।"

"करूणापते!" घोषा ने नत नेत्र सलज्ज निवेदन किया, "मै पति–सुख से वचित हूँ। पति द्वारा प्राप्त होने वाले सुख से मै अनभिज्ञ हूँ।"

"तुम्हे पति प्राप्त होगा।" अश्विनी कुमारो ने प्रसन्न होकर कहा। "भगवन!" घोषा की शुष्क त्वचा मे जैसे रस सचारित हो गया। सलज्ज बोली, "मै बलवान स्नेहशील पति को आपकी दया से प्राप्त करूँ, यही मेरी कामना है।"

"घोषा!" अश्विनीकुमारो ने कहा, "तुम युवती होओगी। तुम्हारी यह जरा तुम्हारे इस जीर्ण शरीर से पतझड के वृक्ष के पत्तो की तरह स्वत गिर जायेगी। तुम्हे पति प्राप्त होगा। तुम सुन्दरी होओ।"

देखते–देखते वृद्धा घोषा युवती हो गई। उसके श्वेत केश काले हो गये। शरीर दोष दूर हो गया। घोषा अपना स्वरूप बदलता देखकर अश्विनीद्वय के चरणो पर गिर पडी।

कभी घोषा ६० वर्ष की वृद्धा थी। अब वह हो गई सर्वाडगसुन्दरी युवती। उसकी रूप माधुरी पर रीझ कर सुन्दर पति ने उसका वरण किया। घोषा के जीवन का बसन्त पुन पूर्ण गरिमा मे लौट आया। कालान्तर मे मन्त्रद्रष्टा घोषा

पतिव्रत से वृद्धि करती गयी। उसने स्वस्थ, नीरोग शरीर से गार्हस्थ जीवन का सुख्मय बनाया।*

१५.इन्द्र विकुण्ठा

प्रजापति की एक पत्नी थी। उसका नाम विकुण्ठा था। असुर कन्या थी। विवाह होने के प्श्चात् स्वाभाविक था, वह देवोपम पुत्र की कामना करती। उस असुर पत्नी ने इन्द्र तुल्य एक पुत्र की कामना की।

केवल कामना से फलवती होने वाली नही थी। कामनापूर्ति निमित्त उसने महान तपस्या आरम्भ की। प्रजापति तपस्या से प्रसन्न हुए। उसे निरन्तर विविध वरदान देते रहे। उसकी सभी कामनाओ की पूर्ति हो गई। अन्त मे उसने दैत्यो तथा दानवो के सहारार्थ, इन्द्र जैसे अतुलित बलशाली पुत्र प्राप्त करने का वर प्राप्त किया। इस पर स्वय इन्द्र ने उसके गर्भ से जन्म लिया।

इन्द्र सुशिप्र थे। उनके केश हरे थे। उनकी दाढी हरी थी। वे वेग से चलते थे। दाढी हवा मे उडती थी। शरीर का रग हरा था। स्वर्ण हस्त था। भुजा विशाल थी। फेली थी। शक्तिशाली थी। सुदृढ थी।

सोमपान के पश्चात उनका उदर सरोवर की तरह हो जाता था। सोमपान के पश्चात् वे दॉत पीसते थे। उनका प्रिय पोषक पेय सोम था। उसे चुराकर भी पी लेते थे। सोम उन्हे युद्ध अभियान निमित्त उत्साहित करता था। अपने जन्मदिन से ही सोमपान आरम्भ किया था। माता ने सुशिप्र को भूमि स्पर्श करते ही सोम पिलाया था। सोम के अतिरिक्त वे मधु मिश्रित दुग्धपान करते थे।

---

* <u>नोट–</u> घोषा एक युवती की वेदनामय कहानी है। इसमें युवती के मन का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया गया है। घोषा का वृद्धा हो जाने पर अश्विनीकुमारों के द्वारा पुन उसे सुन्दर युवती बना देने का वर्णन मिलता है। शरीर के कायाकल्प करने की कोई प्रकिया वैदिक काल मे रही होगी। आयुर्वेद के अनुसार कुछ लोग कायाकल्प कराते हैं परन्तु वह फल नही प्राप्त होता, जिसका वर्णन वेद में मिलता है। इस विद्या का पता लगाना चिकित्सकों का पावन कर्तव्य माना जायगा।

इन्द्र का अस्त्र दधीचि की अस्थि द्वारा निर्मित वज्र था। उससे इन्द्र ने नव नब्बे अर्थात आठ सौ दस और सात–सात के सात दानवो का युद्ध मे घोर सहार किया था।

पृथ्वी तल पर कालकेय असुर तथा पुलोम जाति इन्द्र के सम्मुख मस्तक झुकाने के लिए तैयार नही थी। असुरो के व्यवहार से प्राणी त्रस्त थे। इन्द्र ने उनका सहार किया। इन्द्र को दैत्यो का साम्राज्य प्राप्त हुआ। वे सुखपूर्वक असुर–साम्राज्य पर शासन करने लगे।

दैत्यो के सिहासन पर इन्द्र बैठे। वे अपनी वीरता के दर्प से फूल गये। दैत्य–साम्राज्य की आसुरी–वृत्तियॉ मुहुर्मुहु असुरो की माया से मोहित हो गये। मूल प्रयोजन भूल गये। आसुरी माया–जाल मे फॅस गये।

देवेन्द्र ने आसुरी प्रभाव का प्रयोग आरम्भ किया। देवताओ को ताडित करने लगे। उनके अत्याचार से देवता त्रस्त हो गये। असुर ससर्ग के कारण आसुरी दोषो से पूर्णतया दूषित हो चुके थे। देवता अपनी रक्षा निमित्त व्याकुल हो गये। उपाय सोचने लगे। कुछ निरूपाय हो गये। चारो ओर भागने लगे।

''सखे! मैं अगिरा गोत्री सप्रगु हूॅ। मै सत्यकर्मा हूॅ। मै बुद्धियुक्त हूॅ। मन्त्रो का स्वामी हूॅ। स्तुतियो का मेरे पास आगमन होता है। देवता मुझे नमस्कार करते है।''

''मैं उन लोगो को, जो यज्ञ नही करते, पराजित करता हूॅ। मुझे जलीय, पृथ्वी तथा स्वर्गस्थ प्राणी इन्द्र कहते हैं। मैं अपने रथ मे बलशाली हर्यश्वो को जोतता हूॅ। विकराल वज्र को शक्ति निमित्त ग्रहण करता हूॅ। ऋषि उशना के लिए मैने अत्क पर प्रहार किया था।

असुर इन्द्र का पूर्व असुर विरोधी, दानव विरोधी, दैत्य विरोधी रूप देखकर, भयभीत हो गये और उनकी भयग्रस्त मुद्रा मे डूबने लगा देवताओ का त्रास। *

६.सुवन्धु

इक्ष्वाकु वशीय रथ प्रोष्ट असमाति एक राजा थे। उनके पुरोहित अत्रियो के मण्डल मे द्विपदो के ऋषि थे। राजा तथा पुरोहितो मे कलह उत्पन्न हो गया। राजा ने कलह को समाप्त करना चाहा। कलह – शान्ति निर्मित पुरोहितो को दूर करना अच्छा समझा। उन्हे पौरोहित्य पद से हटा दिया।

बिना पुरोहित के धार्मिक कार्य सम्पादन कठिन था। अतएव राजा ने किरात तथा आकुली दो असुरो को पुरोहित नियुक्त किया। असुर पुरोहित मायावी थे। राजा ने उन्हे पुरोहित कार्य के लिए वरिष्ठ समझा।

सुवन्धु गोपायन वशीय थे। वे शष्ठ कुल के गोत्रकार थे। वे ऐक्ष्वाक असमाति के पुरोहित थे। परन्तु पौरोहित्य कार्य से राजा के हटा देने पर क्रुद्ध हो गये थे। इन्होने राजा के विरूद्ध मत्र–तत्र का प्रयोग किया।

नवीन नियुक्त असुर पुरोहितो को सुवन्धु की यह बात बुरी लगी। उन्होने निश्चय किया कि सुवन्धु का वध कर दिया जाय।

गोपायनो के विरोधी किरात तथा आकुली नवीन पुरोहित थे। उन्होने पूर्व पुरोहितो का अभिप्राय जान लिया। अपनी माया तथा योग–बल से कपोत बन गये।

सुवन्धु पर आक्रमण किया। सुवन्धु आहत हो गये। आघात हो गये। आघात दु ख को सहन नही कर सके। । मूच्छित होकर गिर पडे।

---

* इस वैदिक कहानी में मित्र–धर्म का वर्णन मिलता है। साथ ही साथ एक महान व्यक्ति सगति के कारण कारण किस प्रकार पतित हो जाता है इसका भी प्रसंग आता है। मित्र अपनें पतित मित्र का उद्धार कर उसे पन उसके स्थान पर स्थान पर पहुँचता है। यह कहानी उपदेशात्मक है।

कपोत स्वरूप उन असुर पुरोहितो ने सुवन्धु के प्राणो को नोच लिया।

सुवन्धु के कल्याण निमित्त वे तत्पर हो गये । सुवन्धु को पुनर्जीवित करने के लिये वे आसनन लगा कर बैठ हगये। गोपायनो ने जप आरम्भ किया।

"जप करने के पश्चात् गोपायनो ने सुवन्धु के मन आवर्तन निर्मित सूक्त का स्तवन किया

"गोपायनो ने सोम की स्तुति की। "

"गोपायनो ने दोनों लोको की स्तुति की।"

"गोपायनो ने असमाति की स्तुति की।"

"राजा गोपायनो की स्तुति सुन कर उनके पास आये।"

"अत्रियो ने सुवन्धु के प्राण निर्मित अग्नि की स्तुति की। अग्नि प्रकट हुए। उनकी पूजा स्तुति करते हुए गोपायनो ने निवेदन किया

"अग्ने ! सुवन्धु का प्राण कहाँ है?"

"सुवन्धु की आत्मा अन्तरिक्ष मे स्थित है। "अग्नि ने उत्तर दिया।

"वे कैसे हैं ? "गोपायनो ने उत्सुक्तापूर्वक पूछा।

"हितार्थी सुवन्धु रक्षित हैं। "अग्नि ने कहा।

"भगवान् ! उनका प्राण लौटा दीजिए।"

"तथास्तु!"

''गोपायनो ने अग्नि को प्रणाम किया। उनकी स्तुति की। उनकी पूजा की। अग्नि ने प्रसन्न होकर कहा ।

''सुवन्धु जीवित रहेगा।'' कहते हुए प्रसन्न पूर्वक स्वर्ग चले गये।

गोपायनो ने सुवन्धु के प्राण का आह्वान किया

अग्ने ! प्राणदातास्वरूप यहॉ पर आपका आगमन हुआ है। आप पिता –माता तुल्य है। सुवन्धु! तुम्हारा शरीर यहॉ पडा है। प्रवेश करो। ''

गोपायनो ने सुवन्धु के भूमि पर गिरे शरीर को देखते हुए चेतनार्थ सूक्त गान किया''

''सुवन्धु मे चेतना प्रवेश करने लगी। गोपायनो ने प्रसन्न होकर सुवन्धु के शरीर का पृथक्–पृथक् स्पर्श करते हुए ऋचा का गान किया।

''सौभाग्यशाली हाथ भेषज तुल्य है। यह स्पर्श द्वारा मगल प्रदान करता है।''

सुवन्धु का शरीर प्राणमय होकर जीवित हो गया। गोपायन प्रसन्न हो गये। उनकी प्रसन्नता मे असुर पुरोहितो ने देखा अपने पौरोहित्य का अवसान' *

१७.पुरुरवा–उर्वशी

---

* सुदूर वैदिक काल मे सुर तथा असुरो मे विशेष भेद नहीं था। इस गाथा से प्रकट होता है कि असुर भी पुरोहित कार्य के लिये नियुक्त किये जाते थे। असुरो का देश वर्तमान असीरिया आर्थात सीरिया तथा उसके समीपवर्ती भूखण्ड थे। अर्यजाति सीरिया के पूर्व और उत्तर में आबाद था दोनों`जातियो का मूल स्रोत एक ही था। कालान्तर में दैशिक तथा सैद्धान्तिक भेद होने के कारण व अलग–अलग होकर दो जातियॉं बन गयी।

उनके मुख्य भेद का आधार या आत्मा विषयक ज्ञान और विश्वास असुर मानते थें कि शरीर ही आत्मा है । शरीर के अवसान के साथ आत्मा भी मर जाती है। सुर मानते थे कि शरीर और आत्मा में भेद् है। शरीर के नाश के साथ आत्मा का भी नाश नहीं होता । यही कारण है सीरिया तथा उसके समीपवर्ती देशों मे यहूदी ईसाई तथा उनकी परम्परा का अनुकरण करने वाले मुसलमान आत्मा के पूनर्जन्म तथा कर्म सिद्धान्त के विरोधी हो गये। एक नीवन परम्परा चलाई जिसकी पूर्णतया शामी किंवा सेमिष्क सस्कृति मे प्राप्त होती है।

प्रस्तुत गाथा में आत्मा के इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। शरीर से आत्मा के निकल जाने पर पुन वह मृत शरीर में लाई जा सकती है। मृत को जीवित किया जा सकता था।

"उर्वशी की कमनीय काया से उद्भूत पद्य–किजल्क सुरभि मे पुरुरवा की प्राण–वायु लगी मिलने। पुरुरवा किचित बढा आगे। फिर हटा पीछे। युवती गन्ध मे मादकता जगने लगी।

"पुरूरूवा हो गया प्रफुल्लित। उर्वशी के अगराग से उठती सुरभि मे भूलने लगा अपनी चेतना। काम–प्रत्यचा की हुई ध्वनि। कुसुम–वाण आहत् पुरूरूवा के मुख पर रक्तिम प्रभा बिखर गई।

"उर्वशी के ऑखे पुरूरूवा को तोलने लगी। पुरूरूवा ने सक्षिप्त, किन्तु स्पष्ट बलवती वाणी मे कहा

"अप्सरे ! यदि तुम्हारा अनुराग मूल्य चाहता है तो मैं दूँगा।"

"भूपते ! स्त्री के साथ उपचार की एक प्रक्रिया होती है।"

"तन्वी ! उपचार का मै स्वागत करूँगा।" पुरुरवा ने स्थिर स्वर मे कहा।

"यशस्विन् ! प्रतिज्ञा करोगे ! उर्वशी के स्वर मे प्रगल्भता थी ।

"गन्धर्विणी ! मै ऐल हूँ । मैं क्षत्रिय हूँ।" पुरुरवा ने गर्वपूर्वक कहा।

"ऐल।" उर्वशी के स्वर मे व्यग्य था– " मानव । आप का कुल, गोत्र और वश जानती हूँ।"

पुरुरवा किचित हुआ लज्जित ।

"नृपवर!" उर्वशी ने कहा, " यदि आप तीन सविद् मे बॅध सके तो? "

"बोलो उर्वशी ! सविद् मे बॅधता हूँ। " पुरुरवा ने दृढ स्वर से कहा।

"पृथ्वीपते ! पहली शर्त यह है आप दिन मे तीन बार से अधिक मेरा आलिगन नहीं करेगे।"

"आप मेरी इच्छा के विपरीत मेरे साथ शयन नही करेगे।"

उर्वशी पुरुरवा की प्रतिकिया लक्ष्य करने लगी।

"यह भी स्वीकार है, जलीय देवी पुरुरवा उर्वशी के अत्यन्त समीप आ गया," और क्या तुम्हारी सविद् है?"

"आप का नग्न दर्शन होते ही मै आप का त्याग कर दूँगी । "उर्वशी का स्व्र स्पष्ट और स्थिर था।

"उर्वशी ! प्रतिदिन केवल घृत के एकाहार करने का तुम्हे आग्रह क्यों है"?

"राजन् । "उर्वशी ने गम्भीरता पूर्वक कहा, "घृत अग्नि है। जीवन है। अग्नि यज्ञ है। अग्नि से जगत उत्पन्न हुआ है। अग्नि में हम मिलेगे।

अग्नि हमे देवलोक से पितृलोक मे पहुँचा देता है। परलोक गमन का माध्यम है। अग्नि मृतक को उच्चतम अमरत्व पद तक पहुचॉता है। अग्नि व्योम के साथ मृतक धुलोक पहुँचाता है। अग्नि पुण्यात्माओ के लोक मे हमें रख देता है।"

पुरुरवा ने अग्निदेव का मानसिक स्तवन करते हुए पूछा,"प्रिये ! तुम दो मेषो को क्यों बॉध रखती हो? पुरूरुवा ने शयन –कक्ष मे दो बॅधें मेषो को देखते हुए पूछा।

"पुरुश्रेष्ठ !" उर्वशी ने कहा, "प्राण और वायु प्राणी मात्र के जीवन का अवलम्बन है। यदि एक का अभाव हो जाए"?

"प्राण और अपान वायु से शरीर चलता है। एक के वियोग पर दूसरा स्वय साथ त्याग देता है। हम मृतक हो जाते है।"

"राजन्!" उर्वशी ने विवेक मुद्रा से कहा, "हमार पार्थिव –शरीर आत्मा पर आवरण मात्र है। इस आवरण के हटते, नग्न होते ही मनुष्य बन जाता हे। मृत है, मिटटी हो जाता है । आत्मा पर रहने वाले इस अवारण के कारण हम जीवित कहे जाते है।। "

"सुनो !राजन्! लज्जावरण खण्डित होने पर मनुष्य मे क्या शेष रह जाएगा"?

"–और कहूँ ? केवल मैथुन–काल मे मनुष्य अपने नग्न रूप मे रहता है। उस का वह स्वरूप अन्य समयो मे अग्राह्य है। यही पुरुषो के साथ स्त्रियो के जीवन–यापन का उपचार है।"

"मै गन्धर्व–कुल की हूँ। मैं अन्तरिक्ष वासिनी हूँ मैंने नारायण के उर्वा से जन्म लिया है। अतएव उर्वशी नाम धारण किया है"।

"और मैं !"पुरुरवा बीच मे ही बोल उठा।

"आप का मृत्यु–धर्म है। आप मृत्युलोक के निवासी है। आप मृत्यु हैं। पुरुरवस्। आप मेरे भौतिक रूप पर अपनी भौतिक मनोवृति के कारण आसक्त हुए है।"उर्वशी ने अपने शब्दो पर जोर देते हुए कहा। "

"तुम मृत्यु–लोक मे ! "

"कहती हूँ महात्मन्। "उर्वशी ने भूमि की ओर देखते हुए कहा, "आपके पवित्र गुणो पर मोहित थी। यही मेरा एकमात्र अपराध था।"

"बात कुछ ऐसी हुई, नरश्रेष्ठ । "उर्वशी ने मन्द स्वर मे कहा, "इन्द्र सभा मे नारद आप के गुणो की प्रशसा कर रहे थे । उस प्रशस्ति वाचन से मैं आप की ओर अनायास मन ही मन आकर्षित हुई। इस आकर्षण के कारण मित्रावरुण ईर्ष्या से रुष्ट हो गये । मुझे शाप दिया।, 'देव लोक त्याग कर मृत्युलोक मे चली जाओ । अमानुषी होकर मानुष का साहचर्य प्राप्त करो

"गन्धर्वो मे चर्चा थी उर्वशी चर्चा का विषय थी–"वह मृत्युलोक चली गयी है। अपने कुल का त्याग कर दिया। मनुष्य से विवाह – सूत्र मे बँध गयी है। देवसभा उसके स्वर्गीय नृत्य एव गान से वञ्चित हो गयी है।"

"यक्षेश्वर कुबेर की सेवा से वह विरत हो गयी है। नृत्य, गान, बृन्द सगीत मे, उसका अभाव खलता है। उसके बिना गन्धर्व–लोक शून्यवत उजाड लगता है। हम धिक्कार है। हमारे लोक की उर्वशी मृत्यु लोक मे मनुष्य के साथ विहार करती है। मानव पुरुरवा का मानवेतर उर्वशी से सबन्ध है । हमारा मुख लज्जा से लोक मे नत हो गया है।"

विश्वावसु गर्न्धव ने योजना उपस्थित की "उर्वशी के शयन–गृह मे सर्वदा दो मेष बँधे रहते हैं। उन्हे उठा ले आना चाहिए। राजा नग्न सोता रहेगा। उर्वशी उसे नग्न न देख ले। इस लिये वह उठेगा नही मेष के अभाव मे उर्वशी का वहाँ निवास सम्भव नही होगा। यदि राजा उठा और उर्वशी ने उस का नग्न रूप देख लिया, तो उर्वशी स्वत पुरुरवा का त्याग कर देगी । "

घोर रात्रि थी । अन्धकार घनीभूत था। शयन–कक्ष था। उर्वशी और पुरुरवा पर्यंक पर गाढी निद्रा मे थे । मेष पर्यंक से बँधे थे ।

विश्वावसु आदि गर्न्धवो मे प्रासाद मे प्रवेश किया। शयनवास मे पहुॅचे। दो बधे मेषो मे से एक को खोलकर वे ले चले। मेष रोने लगा उर्वशी की निद्रा खुली एक मेष लुप्त था।

"हाय! प्रतीत होता है। मैं एक अवीर के पास हूॅ। एक अजन के पास हूॅ। मेरे एक पुत्र का हरण हो गया । मैं क्या करूॅ ?

उर्वशी का विलाप सुनकर नग्न पुरुरवा उनिद्रित हो गया। उसे प्रतिज्ञा स्मरण हो गयी उसे नग्न दर्शन के भय से वह उठा नही

विह्ल उर्वशी शयन–वास मे रूदन करने लगी। पुरुरवा को उठते न देखकर गर्न्धवगण चकित हुए। उन्होने मन्त्रणा की। द्वितीय मेष को भी लुप्त कर देना चाहिए। गन्धर्वो ने शयन–वास मे चुपचाप प्रवेश किया। कोलाहल हुआ। द्वितीय मेष उठा कर वे भागे। मेष रोने लगा। भय–विह्ला उर्वशी के कण्ठ से करुण वाणी निकली, ओह ! मैं अनाथा हूॅ। भर्तृहीना हूॅ। कायर पुरूष के साथ हूॅ । एक अबीर के पास हूॅ। मेरे द्वितीय पुत्र का हरण हो गया।। मैं क्या करूॅ?

"पुरुरवा उठकर बैठ गया।

"तुम्हारे पूर्वज अत्रि, सोम, बुध, परलोक मे बैठे क्या सोचते होगे ? मैं अरक्षित हूॅ ! आज वे कितने लज्जित होगे"? उर्वशी ने उपालभ करते हुए कहा। वह घोर विलाप करने लगी।

मैं आ गया ! मैं आ गया, उर्वशी !

अकस्मात् आकाश प्रखर विद्युत–प्रकाश से प्रभामय हो गया। प्रकाश शयन–ग्रह में फूट पडा। दिन जैसा शुभ प्रकाश था। विद्युत–ज्योति हॅसी । पुरुरवा का पूर्ण नग्न–स्वरूप उर्वशी नें देख लिया।

गन्धर्व मुसकराए। विद्युत–प्रभा लुप्त हो गई और अन्तर्ध्यान हो गई अप्सरा श्रेष्ठ उर्वशी। शयनवास मे अन्धकार घनीभूत होने लगा। पुरुरवा के स्वर मे उत्साह था। अपनी वीरता पर गर्व करता बोला, "उर्वशी ! उर्वशी ! उर्वशी !!! मै तुम्हारे प्रिय मेषो को लौटा लाया हूँ ।"

शयन–कक्ष मे उसकी वाणी गूॅजी होने लगी। शयन–कक्ष मे उसकी वाणी गूॅजी और उसका उपहास करने लगी, "उर्वशी ! तुम्हारे पुत्र, तुम्हारे मेष !

' प्रतिध्वनि स्वय अपने मे लीन होने लगी। शयन कक्ष मे उसकी वाणी का, उसकी प्रतिध्वनि स्वय अपने मे लीन होने लगी। शयन–कक्ष मे उसकी वाणी का, उसकी प्रतिध्वनि का उत्तर दिया मेषो की वाणी ने –मे–मे–मे–मे–। और सफल हुआ गन्धर्व कुवक्र।

विरह–विदग्ध पुरुरवा विषण्ण था। शान्ति खो बैठा था। क्षुब्ध –हृदय भू–तल पर उर्वशी को खोजता श्रीहीन शुष्क हो गया था। विह्ल विरही उर्वशी के अन्वेषण मे सर्वत्र विचरण करने लगा।

विमन पुरुरवा कुरुक्षेत्र के विश्वयोजन सरोवर–तट पर प्रयाजनहीन घूम रहा था। विस्तृत सरोवर के निर्मल शान्त जलस्तर पर हसरूपिणी अप्सराऍ विलास कर रही थी ।

हसिनियो ने अगन्तुक भग्न–हृदय पुरुरवा को तट पर खडा देखा । उनमे किचित् कोलाहल हुआ। हट कर दूर जाने के लिए बढी। एक हसिनी दल से पीछे रह गयी। उसकी उज्ज्वल लम्बी ग्रीवा उठी। उसने स्थिर नयनो से पुरुरवा की ओर देखा।

पुरुरवा चकित हुआ, हसिनी को मुद्रा लक्ष्य कर। हंसिनी नें दो–तीन बार ग्रीवा उपर–नीचे की। जैसे वह पुरुरवा को नमस्कार कर रही थी ।

"निश्चय प्रकट होना चाहिए।"

हसिनी रूप अप्सराएँ अपने पूर्व स्वकीय रूपो मे प्रादुर्भूत हुई। प्रसन्न मुख पॉच सखी अप्सराएँ, पूर्व चिन्ति, सहजन्या, मेनका, विश्वाची तथा घृताची के मध्य उर्वशी को पुरुरवा ने देखा। उन्मादी के तुल्य वह चिल्ला उठा, "उर्वशी ! उर्वशी !!उर्वशी !!! क्रूर हृदय ! ठहर ! घोर मानसी !! ठहर ।"

"यदि हम इस समय मौन रहेगे, तो कैसे हमारा भविष्य सुखपूर्वक बीतेगा?"

"पुरुरवस् ! "उर्वशी ने कहा, "वार्तालाप से क्या लाभ ? मै वायु के समान दुश्प्राप्य नारी हूँ।"

"मानव !"पुरुरवा उदास हो गया। उर्वशी ने कहा, आपने वह नही किया। जिसे करने के लिये मैंने कहा था। तुम्हारे लिए मुझे पकड रखना सम्भव नही है। अपने घर लौट जाओ मैं। मैं यही कहना चाहती हूँ।"

पुरुरवा कातर हो गया।

"राजन् ! नई उषा पुरानी उषा का त्याग कर देती है। उसी प्रकार मै आपसे विलग हो गई हूँ। लौट जाइए। लौट जाइए।"

पुरुरवा का उदासीन मुख मलिन होने लगा। वह दयनीय स्वर मे बोला

"उर्वशी ! तुम्हारी चिन्ता मे मैं सतप्त हो गया हूँ। शक्तिहीन हो गया हूँ। अपने तुणीर से वाण नही निकाल सकता। युद्ध मे विजय प्राप्त कर अगणित गउओ को प्राप्त करने मे असमर्थ हो गया हूँ।

"प्रिये ! मैं राज्य–कार्य से विरक्त हो गया हूँ। मेरे सैनिक उत्साह हीन और कर्त्तव्य विमुख हो गए हैं। "पुरुरवा ने दीन स्वर में कहा।"

"सुनो मानव ! सुजूर्णि, श्रेणी, सम आदि अप्सराएँ गोष्ठ में प्रवेश करती गउओ की तरह शब्द करती मलिन वेश मे आती थी, किन्तु वे मेरे घर मे प्रवेश नही कर सकती थी।

पूरुरवा को बीच मे ही रोकती उर्वशी बोली, "आपके जन्मकाल मे सभी देवागनाएँ दर्शनार्थ आई। सरिताओ ने भी प्रशसा की। देवगणो ने घोर सग्राम मे शत्रुओ का नाश करने के लिए स्तुति की।"

"पुरूव !" उर्वशी ने कहा, "आपने पृथ्वी की रक्षा के लिए पुत्र उत्पन्न किया है। आपसे सतत् कह चुकी हूँ । मै आपके पास नही जाउँगी । आप प्रजापालन से व्यर्थ विमुख हो गए है। तथ्य हीन वार्तालाप से क्या लाभ?"

"उर्वशी !' पुरुरवा ने मार्मिक वाणी से कहा, "तुम्हारा पुत्र मेरे पास किस प्रकार रह सकेगा ? वह मेरे पास आकर रोएगा।"

"पुरुरव ! "उर्वशी ने कहा, "मेरा उत्तर सुनो। आपका पुत्र आपके पास आकर रोएगा नही। वह ऑसू नही गिराएगा। मै उसकी सर्वदा मगल–कामना करती रहूँगी। पुत्र जन्म ग्रहण करेगा। मै अवलिम्ब उसे आपके पास भेज दूँगी।"

"उर्वशी ... ..!"

मैं निकीर्ति की गोद मे बैठ जाउँगा। मैं यही रह जाऊँगा । भयकर वृक् मुझे फाड खाएँ । मैं यही कहना चाहता हूँ।'

"पुरुरवे ! "उर्वशी विचलित हुई," गिरो मत। मृत्यु की कामना मत करो । आपको बृकादि न खाएँ"।

"राजन् ! "उर्वशी ने करुण स्वर से कहा, "मत मरो। क्रूर वृक् को मत खाने दो। स्त्रियॉ किसी की नही होती। उनका हृदय वृक्तुल्य होता है। स्त्रियो की मित्रता स्थायी नही रहती आप घर लौट जाइए।"

"राजन् ! मै गर्भिणी हूँ। तुम्हारी सन्तान मेरे गर्भ मे स्थित है। "उर्वशी के मुख पर स्त्री–जन्य लज्जा आ गई ।

"उर्वशी ! लौट चले ।"

"नही राजन्! "उर्वशी ने किंचित् विचार करते हुए कहा, "आज से सम्वत्सर की अन्तिम रात्रि को पाधारिएगा।"

पुरुरवा का मुख खिल गया।

"उस समय आप मेरे साथ रात्रि निवास कर सकेगे"

सम्वत्सर की अन्तिम रात्रि।

"भूपते ! "उर्वशी ने प्रसन्न–वदन कहा, "प्रातकाल गन्धर्वगण आपके पास आऍगे।"

और फिर गन्धर्व और गन्धर्वी–और–मानुष और अमानुष एक।"

उर्वशी के पायल झकृत हो उठे।

"मानुष ! तुम्हारी मानुष–जाति मे ऐसा कोई पवित्र नही है, जो बिना अग्नि की कृपा से हम मे मिल सके।"

"देवगण ! पुरुरवा ने अग्निदेव का स्मरण करते हुए स्तवन किया, "अग्नि देव हैं अग्नि पवित्र करने वाले हैं। अग्नि वैश्वानर है।

उस अग्नि का स्तवन करता हूँ। उन हुताशन की शरण जाता हूँ। उन अग्निदेव की उपासना करता हूँ।''

गन्धर्वो ने हर्षित होकर कहा, ''तुम्हे अग्नि हम देगे। अग्नि से तुम पवित्र हो जाओगे। पवित्रता मानुष और अमानुष को एक करती है।''

गन्धर्व अग्नि ले आए। उन्होने वह स्थाली मे रख कर अपने मस्तको से लगाकर पुरुरवा को दी। पुरुरवा को दी। पुरुरवा ने स्थाली मस्तक से लगाते हुए पूर्ण श्रद्धा से अग्निदेव को प्रणाम किया। गन्धर्वो ने कहा, ''पवित्रात्मे! स्थाली की अग्नि ग्रहण कीजिए। इस पवित्र अग्नि मे यज्ञ करने पर तुम पवित्र होकर हम मे से एक हो जाओगे।

''उर्वशी द्वारा उत्पन्न कुमार आयु तथा स्थाल्य अग्नि पुरुरवा घर लौट रहा था। पुरुरवा ने अरण्य में प्रवेश किया। उसका मार्ग अरण्य से होकर जाता था।

वह विचार करता जाता था। वह चाहता था उर्वशी और मिली अग्नि ।

उसने स्थाल्य अरण्य में रख दी। अपने पुत्र आयु कुमार के साथ, बिना अग्नि अकेले अपने ग्राम मे प्रवेश किया

अग्नि अश्वत्थ वृक्ष का रूप ग्रहण कर चुकी थी । स्थाली शमी वृक्ष हो गई थी। शमी वृक्ष के गर्भ में अश्वत्थ– वृक्ष स्थित था।

''मै कर्म मे विश्वास करता हूँ। गन्धर्वगण ! मुझे इस श्रुति पर श्रद्धा है कि 'कर्म से सब कुछ प्राप्त होता है'।''

''शुद्ध मूल अग्नि कैसे प्राप्त कर सकूँगा?'' पुरुरवा ने जिज्ञासा की तुम ऊपर अरणि अश्वत्थ की तथा नीचे की अरणि शमी काष्ठ की तैयार करो

उनके मथन द्वारा जो अग्निद उत्पन्न होगी, वह पूर्व स्थाली वाली वही अग्नि होगी।''

''बताता हूँ ऊपर की अरणि अश्वत्थ काष्ठ तथा नीचे की आरणि भी अश्वत्थ काष्ठ की बनाओ। उन अरणियो के मन्थन से उत्पन्न अग्नि स्थाल्य की लुप्त अग्नि होगी।''

पुरुरवा ने पूर्ण आस्था से अश्वत्थ काष्ठ की उपर तथा नीचे की अरणियॉ बनाई। उनके मन्थन से अग्निदेव आविर्भूत हुए। वह वही अग्नि थी।, जिसे गन्धर्वो ने उसे स्थाल्य मे दिया। था। यह अग्नि थी, जो अरण्य मे लुप्त हो गई थी।

पुरुरवा ने पवित्रतापूर्वक विधिवत यज्ञ किया। यज्ञ की समाप्ति हुई । आकाशवाणी हुई, ''पुरुरवस् ! मानुष से तुम अमानुष हुए। हम गन्धर्वो मे मिल कर अब एक हो गए।''

''पुरुरवा ! तुम सूर्य हो। उर्वशी ऊषा है। तुमने अपने कर्म से कीर्ति प्राप्त की है। तुमने अपनी ज्ञान–प्रभा से भू–तल को धवलित किया है। मानव–लोक को त्याग कर तुम देवलोक के निवासी बन गये। तुम्हे धन्यवाद।''

पुरुरवा अपनी प्रशसा सुनकर सकुचित हो गया। गन्धर्वों नें गर्वपूर्वक कहा, ''तुम्हारे पूर्व विश्व मे केवल अग्नि थी।''

पुरुरवा ने अपने मानस–मन्दिर मे स्थित अग्निदेव का स्मरण कर, उन्हे नमन किया।

गन्धर्वो का प्रसन्न सगीत तुल्य स्वर गूँज उठा–

''उर्वशी, जल है आप सूर्य हैं और आप लोगो का वांछित फल –आयु है''

१८.देवापि

"देवापि !" प्रजाजनो ने उपस्थित होकर सादर निवेदन किया, "आपके पूजनीय पिता ऋषि वेण दिवगत हो चुके है। राज्य सूत्र आपको सम्भालना चाहिए।"

"महात्मन् ! "प्रजा ने कहा, "स्वर्गीय ऋषि वेण आप और शतनु दो सगे भाइयो को छोडकर दिवगत हुए। आप ज्येष्ठ भ्राता है। धर्मत राज्य आपका है।"

मै त्वग्दोष से दूषित हूँ।

"भद्र पुरुषो ! "देवापि ने कहा, दुस्साध्य रोग से ग्रसित हूँ। मै कैसे राज्य कर सकता हूँ। राजा स्वस्थ इन्द्रिय, स्वस्थ स्वास्थय, स्वस्थ विचार मना तथा स्वस्थ अभिप्राय युक्त होना चाहिये। मेरे किचित् काल को स्वास्थय चिन्ता राज्य कार्य के समय को अपहृत करेगी। मै पूर्ण राजा नही हो सकूँगा। आप अपूर्ण व्यक्ति को लेकर राज्य की अपूर्णता मे वृद्धि करेगे।"

"नही ! देवापि !!" बृद्धो ने कहा, "अधार्मिक राज्य मे कौन रहना पसन्द करेगा।? अधार्मिक परम्परा अनुकरण करने का कौन साहस करेगा।"

"महानुभावो !" देवापि ने विशाल प्रजा समूह को सम्बोधित किया। मैंने निश्चय किया है शतनु का अभिषेक किया जाय।"

"कहिये ! आपकी सम्मति है, शतनु का राज्याभिषेक किया जाय। मै अपने शरीर का भार उठाने मे असमर्थ हूँ। राज्य –भार कैसे उठा सकूँगा?"

लोगो के मस्तक झुक गये। मौन सम्मति सभा ने दी ।

"घोर अवर्षण ! घोर अवर्षण !।"

जनता में त्राहि–त्राहि थी।

"बारह वर्ष बीत गये। एक बूंद पानी नहीं।" लोग बोले।

"चलो राजा शतनु के पास चले।"

"हॉ।"

प्रजा राजा शतनु के समीप चली।

"राजन् ! अवर्षण, कब तक?"

शुतनु लज्जित थे।

"पृथ्वीपते ! द्वादश वर्ष से पर्जन्य ने वर्षा नहीं की है।"

शतनु की ऑखे उपर नही उठ सकी।

"हॉ, उस समय से जब से आपका धर्मात्मा थे उनका राज्य आपने लिया।

मर्यादा का उल्लघन किया गया।

शतनु उदास होत लगे।

"धर्म का उल्लघन किया गया है। राज्य अधर्म से लिया गया है। उस अधर्म का प्रायश्चित हम अपनी भूख से कर रहे हैं।

शतनु को कोई उत्तर देते नही बना।

छोटा आश्रम वन के बीच था। देवापि एकाकी तपस्या कर रहे थे । उनकी आवश्यकताऍ स्वल्प थी। चिन्ता नही थी वे धूम्रहीन अग्नि की तरह शान्त हो गये थे।

उस आश्रम मे प्रवेश किया, कनिष्ठ भ्राता राजा शतनु ने। उनके साथ राज्य की प्रजा थी। देवापि देखते ही पूछा

"शंतनु !" देवापि की ऑखें बारह वर्ष पश्चात् कनिष्ठ भ्राता को देख कर भर आयीं। प्रजाजन ने भूमि पर मस्तक रख कर दडवत किया। देवापि को प्राणम किया। शतनु ने ज्येष्ठ भ्राता की चरण–रज श्रद्धापूर्वक मस्तक पर लगायी।

"महात्मन् ! "प्रजा बोली, "आप अपना राज्य सम्भालिये।"

देवापि मुसकराए।

"महात्मन् ! "शतनु ने प्राजलिबद्ध अत्यन्त विनम्रतापूर्वक कहा, "आप अपना राज्य लीजिए। मै राजा रह कर क्या करूँगा, जब प्रजा का दु.ख दूर करने मे असमर्थ हूँ।"

शतनु के मन मे लेश –मात्र विषाद नही था। उसकी वाणी मे हृदय का सच्चा उद्गार था। वह भ्राता के चरणों पर कटे वृक्ष की तरह गिर पडा।

"शतनु !" देवापि ने उसे प्रेम से उठाते हुए कहा

"मै राज्य योग्य नही हूँ। त्वग् दोष से ग्रसित हूँ। हत इन्द्रिय हूँ। मेरी शक्तियाँ क्षीण हैं।

"पुरूष श्रेष्ठ।"देवापि ने गम्भीरतापूर्वक कहा,"राजा का गुण धैर्य है। आशा सम्बल है। नैराश्य विनाश है।"

प्रजाजन देवापि की बात ध्यानपूर्वक सुनने लगे । अपनी प्रिय प्रजा के शुष्क नर–ककालवत शरीर को देख कर देवापि ने पाद मे गिरे शतनु को उठाते हुए कहा। .

"राजन् ! मैं स्वय वृष्टि की कामना करूँगा।" उठो।

देवापि ने शतनु को उठा कर खडा किया। प्रजा देवापि की वृष्टि–कामना

"भ्राता !" देवापि ने दृढ स्वर में कहा, "मैं स्वयं तुम्हारा ऋत्विक् बनूँगा।"

शंतनु चकित हुए। प्रजाजन में से कोई बोल उठा,"क्षत्री और ऋत्विक् !"

"हाँ, मैं यज्ञ करूँगा। जन–सधारण की रक्षा के लिए, वर्षा के लिए। यह घोर अवर्षण अवश्य दूर होगा।"

"हॉ, तुम्हारे कष्ट दूर करने के लिए।" देवापि ने स्थिर स्वर मे कहा।

वर्षा निमित यज्ञ आरम्भ हुआ। राजा शतनु ने ज्येष्ठ भ्राता देवापि को अपना पुरोहित नियुक्त किया। उनसे ऋत्विज् रूप से कार्य करने के लिए प्रार्थना की।

देवापि पौरोहित्य कर्म के लिए उद्यत हो गये। उन्होने वृष्टि करने वाले देवताओ के निर्मित स्तोत्र की रचना की ।

देवापि ने यथाविधि यज्ञ कार्य का सम्पादन किया। उन्होने बृहस्पति निर्मित यज्ञ करते हुए स्तुति की

बृहस्पति ने देवापि मे श्रेष्ठ स्तोत्र स्वरूप दिव्यवाणी का उन्मेष कराया। देवापि ने अग्नि की स्तुति की:

इन्द्र प्रसन्न हो गये। अन्तरक्षि से वाणी सुनाई पडी:

"देवापि !" इन्द्र ने कहा, "यज्ञ मे तुम आओ। देवताओ का पूजन करो। उन्हे तुम हविरन्न से तृप्त करो।"

इन्द्र ! आप मरूदगणो के साथ शुभगमन कीजिए। आपने दस्युओ पर शासन किया। आपने तीन सिर और छ नेत्रो वाले विश्वरूप देवापि ने श्रेष्ठ स्तुतियों द्वारा ने पवित्र यज्ञ आरम्भ किया। सम्यक् स्तुति तथा आहुतियो से देवता प्रसन्न हो गये।

थे। जनता का मेघाच्छन्न आकाश मे सुख विद्युत।

वर्षा ! वर्षा !! वर्षा !!! प्रजा प्रसन्न थी। शिशु प्रसन्न कूदने लगे। माताएँ अचल उठाकर इन्द्र की वन्दना करने लगीं। पृथ्वी की तृष्णा शान्त हुई। अन्तरिक्ष स्वरूप से पार्थिव समुद्र में वर्षा की प्रचुर जलधारा आई। देवताओं ने अन्तररिक्ष को

आच्छादित कर दिया। देवापि की प्रेरणा से वर्षा का निर्मल जल उज्ज्वल पृथ्वी पर तैरने लगा।

बारह वर्ष का अवर्षण समाप्त हो गया। भूमि एक युग के पश्चात् पुन· श्यान्य श्यामला हो गयी । *

१६. मुद्गलानी

कुछ घटना ऐसी घटी। भृमस्व के पुत्र मुद्गल की गायो तथा वृषभों की चोरी हो गयी। मुद्गल के पास केवल एक वृद्ध बैल शेष रह गया। पशु–धन का अपहरण थॉ। मुद्गल व्यथित हो गये उनकी चिन्ता देखी, उनकी पत्नी ने। सुपात्र गृहिणी की तरह चिन्तित नही हुई। घटना का सामना करने की दृष्टि से बलवती वाणी मे बोलो·–

"चिन्ता क्यो करते हैं ?एक वृद्ध वृषभ बचा हैं। उसी से अपहर्ताओ का पीछा करेगे।"

ब्रहावादिनी मुद्गालानी तथा इन्द्रसेना से अपूर्व चेतना उत्पन्न हो गयी थी। मुद्गल ने बूढा बैल रथ मे योजित किया। इन्द्रसेना उसकी सकिय सहायता करने लगी। कठिनाइयों की उन्हे चिन्ता नही थी। मुद्गल के हाथ में आयुध रूप के एक द्रूघण था।

---

*इस कहानी मे वैदिक कालीन राजनीति के सिद्धान्त का वर्णन किया गया है। कर्म शक्ति न होने पर राज्य का स्वत त्याग किसी दूसरे उपयुक्त व्यक्ति के लिए क स्पर्श तथाया है। पचतत्वो से विश्व की रचना हुई। आकाश वायु, अग्नि जल तथा पृथ्वी पॉच तत्व है। इनके गुण क्रमश स्पर्श रूप रस तथा गन्ध हैं। आकाश सब मे सूक्ष्म है। तत्व क्रमश सूक्ष्म से स्थूल होने के लिए पृथ्वी से पूर्ण स्थूलता प्राप्त करते हैं। आगे तृतीय तत्व है। उसमे रूप तीन गुण वर्तमान हैं। वैदिक आश्रम जीवन का केन्द्र बिन्दु अग्नि है। वही हवि ग्रहण करता है। उसकी गति अध्वगामी है जबकि जल तथा पृथ्वी की गति अधोगामी है। इसलिए रूपक खीचा गया है कि अग्नि हवि को देवताओ के पास पहुँचाता है। मृत्यु के प र देने की बात इसमे कही गयी है। साथ ही साथ राज्य अधिकार त्याग देने पर यदि राज्य पर आपति आये तो सहर्ष उसके लिये तैयार हो जाने के उदात्त विचार का वर्णन किया गया है। राजा प्रजा के कष्ट का उत्तरदायी प्रजा के सम्मुख होता है, इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। आपद काल में क्षत्रिय भी ऋत्विक बनकर यज्ञ करा सकता है, इसका स्पष्ट निर्देश इस कहानी में किया ग श्चात् वही अपने पथ से प्राणियो को ले जाता हैं।

मुद्गल ने रथ के पहियो को चारो ओर से मजबूती से बॉधा। मुद्गल की पत्नी बैल को रथ के समीप लायी।

बृषभ बूढा था। परन्तु उसकी गति कम नही थी। उसमे शक्ति थी अपनी सीग से से मिट्टी के ढेर को ढहाने वाला बैल उग्र रूप से चला।

इन्द्रसेना ने सारथी का स्थान ग्रहण किया। उसने बैल की रस्सी सम्हाली। उसका पति मुद्गल रथारूढ बृद्ध बैल योजित रथ वेग से दौडाता, तस्करो के पीछे चला।

असीम साहस का परिचय दिया इन्द्रसेना ने । असीम पौरुष का प्रदर्शन किया मुद्गल ने और अपूर्व शक्ति प्रकट की वृषभ ने। तीनो प्राणियो के विजय का सयुक्त साधन बन गया। उनका बज्र से भी समयोपयोगी एक–मात्र अस्त्र था। द्रुघण। वही उनके विजय का कारण बना।

इन्द्रसेना चतुर सारथी प्रमाणित हुई। असके अपूर्व रथ–कौशल के कारण रथ तस्करो तक सवेग पहॅुच गया। तस्कर चकित हुए। साधनहीन विचित्र विरोधियो को देखकर।

और वापस आये वे अपहृत पशुधन के साथ। दस्यु पराभूत हुए। प्रसन्न हो गया पुन गायो को लौटा देख वृद्ध वृषभ। और जगत ने देख मन्त्रद्रष्टा मुद्गल की ब्रहावादिनी स्त्री का अपूर्व वीरत्व । *

२०.सरमा और पणि

पणियों ने "बृहस्पति की गाय चुरा ली।

"पणियो ने।"

---

* यह रोचक कहानी है। यह वैदिक कालीन सभ्यता पर प्रकश डालती है। पति के साथ पत्नी युद्ध मे जाती थी स्त्रियॉं भी पुरूषो के समान युद्ध मे भाग लेती थीं।

देवता स्तब्ध हो गये।

"हमारे पौरूष को धिक्कार है।"

"गाय यज्ञ की आधारभूता है। अब यज्ञ कैसे होगा?"

"—और इन्द्र! उनका शासन !! हम आरक्षित !!!"

देवता नीरव हो उठे।

"गाये हरी गयी है?"

"हॉ ! वज्रिन् !!"

"कुछ रहस्य मालूम हुआ ?"

"हॉ ! सहस्राक्ष"?

देवराज ! "रसा नदी के उस पार। पर्वतो की गुहा मे वे बन्द हैं।

'सरमा ! "इन्द्र ने सरमा को सम्बोधित किया।

"पुरन्दर ! आज्ञा।"सरमा ने नत मस्तक प्रणाम करते हुए कहा।

"सरमा ! तू कार्यकुशल है। वाक्पटु है चतुर है।"

"वे क्रूर है। अनिष्टकर है। अनुपकारी है मृघ्रवाच् ग्राथिन् है। वेकनाट हैं।

"सरमा ! वे वृक है। कृपण है। गाय उनकी सम्पति है। उन्होने गायो मे घृत खोज निकाला है। देवताओ के शत्रु है मनुष्यो के शत्रु अन्तरिक्ष के तुगतर पटल पर दैत्यो का पाणि नामक एक वर्ग है।

"वे गुहा् शक्ति मुक्त है। सोम, अग्नि, बृहस्पति, अगिरस के शत्रु हैं। वे दस्यु है। बृहस्पति ने अंगिरागण की सहायता से गुहा मे पत्थर के द्वारो द्वारा बन्द रोती हुई गौओ को मुक्त किया था। नीचे एक द्वार से तथा उपर दो द्वारों द्वारा तिमिराच्छन्न गुफाओं मे छिपाकर गाये रखी गई थी बृहस्पति ने तीनो द्वारो को खोला । सर्वप्रथम गुफा में प्रकाश किया। रात्रि में चुपचाप पणियों के नगर के पृष्ठभाग को विदीर्ण कर प्रवेश किया था। समुद्र तुल्य उन गुफाओं से प्रातः कालीन समुद्र से निकलने सूर्य की तरह गौओ को निकाला था।"

वे धनी है। परन्तु दान नहीं देते। देवो को हवि नही देते । पुरोहितों को दक्षिणा नही देते। ऋषियो की दृष्टि मे अवाछनीय तत्व है वे गउ चुराते हैं। जल रोकते है। अस्पष्ट वाणी बोलते है। उपासना नही करते। बिना कुछ लिए कुछ भी नही देते। अदेव पूजक है। हेय है।"

"सरमा ! तू उनकी मनोवृति को समझती है। उनके आचरण तथा व्यवहार का तुझे ज्ञात है। अगिरस ने मुझसे कहा है। तुझे दौत्य–कार्य निमित स्मरण किया है।"

"वृद्धश्रवा !" सरमा ने विनय से कहा। "आपकी कृपा है।"

"तुझे चुना है, तुझे दूत कार्य करना होगा। "

"दिवस्पति ! यह मेरा अहोभाग्य है।" सरमा ने नत–मस्तक इन्द्र को प्रणाम करते हुए कहा।

"सरमा ! दूत कार्य कठिन होता है।"

"जानती हूँ ! मघवा !!" सरमा ने सस्मित उत्तर दिया। "दूत की वाणी शुद्ध, व्याकरण शुद्ध,स्वर मधुर होता है। विनय, शील है। अपनी बात वेग से न कहकर शब्दोच्चारण के पूर्व किंचित मुसकराकर वाक्य मुख से निकालना चाहिए किसी भी अवस्था मे आवेश मे न आना चाहिए। दूसरे की बाते जान लेना और अपनी बात न जनाना, किसी प्रश्न तथा विषय पर आतुरता नही प्रकट करना, मिताहार, दुसरों को खिलाने की अधिक तत्परता, दूसरों को अनुग्रहीत करने का प्रयास, यह कुछ दूतो के गुण कहे गये हैं। दूत अबध्य है। तुझ पर कोई पाणि हाथ नही उठायेगा।"

इन्द्र ने सरमा को सफलता के लिए अभय मुद्रा से आशीर्वाद दिया।

"सरमा !" पाणियो ने सरमा को चकित दृष्टि से देखते हुए कहा, "तुममने किस आकाक्षा के साथ यहां पदापर्ण किया है।"

"यह स्थान दुर्गम है। दूर है। आगन्तुक पुन· पीछे फिर कर नही देख सकता।"

"तुमने किस प्रकार रसा नदी को पार किया है? कितनी रात्रियो तुम्हे यहाॅ आने वे व्यतीत करनी पडी ? किसकी कामना से हमारे पास आगमन हुआ है?"

"पणिगण !" सरमा ने मधुर स्वर मे कहा, "मैं इन्द्र की दूत रूप से विचरण कर रही हूॅ। आपने गउओ को अपने यहाॅ सचित कर रखा है मैं आपकी कृपा से उन्हे लेना चाहती हूॅ । मार्ग मे जल के कारण मुझे भयग्रस्त होना पडा था। किन्तु यहा पहॅचुने का जल साधन बन गया। वही रक्षक था। उसने मुझे पार पहुॅचा दिया।"

"सरमा"! पणियो ने परिस्थिति की गम्भीरता समझकर प्रलोभन को साधन बनाया। "भयभीत देवताओ की प्रेरणा से यहाॅ आपका अ्रगमन हुआ है। आपको हम अपनी भगिनी स्वरूप मानते है। आपका भाग हम आपको प्रदान करते है। यहाॅ से लौटकर जाने से आपका क्या लाभ होगा। यही निवास करिये।"

"पणियो !"सरमा उनके प्रलोभन से अप्रभावित होती हुई बोली।" आपके भाई बहन गाथा को मै नही समझ पा रही हूॅ। इन्द्र अगिरस जानते है।

"पणियो ! यहाॅ से बहुत दूर चले जाओ । गुफा मे बन्द गाये कष्ट पा रही है। वे पर्वत से निकालकर धर्म का आश्रय प्राप्त करेगी। सोम का अभिषव करने वाले पाषाण, ऋषिगण,सोम, बृहस्पति, तथा अन्यान्य विद्वान् यहाॅ पर छिपी गौओ का भेद जान गये हैं।"

पणि गाय लौटाने को तैयार नही हुए। सरमा इन्द्र लोक लौट गयी।

"सरमा !"इन्द्र ने प्रसन्न होकर पूछा, "तुम आ गई। कुशल तो है ?"

"पुरन्दर ।" सरमा ने प्रसन्नतापूर्वक कहा, "रसा के पास पणियो ने गायो को पर्वतीय गुफा में छिपा रखा है।"

उतम पादवती सरमा गायो के स्वर को पहचानती थी। वह उनके समीप गई। इन्द्र ने पणियो का सहार किया, गाये मुक्त हुई पर्वत के टुटे द्वार पर इन्द्र को ले जाती सरमा ने कहा—

इन्द्र ने सरमा को अपने वचनानुसार प्रचुर मात्रा तथा अन्न तथा धन उसे तथा उसकी सतानो को देकर सखी बनाया और पणियो को पराजित कर वृहस्पति की गायो को लौटा दिया। देवताओ की गौरव पताका पुन फहरा उठी। यज्ञवेदी, अपहित एव पुन प्राप्त गायो के घृत से प्रज्जवलित हो उठी।*

---

* इस कथा मे राजदूतों के गुण, कर्म तथा व्यवहार का वर्णन किया गया है। युद्ध के पूर्व शत्रु को समझाने तथा शान्ति वार्ता के लिए दूत भेजना वैदिक प्रथा मालूम होती है। इसका किसी न किसी रूप मे आज भी अनुसरण किया जाता है। वैदिक काल मे स्त्रिया भी दौत्य कार्य करती थीं।

तृतीय अध्याय

ब्रह्मोद्य कथाएँ

१. ब्रह्मोद्य कथाये

ब्रह्म अर्थात वैदिक कर्म, आध्यात्मिक ज्ञान अथवा यज्ञ विषयिणी कथाओ को ब्रह्मोद्य कथाएँ कहते है। उत्तर वैदिक काल मे वैदिक दर्शन से सम्बद्ध दो धाराए चलती प्रतीत होती है। । प्रथम धारा नितान्त कर्मकाण्डपरक थी जब कि द्वितीय धारा ने वेदो मे दार्शनिक अर्थ ढूढने की चेष्टा की । उत्तर वैदिक काल का अन्त होते–होते द्वितीय धारा ही प्रबल हो रही थी । यज्ञ की प्रक्रियाये जटिल तो थी हीं साथ ही प्रबुद्ध वर्ग की वौद्धिक उत्कण्ठा को शान्त करने मे असमर्थ भी थी । ऐसी स्थिति मे ऐसा भी एक वर्ग उठ खडा हुआ जिसने वैदिक कर्मकाण्डो से दूर अध्यात्म–चिंतन किया तथा ब्रह्म जीव और जगत के विषय मे अपने विचारो को अभिव्यक्ति प्रदान की । यहां तक कि उन्होने यज्ञों को भी, अधिभूत से हटकर अध्यात्म और अधिदैवत से सम्बद्ध व्याख्या की। ब्रह्मोध कथाएँ ऐसे ही व्यक्तियो से परस्पर सवाद है । यद्यपि ब्राह्मण प्रधान रूप से अध्ययन और अध्यापन करने वाली जाति थी , किन्तु इस अध्यात्म –विधा के विकास मे क्षत्रियो का भी समान योग रहा । शतपथ ब्राह्मण मे इस प्रकार की १६ कथाएँ हैं ।

२. धीर शातपर्णेय और महाशाल जाबालि–शत० ब्रा० १०/३/३/१–८

एक ही अग्नि है । वह बहुधा समिद्ध है । वह प्रकृति के अणु–अणु में प्रत्येक प्राणी मे प्रज्वलित है । वह मानव शरीर में भी अनेक रूप में समाविष्ट है । वह वाक् मे चक्षु मे श्रोत्र में, मन मे शक्तिरूपेण विद्यमान है । प्राण तत्व भी उसी का रूप है । सारी इन्द्रियों का केन्द्र है । इसी में सब का लय है । इसी से सब का उद्भव है । इसके बिना शक्तिशालिनी इन्द्रियां भी अशक्त हैं । पुरूष–शरीर मे ये शक्तियां वस्तुतः प्रकृति शक्तियों की प्रतीक हैं –धीर शातपर्णेय महाशाल जाबाल के समीप गये । महाशाल जाबालि ने धीर से पूछा– 'क्या जानते हुए तुम मेरे समीप आये हो ? 'धीर ने

उत्तर दिया–'मै अग्नि को जानता हूँ । 'जाबाल ने पूछा किस अग्नि को जानते हो ? धीर ने कहा, ' मैं वाक्रूप अग्नि को जानता हूँ । **जाबाल**– 'जो उस अग्नि को जानता है , वह क्या होता है ? 'जो उस अग्नि को जानता है वह बाग्मी होता है । वाक् उसका परित्याग नही करती । **जाबाल** ने पूछा, 'तुम किस अग्नि को जानते हो? धीर ने– 'मै चक्षु रूप अग्नि को जानता हूँ' । 'जो उस अग्नि को जानता है वह चक्षुभान् होता है' । चक्षु उसका त्याग नही करता । **जाबाल**– 'तुम अग्नि को जानते हो । क्या जानते हुए तुम मेरे पास आये हो ? **धीर**– 'मै अग्नि को जानता हूँ । जाबालि– 'मनरूप अग्नि को जानता हूँ' । **जाबाल**– 'जो इस अग्नि को जानता है उसका क्या होता है ? **धीर**– 'जो इस अग्नि को जानता है वह मनस्वी होता है । मन उसका परित्याग नहीं करता है। **जाबाल**– तुम किस अग्नि को जानते हो? क्या जानते हुए मेरे पास आये हो? **धीर**– मै अग्नि को जानता हूँ । **जाबाल**– तुम किस अग्नि को जानते हो ? **धीर**– मै श्रोत्ररूप अग्नि को जानता हूँ । **जाबाल**– जो इस अग्नि को जानता है वह क्या होता है ? **धीर**– जो इस अग्नि को जानता है वह श्रोत्र होता है । श्रोत्र उसका परित्याग नही करता है । **जाबाल**– तुम अग्नि को जानते हो, क्या जानते हुए तुम मेरे पास आये हो ? **धीर**– मै अग्नि को जानता हूँ। **जाबाल**– तुम किस अग्नि को जानते हो? **धीर**– जो यह सर्वात्मक अग्नि है, उसे जानता हूँ। ऐसा सुनने पर जाबालि आसन से ऊपर उठखडे हुए और कहा, 'वह अग्नि किस प्रकार की है, समझाओ। **धीर**– 'तुम उस अग्नि को समझो। आध्यात्मिक रूप से ही वह सर्वात्मक अग्नि है। जब मनुष्य सोता है तो वाक् चक्षु, श्रोत्र सभी प्राण मे आकर एकीभूत हो जाते हैं। जब मनुष्य सोता है तो वाक् चक्षु, श्रौत्र सभी प्राण में आकर एकीभूत हो जाते हैं। जब वह जग जाता है तो प्राण से यह पुनः पृथक् हो जाते हैं। अधिदैवत अर्थ मे वाणी अग्नि ह। चक्षु आदित्य है, मन चन्द्रमा है, श्रोत्र दिशाये हैं । प्रवहणशील वायु ही

प्राण है। अग्नि वायु के प्रवाहित होनें पर झुकती है। आदित्य अस्त होने पर वायु मे ही प्रवेश करता है। वायु में ही दिशाये प्रतिष्ठित है। वायु के समीप से ही ये पुन उत्पन्न होते है। इस रहस्य को समझने वाला मृत्यु के पश्चात् तो वाणी से अग्नि मे, चक्षु से आदित्य मे, मन से चन्द्रमा मे, श्रोत्र से दिशाओ मे, प्राण से वायु मे प्रवेश कर जाता है। इन तत्वो मे मिलकर जिस देवता के रूप मे चाहता है उसी के रूप मे विचरण करता है।

२. अत्ता आयसम्बन्ध तथा पुरूष की अपरूपता: उद्दालक और वैश्वावसव्य १०/३/४/१

वैदिक साहित्य मे शरीर को अनेक रूपको द्वारा समझाया गया है। ऋग्वेद, अथर्ववेद तथा श्रीमद् भगवद्गीता मे इसे 'क्षेत्र' कहा गया है। यजुर्वेद और कठोपनिषद् मे इसे 'रथ' कहा गया है। अथर्ववेद, शरीर को 'पुर' की सज्ञा देता है। जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण–शरीर को देवो की ससद शाखायन आरध्यक– वीणा तथा अथर्ववेद इसे नाव की संज्ञा से अभिहित करता है। कबीर ने शरीर को तालाब एव चादर की संज्ञा दी है। शतपथ मे इसे 'अर्कवृक्ष' कहा गया है।

श्वेतकेतु आरूणेय यजन करने वाले थे। श्वेतकेतु से उनके पिता ने पूछा, श्वेतकेतु! तुमने किन्हे ऋत्विक चुना है। श्वेतकेतु ने बताया वैश्वावसव्य ही मेरे होता हैं। अब श्वेतकेतु के पिता आरूणि उद्दालक ने वैश्वावसव्य से पूछा, हे ब्राह्मण! वैश्वावसव्य! क्या चार महान् तत्वो को जानते हो? वै०– हा जानता हूं। उ०– क्या तुम उन चार महान् तत्वो से भी और अधिक महान तत्व को जानते हो। वै० हा, मैं उन्हें भी जानता हॅू। उ०– क्या तुम चार व्रतो को जानते हो? वै०, हा, मैं जानता हॅू। उ०– क्या तुम चार व्रतों के भी व्रत को जानते हो। वै०– हां मैं उन्हे भी जानता हू। उ०–क्या तुम चार

क्य को जानते हो। वै०– हा मै चार क्य को जानता हू। उ०– क्या तुम चार क्या के क्य को भी जानते हो। वै– हा मै उन्हे भी जानता हू। उ०– क्या तुम चार अर्कों को जानते हो। वै०– हॉ मै जानता हू। उ०– क्या तुम चार अर्कों के भी अर्कों को जानते हो? वै०– हा, मैं उन्हे भी जानता हू।

वैश्वावसव्य ने भी उद्दालक से प्रश्न करना प्रारम्भ कर दिया। अब क्या आप मुझे बतायेगे कि क्या आप अर्क को जानते है? क्या आप अर्क पुष्प, अर्क कोशी, अर्कसमुद्रग, अर्कचाना, अर्कष्ठीला तथा अर्कमूल को जानते है?

इतने प्रश्न करके वैश्वावसव्य ने उद्यालक के प्रश्नो के उत्तर देना आरम्भ किया। अग्नि महान् है। इस महान अग्नि से भी महान् औषधिया एव वनस्पतियॉ है। ये अग्नि के अन्न है। वायु महान् है। महान् वायु से भी महान् जल है। यह वायु का अन्न है। आदित्य महान् है। महान् आदित्य से भी महान् चन्द्रमा है। यह इसका अन्न है। पुरूष महान् है। महान् पुरूष से भी महान् पशु है। ये अग्नि, आदित्य, वायु एव पुरूष चार महान हैं। इन चारों महान् से भी महान् औषधि वनस्पति, जल, चन्द्रमा और पशु हैं। ये ही चार व्रत है। चार व्रतो के भी व्रत हैं। ये ही चार 'क्य' हैं। ये ही चार 'क्य' के भी 'क्य' है। ये ही चार अर्क हैं और ये चार अर्कों के भी अर्क हैं।

उद्यालक ने भी वैश्वासव्य के प्रश्नो का उत्तर दिया– पुरूष अर्क है। कर्ण अर्कपर्ण है। ऑखे अर्क पुष्प हैं। नासिकारन्ध्र अर्ककोशी है। ओष्ठ अर्कसमुद्ग है। दांत अर्कघाना हैं। जिह्वा अर्कष्ठाला है। अन्न अर्कमूल है। इस प्रकार पुरूष ही अर्करूप हैं, जो पुरूष अपने को 'अर्काग्नि हू', इस रूप में जान जाता है, उसके अन्दर विद्या से अर्काग्नि का चयन सम्पन्न हो जाता है।

३. वाजश्रवा कुश्री और सुश्रुवा कौश्य शत०ब्रा०१०/५/५/१

बाजश्रवा कुश्री ने अग्नि का चयन किया। कौश्य सुश्रुवा ने उससे कहा– 'गौतम'। तुमने जो यह अग्नि का चयन किया है वह प्राडमुख, प्रत्यडमुख, अवाडमुख और उतानमुख चयन क्यो किया? जो प्राडमुख अग्नि का चयन किया है। यह तो वैसे ही है जैसे पूर्वाभिमुखासीन व्यक्ति को कोई पीछे से भोजन रखे। अग्नि तुम्हारे हविष्य को ग्रहण नही करेगा। यदि तुमने अग्नि का प्रत्यडमुख चयन किया तो उसकी पूछ भी पश्चिम की ओर क्यों किया। जो यह तुमने अग्नि का अवाड चयन किया तो यह वैसे ही है जैसे कोई अधोमुख होने वाले के पीठ परे भोजन रख दे। तुम्हारा हविष्य अग्नि नही ग्रहण करेगा। जो यह तुमने उत्तानमुख होकर चयन किया तो पक्षी उत्तानमुख होकर स्वर्गलोक को जाते हैं। यह उत्तानमुख होकर तुम्हारे द्वारा किया गया अग्निचयन अस्वर्ग्य है। बाजश्रवा कुश्रि ने कहा, मैने प्राडमुख प्रत्यडमुख, अवाडमुख तथा उत्तानमुख होकर अग्नि का चयन किया है। अत मैने सभी दिशाओ में अग्नि चयन किया है।

४. वैश्वानर अग्नि : अरुण, सत्ययज्ञ, जावाल, बुडिल, जनशांर्कराक्ष्य और अश्वपति (शत०ब्रा०१०/६/१/१)

सत्ययज्ञ, पौलुषि, महाशाल, जाबाल, बुडिल, आश्वतराश्वि इन्द्रघुम्न और जन शार्कराक्ष्य– ये सब अरूण औपवश के पास गये। वे अरुण से वैश्वानराग्नि को जानने के लिए उनके पास बैठ गये।

उन्हें वैश्वानराग्नि को उपदेश करने मे अरुण समर्थ न हो सके। अब सबों ने मिलकर सोचा कि केकय के राजा अश्वपति वैश्वानर अग्नि को जानते हैं। उनके पास चला जाय। वे सब केकय नरेश अश्वपति के पास गये। केकयनरेश ने उन सब के

स्वागत मे सब को पृथक–पृथक आवास प्रदान किया। पृथक–पृथक पूजा की तथ उन्हे पृथक–पृथक सोमयाग मे ऋत्विक चुनकर दक्षिणा देने के लिए कहा। वे लोग राजा को बिना अपना आशय बताये ही समित्पाणि होकर उनके पास गये और कहा, मै तुम्हारे पास आया हू। अश्वपति ने कहा, आप लोक ऐश्वर्य सम्पन्न वेदवेत्ता है, वेदवेत्ता के पुत्र है, भला मेरे पास क्या सीखने आये है। ब्राह्मणो ने कहा, भगवन्! इस समय आप ही वैश्वानर अग्नि को जानते है। उसे हमे बता दीजिए। अश्वपति ने कहा, हा मैं इस समय वैश्वानर अग्नि को जानता हू। समिधाओ को अग्नि पर रख दो। मेरे पास आओ।

अश्वपति ने अरूण औपवेशि से पूछा, गौतम! तुम वैश्वानर किसे समझते हो? अरूण ने कहा, मैं पृथिवी को वैश्वानर समझता हू। अश्वपति ने कहा, ठीक है, पृथिवी प्रतिष्ठा वैश्वानर है, तुम प्रतिष्ठा वैश्वानर को जानते हो, इसी से तुम प्रजाओं और पशुओ से प्रतिष्ठित हो। जो प्रतिष्ठा वैश्वानर को जानते है, मृत्यु को जीत लेना है। सम्पूर्ण आयु प्राप्त करता है। यह पृथिवी रूप, प्रतिष्ठा, वैश्वानर के दोनो पाद हैं। यदि तुम यहा न आये होते तो तुम्हारे पैर चलने मे असमर्थ हो जाते तुम्हें केवल वैश्वानर के पाद–भाग का ही ज्ञान रह जाता।

दूसरी बार अश्वपति ने पौलुषि सत्ययज्ञ से पूछा– 'प्राचीन योग्य! तुम किसे वैश्वानर समझते हो। सत्ययज्ञ ने कहा, 'राजन् मैं जल को वैश्वानर समझता हू। ठीक है जल रयि वैश्वानर है। तुम रयि वैश्वानर को जानते हो, जो इस रयि वैश्वानर को जानता है वह रयिमान, पुष्टिमान् होता है। मृत्यु को जीत लेता है। भरपूर आयु जीता है। जल वैश्वानर की वस्ति (मूल) है। यदि तुम यहां न आये होते तो वस्ति तुम्हें छोड देती और तुम्हे वैश्वानर की वस्ति मात्र का ज्ञान होता।

अश्वपति ने महाशाल जावाल से पूॅछा, औपमन्यव तुम किसे वैश्वानर समझते हो। जाबाल ने कहा, राजन् मैं आकाश को वैश्वानर मानता हूं। अश्वपति ने कहा, ठीक है यह आकाश 'बहुल' वैश्वानर है। तुम बहुल वैश्वानर को जानते हो। इसलिए तुम बहुत सी प्रजाओ तथा पशुओ से युक्त हो। जो इस बहुल वैश्वानर को जानता है, मृत्यु को जीत लेता है। भरपूर आयु जीता है। यह बहुल आकाश वैश्वानर की आत्मा है। यदि तुम यहा न आये होते तो आत्मा तुम्हे छोड देती। तुम्हे वैश्वानर की आत्मा मात्र का ज्ञान रह जाता।

अश्वपति ने बुडिल आश्वातराश्वि से पूछा, तुम किसे वैश्वानर समझते हो? बुडिल ने कहा, राजा मै वायु को वैश्वानर मानता हूॅ। अश्वपति ने कहा, "ठीक है, यह पृथग्वर्त्मा वैश्वानर है तुम पृथग्वर्त्मा वैश्वानराग्नि को जानते हो, इसलिए तुम्हारे पीछे–पीछे पृथक–पृथक रथश्रेणियॉ चलती है। जो पृथग्वर्त्मा वैश्वानर को जानता है मृत्यु को जीत लेता है। पृथग्वर्त्मा वायु वैश्वानर का प्राणरूप है। यदि तुम यहां न आते तो प्राण तुम्हे छोड देता, तुम्हे केवल वैश्वानर के ही प्राण का ज्ञान रहता।

अश्वपति ने इन्द्रद्युम्न से कहा, तुम किसे वैश्वानर समझते हो। इन्द्रद्युम्न ने कहा, राजन् मे आदित्य को वैश्वानर समझता हू। अश्वपति ने कहा, ठीक है यह सुततेजा वैश्वानर है। तुम सुततेजा वैश्वानर को जानते हो। इसलिए तुम्हारे यज्ञ–गृह में अभिषुत सोम खाया जाता रहता है– पुरोडाश खाया जाता रहता है किन्तु क्षीण नहीं होता। जो सुततेजस् वैश्वानर को जानता है, मृत्यु को जीत लेता है, भरपूर आयु जीता है, यह आदित्य वैश्वानर का नेत्र है। यदि तुम वहा न आये होते तो नेत्र तुम्हे छोड देता। तुम्हें वैश्वानर के नेत्रमात्र का ज्ञान रह जाता।

अब अश्वपति ने जन शार्कराक्ष्य से पूछा, सावयवस् तुम किसे वैश्वानर समझते हो? जन० ने कहा, राजन् मैं द्युलोक को वैश्वानर समझता हू। अश्वपति ने कहा, ठीक है। यह अतिष्ठा वैश्वानर है। तुम अतिष्ठा वैश्वानर को जानते हो। इसलिए तुम अपने से समान लोगो का अतिक्रमण कर जाते हो। जो इस अतिष्ठा वैश्वानर को जानता है, मृत्यु को जीत लेता है। भरपूर आयु जीतता है। यह द्युलोक वैश्वानर की मूर्धा है। यदि तुम यहा न आये होते तो मूर्धा तुम्हारा परित्याग कर देती। तुम्हे वैश्वानर की मूर्धा मात्र का ज्ञान रह जाता।

हे ब्राह्मणो! तुम लोग वैश्वानर के अवयव मात्र को जानते हो। इसीलिए पृथक्–पृथक् अननमक्षण किये हो। प्रदेशमात्र मे स्थित वैश्वानर को जानकर देवता लोग अति सम्पन्न हो गये। जिस वैश्वानर को तुम सब ने पृथक् पृथक बताया, उसे मैं इस प्रकार बताऊगा कि वह कैसे प्रदेश मात्र मे स्थित है।

मूर्धा अतिष्ठा वैश्वानर है। नेत्र सुततेजा वैश्वानर है। नासिका रन्ध्र पृथग्वर्त्मा वैश्वानर है। आकाश बहुल वैश्वानर है। जब रत्रि वैश्वानर है। चिबुक प्रतिष्ठा वैश्वानर है। यही पुरूष ही वैश्वानर अग्नि है। जो पुरूष रूप वैश्वानर पुरूष के ऊर्ध्व–भाग मे प्रतिष्ठित वैश्वानर को जानता है, मृत्यु को जीत लेता है। भरपूर आयु जीता है। वैश्वानर का उपदेश करने वाले को वैश्वानर हिंसित नही करता है।

५. अग्निहोत्र : जनक और याज्ञवल्क्य

वाणी अग्निहोत्री धेनु है। मन अग्निहोत्री धेनु का वत्स है। ये दोनों परस्पर सम्बद्ध होते हुए भी भिन्न प्रतीत होते हैं। श्रद्धा आहवनीय रूप तेज है। सत्य श्रद्धा मे आहुत पय है। इस प्रकार अग्निहोत्र मन के सहारे ही वाणी रूप धेनु से प्राप्त सत्यरूप

पयोद्रव्य का श्रद्धारूप आहवनीय तेज मे हवन का प्रतीक है। साभी साधनो से रहित होने पर भी इस रहस्य को जानने वाले यजमान का भी अग्निहोत्र बराबर चलता रहता है। उसी प्रकार जिसका चित्त निरन्तर जागृत रहता है, जो सम्पूर्ण प्राणमान जगत में एकत्व की अनुभूति करता है, वह कही भी रहे उसका भी अग्निहोत्र अविच्छिन्न रहता है। वह निश्चय ही प्राणद्रव्य का प्राणरूप तेज मे हवन करता है। इस प्रकार प्राण ही अग्निहोत्र है।

वैदेह जनक ने याज्ञवल्क्य से पूछा– याज्ञवल्क्य क्या तुम अग्निहोत्र जानते हो? हां सम्राट याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया। तब जनक ने प्रश्न किया– अग्निहोत्र क्या है? उत्तर मिला– अग्निहोत्र पय है। जनक ने पुन प्रश्न किया– जब पय न मिले तो किससे हवन करोगे। याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया, ब्रीहि और यव से। जनक ने तीसरा प्रश्न किया, जब ब्रीहि और यव भी न मिल सके तो किससे हवन करोगे। अन्य औषधियो से याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया। जब अन्य औषधिया भी अप्राप्य हों तब किससे हवन करें? उत्तर मिला– अरण्य औषधियो से। और जब यह भी न मिले तो क्या करे? वनस्पतियो से ही हवन करे। याज्ञवल्क्य ने कहा। जनक ने फिर से कहा, यदि वनस्पतियॉ भी न मिल सके तो किससे हवन करे? और अन्त में याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया, राजन्! वनस्पति के भी अभाव मे जल से और जल भी न मिल सकने पर अन्य प्राप्य किसी द्रव्य से हवन करे। अतएव श्रद्धा रूप तेज मे पय रूपी तेज का हवन ही श्रेयस्कर है।

याज्ञवल्क्य के इस उत्तर से प्रसन्न होकर जनक ने कहा, याज्ञवल्क्य। सचमुच तुम अग्निहोत्र को जानते हो। मै तुम्हे सौ गाये दूंगा।

६. दर्शपौर्णमास : उद्दालक और स्वैदायन शौनक (११/२/७/१)

यज्ञ दो प्रकार का होता है एक याकृत यज्ञ जो प्रकृति मे निरन्तर चलता रहता है और दूसरा अनुष्ठेय, जो ब्राह्मणो द्वारा अनुष्ठीयमान है। इन दोनो का परस्पर घनिष्ठ सबध है। प्रथम शाश्वत सत्य है, और दूसरा प्रथम का रूपात्मक अभिनय। इन दोनो की पारस्परिक घनिष्ठता विषयक एक कथा है।

कुरूपाचाल देश से अरूण के पुत्र उद्दालक किसी यज्ञ मे भाग लेने के लिए उदीच्य देश मे बुलाये गये। उद्दालक के सामने निष्क नामक सिक्का रखा गया जिसे यज्ञ भेट किया जाता था। उदीच्य देश के ब्राह्मणों ने विचार किया। यह कुरूपाचाल देश का विद्वान स्वयं ब्रह्मा और ब्रह्मा का पुत्र है। यदि वह अपनी दक्षिणा मे से आधा द्रव्य हमे न दे तो क्या हम इसे बाद के बुला सकते हैं? अन्तत निश्चित हुआ कि स्वैदायन को बाद मे पडित बनाकर उधालक से शास्त्र चर्चा करें। स्वैदायन से उन लोगो ने प्रार्थना की और स्वैदायन ने उन्हे आश्वासन भी दिया और कहा कि पहले मै इसकी विद्वता का पता लगा लू। इतना कहकर स्वैदायन मण्डप की ओर गये। परस्पर परिचय के अनन्तर स्वैदायन ने प्रश्न करना आरम्भ किया।

१– गौतम पुत्र! वही पुरुष यज्ञ में ऋत्विक बनकर दूर देश मे जा सकता है, जो दर्शपौर्णमास के ८ पूर्व के आज्य भाग, पाच मध्य के हविर्भाग, छ प्रजापति देवता के भाग और आठ अन्त के आज्य भाग जानता हो।

२– गौतम पुत्र! वही पुरूष यज्ञ मे ऋत्विक् होने का अधिकारी है जो दर्शपौर्णमास के उस कर्म को जानता है, जिसके कारण प्रजायें दन्त–विहीन उत्पन्न होती हैं, जिसके कारण बाद मे दांत निकलते हैं, जिसके कारण फिर गिर जाते हैं और जिसके कारण दूसरी बार फिर निकलते हैं। ये दांत पहले नीचे क्यों निकलते हैं, ऊपर

बाद मे क्यो निकलते है, क्यो नीचे के छोटे और ऊपर के बडे होते है, दाढें क्यो फैली हुई किन्तु जबडे समान होते है।

३– गौतम पुत्र! वही पुरूष यज्ञ मे ऋत्विक होने का अधिकारी है जो दर्शपौर्णमास की उस प्रक्रिया को जानता है, जिसमे सब प्रजाये लोमश होती है, जिससे आगे चलकर श्मश्रु भी निकलते है। जिस कारण से पहले शिर के केश श्वेत होते है और अन्त मे सब बाल पक जाते है।

४– हे गौतम पुत्र! वही व्यक्ति यज्ञ मे ऋत्विक होने का अधिकारी है जो दर्शपौर्णमास की उस क्रिया को जानता है जिसके कारण कुमार मे सैचन शक्ति नहीं होती। युवावस्था मे यह वीर्य सेचन शक्ति आजाती है तथा अन्तिम अवस्था मे वह फिर समाप्त हो जाती है।

५– यज्ञ में ऋत्विक् होने का अधिकारी वही हो सकता है जो यजमान को स्वर्ग तक ले जाने वाली ज्योतिष्पक्षा हरिणी गायत्री को जानता है।

उद्दालक ने प्रश्न सुनते ही अपना निष्क स्वदायन के सामने रखते हुए कहा, स्वैदायन तुम सचमुच अनूचान हो। सुवर्ण, सुवर्ण का ज्ञान रखने वाले को ही मिलना चाहिये। इस पर स्वैदायन उद्दालक से गले मिलकर यज्ञ भूमि चले गये। ब्राह्मणो ने पूछा, स्वैदायन गौतम का पुत्र कैसा है? उसे देखा। स्वैदायन ने उत्तर दिया, जैसा ब्रह्मा का पुत्र और ब्रह्मा होना चाहिये, वैसा ही उद्दालक है। इसके सामने जो खडा होगा, उसका सिर अवश्य झुक जायेगा। ब्राह्मण लोग निराश होकर घर चले गये। थोडी देर बाद उद्दालक समित्पाणि होकर स्वैदायन के समीप पहुंचे और बोले, भगवन्! मैं आपका शिष्य बनने आया हूं। स्वैदायन ने पूछा, आप मुझसे किस विषय का अध्ययन करना

चाहते हो? उद्दालक ने कहा, जो प्रश्न आपने किये थे उन्ही का उत्तर जानना चाहता हू। स्वैदायन ने उत्तर देना आरम्भ किया–

१– दो आधार, पचप्रयाज, एक आग्नेय आज्यभाग– ये दर्शपौर्णमास के आठ आज्य भाग है। सोमीय तथा आग्नेय आज्य भाग, पुरोडाश, स्विष्टकृत् तथा अग्नि की आहुति– ये पाच भाग मध्य के हविर्भाग है। प्राशित्र, इडा, आग्नीध्र,आधान, ब्रह्म भाग यजमान भाग, अन्वहार्य ये प्रजापति देवता के लिए हैं। तीन अनुयाज, चार पत्नी सयाज और समिष्टयजुः ये आठ अन्त के आज्य भाग हैं।

२– प्रयाजो मे पुरोनुवाक्या न होने से प्रजाये दॉतरहित होती हैं। हवि में पुरोनुबाक्या होने से उनके दात निकल आते है। अनुयाजों मे पुन पुरोनुवाक्या न होने से उनके दात गिर जाते हैं। पत्नी सयाज मे पुरोनुवाक्या होने से दात फिर से उग आते है। अन्तत· समिष्टयजु मे पुरोनुवाक्या न होने से वृद्धावस्था मे दांत गिर जाते है। अनुवाक्या–पाठ के पश्चात् याज्या–पाठ होता है। अतएव पहले नीचे के और बाद मे ऊपर के दात निकलते हैं। अनुवाक्या `गायत्री है याज्या त्रिष्टप। त्रिष्टुप् से गायत्री छोटी होती है, इसलिए नीचे के दात ऊपर के दात से छोटे होते है। सबसे पहले आघार किया जाता है, इससे दाढे फैली हुई होती हैं। सयाज प्रयुक्त छन्द समान होते हैं। इस कारण जबडे समान होते हैं।

३– क्योकि यज्ञ मे कुशाओ का आस्तरण किया जाता है, इसी कारण सारी प्रजा लोमयुक्त पैदा होती है। कुशनुष्टि कापुन· आस्तरण होता है। इससे श्मश्रु निकल आती है। केवल कुशमुष्टिका आहरण किया जाता है, इस कारण शिर के बाल पहले पक जाते हैं। अन्त में सारी कुशाओ का प्रहरण किया जाता है, इसलिए बाद में वृद्धावस्था मे सारे केश श्वेत होते हैं।

४–प्रयाजो मे आज्य द्रव्य होने से कुमार मे वीर्य सचन शक्ति नही रहती। प्रधान याग मे कठोर द्रव्य पुरोडाश एव दधि होने से युवावस्था मे सेचन शक्ति का सचार होता है। अनुयाज मे पुन आज्यद्रव्य प्रयुक्त होता है अतएव वृद्धावस्था मे वह शक्ति क्षीण हो जाती है।

५– यज्ञ की वेदी ही गायत्री है। पूर्व के आठ आज्य भाग उसके दक्षिण पक्ष है। अन्त के आठ आज्य भाग उसके वामपक्ष हैं। यही तेजोमय पक्ष वाली गायत्री यजमान को स्वर्ग ले जाती है। यह सुनकर उधालक सन्तुष्ट हो गये।

७. अग्निहोत्र : प्राचीनयोग्य और उद्दालक

अग्निहोत्रकर्म देवताविशेष से ही सम्बद्ध न होकर अनेक देवताओ से सम्बद्ध होना चाहिये। इस याग के विविध अग और प्रत्यग विभिन्न देवताओं के लिए सम्पन्न किये जाते है। इसीलिए अग्निहोत्र कर्म मे सभी देवताओ को भाग प्राप्त होता है। सभी समान रूप से तुष्ट होते हैं। प्रस्तुत आख्यायिका इसी तथ्य की ओर सकेत करती है। शाचेय प्राचीन योग्य एक बार आरूणि उद्दालक के पास गये और कहा कि मैं आप से अग्निहोत्र के विषय मे ब्रह्ममोघ के लिए आया हू, और उधालक से प्रश्न भी किया–

१– गौतम! तुम्हारी अग्निहोत्री कौन हैं? २– वत्स कौन हैं? ३– वत्स सयाजिता धेनु कौन है? ४– सयोजनदाय क्या हैं? ५–दुह्यमान क्या है? ६– दुग्ध क्या है? ७– आहुति क्या है? ८– दधिश्रित द्रव्य क्या है? ९–अनज्योत्ययान क्या है? १०– जन से प्रत्यानीत क्या है? ११– उदास्यमान क्या है? १२– उदासित क्या है? १३– उन्नीयमान क्या है? १४–उन्नीत क्या है? १५– उद्यत क्या है? १६– ह्रियमाण क्या है? १७– बिगृहीत क्या है? १८– किस समिघ को अग्नि पर रखते हो? १९– पूर्वाहुति किसके लिये है? २०– आहुति के बाद सुव्यवस्थापन किसके लिए हैं। २१–गार्हपत्येक्षण किसके

लिए है। २२– उत्तराहुति किसके लिए है? २३–उत्तराहुति के सुक को क्यो कपाते हो? २४– सुडमुख लेप का परिमार्जन कर कर्च मे क्यो लगाते हो? २५– द्वितीय बार परिमार्जन कर दक्षिण ओर हाथ क्यो रखते हो? २६– प्रथम प्राशन क्यो करते हो? २७– द्वितीय बार प्राशन क्यों किया? २८–वेदि समीप जाकर क्यो पान किया? २६– सुक मे जल लाकर उक्षण क्यो किया? ३०– द्वितीय बार इस दिशा मे ऊपर की ओर उक्षण क्यो किया? ३१– तृतीयबार इस दिशा मे ऊपर की ओर उक्षण कयो किया? ३२– आह्वानीय के पीछे जल का निनयन क्यो किया ? ३३– क्या सस्थापित किया?

यदि तुम्हे इन बातो का ज्ञान है तभी तुम्हारा यजन सच्चे अर्थों मे हुत है, अन्यथा यह हुत भी अहुत ही है। यह सब सुनकर उद्दालक ने प्रश्नों का उत्तर देना आरम्भ किया।

१– मानवी इडा मेरी अग्निहोत्री है। २– वत्स वायव्य है। ३– वायु रूपवत्स से सयुक्त द्युलोक उपस्रष्टा है। ४– विराट् छन्द सयोजन है। ५– आश्विन दुह्यमान है। ६– दुग्ध वैश्वदेव है। ७– आह्रियमाण वायव्य है। ८– अधिश्रित आग्नेय है। ९– अवज्योत्यमान ऐन्द्राग्नि है। १०– जल से प्रत्यानीत आश्विन है। ११– उदास्यमान वायव्य है। १२– उद्वासित द्यावापृथवी है। १३– उन्नीयमान आश्विन है। १४– उन्नीत वैश्वदेव है। १५–उद्यत महादेव के लिये हैं। १६– ह्रियमाण वायव्य है। १७– बिगृहीत वैष्णव है। १८– जो समिध रखता हू वह आहुतियो की प्रतिष्ठा है। १९– पूर्वाहुति से मैने देवो को तृप्त किया। २०– स्रुक स्थापनबहिस्पत्य है। २१– जो ऊपर देखा, उससे पृथ्वीलोक को द्युलोक से सम्बद्ध कर दिया। २२– उत्तराहुति से अपने को स्वर्ग मे प्रतिष्ठित कर लिया। २३– हवन करते समय स्रुक प्रकम्पन वायव्य है। २४– स्रुक परिमार्जन कर जो कूर्च में पोछा, उससे औषधियों व वनस्पतियों को तृप्त कर दिया। २५– द्वितीय बार परिमार्जन करके जो दाहिनी ओर हाथ रखा उसने पितरों को तृप्त

किया। २६– पूर्वप्राशन से अपने को तृप्त किया। २७– द्वितीय प्राशन से प्रजाओ को तृप्त किया। २८– जो वेदि समीप जाकर दान किया उससे पशुओ को तृप्त किया। २९– जो स्रुक मे जाकर जल लाया और उक्षण किया उसने सर्पदेव जनो को तृप्त कर दिया। ३० द्वितीय बार उक्षण से गन्धर्वों और अप्सराओ को तृप्त कर दिया। ३१– आह्वानीय के पीछे जल लाकर पृथिवी लोक को वृष्टि प्रदान की। ३२– सस्थापन करके जो कुछ पृथिवी मे कमी थी, उस कमी को समाप्त कर दिया। ३३– शौचेय ने पुन निवेदन किया, भगवन् मैं आपसे पुन· प्रश्न करना चाहता हू। उद्दालक ने कहा, जो कुछ भी चाहो, पूछ लो प्राचीन योग्य। प्राचीन योग्य ने पूंछा, गार्हपत्य से आह्वानीय आदि अग्नियों का उद्धरण हुआ हो, पात्र निश्चित स्थान पर रख दिये गये हों तुम हवन कर रहे हो, ऐसे समय जब आह्वानीयाग्नि बुझ जाये तो क्या तुम जानते हो इसमे कौन सा भय है? उद्दालक ने बताया, इससे ज्येष्ठ पुत्र की मृत्यु हो जाती है। इससे बचने के लिए 'प्राणउदानमप्यगात्' इत्यादि मत्र से हवन करेगे। यह हवन गार्हपत्यागिन मे करना चाहिए।

३४– शौचेय ने पुन. प्रश्न किया, भगवन् मै आपसे पुनः पूछना चाहता हू। उद्दालक ने कहा, जो भी चाहो पूँछ लो, प्राचीन योग्य। शौचेय ने कहा, यदि इसी समय गार्हपत्याग्नि भी बुझ जाय तो हवन करने वाले के पास बचने का क्या उपाय है? उद्दालक ने बताया किया हवनकर्त्ता का यजमान ऐसी दशा में तुरन्त मर जाता है। यदि इस अनिष्ट से बचना हो तो उदानप्राणपम्यगात् मंत्र से हवन करना चाहिए। यह हवन आहवनीय में करना चाहिए। यह हवन आह्वानीय में करना चाहिए।

३५– प्राचीन योग्य ने पुन. निवेदन किया, यदि इसी समय अन्वादार्य–अन्वाहार्यपचनाग्नि भी बुझ जाय तो इससे हवन करने वाले को कौन सा भय होता है। उसका प्रायाश्चित क्या है? उद्दालक– ऐसा होने से हवनकर्त्ता के सभी पशु

मर जाते है। मैन ` इस भय को विधाओ के द्वारा पार कर लिया है। व्यान उदानमप्यगात् से मैं गार्हपत्य मे हवन करुगा।

३६– प्राचीन योग्य– यदि इसी समय अग्निया बुझ जाय तो कौन साभय उत्पन्न होगा? उसकी प्रायश्चित क्या है? उधालक, होता का कुल अदायाद ही जायेगा। इस भय से बचने के लिए तुरन्त ही अग्निमन्थन करके, जिस दिशा मे वायु बहे उसी ओर वाहवनीय ले जाकर वायव्य आहुति करे, क्योकि मरने पर प्राणी वायु में ही मिलते हैं, वही से उत्पन्न भी होते हैं।

३७– प्राचीन योग्य– सभी अग्नियो के बुझ जाने पर हवन करने वाले को कौन सा भय ग्रसित करता है? इस भय से बचने का उपाय क्या है?

उद्दालक– दोनो लोको मे उसे अप्रिय ही प्राप्त होगा। प्रायश्चित के लिए शीघ्र ही अग्नि मथकर पूर्व की ओर आहवनीय का उद्धरण कर आहवनीय के पीछे बैठकर मैं इसे पीऊ। मेरा अग्निहोत्र सभी देवताओं को तृप्त करे ऐसा कहूगा।

यह उत्तर सुनकर प्राचीनयोग्य हाथ मे समित् लेकर उद्दालक से कहा, भगवन् मै आपका शिष्य बनने आया हूँ। उद्दालक ने उत्तर दिया, अच्छा हुआ जो तुमने इस प्रकार विनय प्रदर्शित कर दिया नहीं तो मूर्द्धा गिर पडती। ऐसा कहकर उद्दालक ने प्राची योग्य को दीक्षित कर लिया।

८. नरलोक और कर्म सिद्धान्त : वरुण और भृगु

वैदिक साहित्य में नरकलोक सम्बन्धी कल्पना के दर्शन सर्व प्रथम अथर्ववेद में मिलते हैं, जहा इसे अन्धतमस् लोक के रूप मे चित्रित किया गया है। अथर्ववेद (५–१६) मे नरकलोक की विभीषिका का भी चित्रण है। शतपथ ब्राह्मण ६/२/२/२७

के अनुसार समस्त प्राणी दूसरे लोको मे जन्म ग्रहण करते है एव अच्छे बुरे कर्मों का फल पाते है। तैत्तिरीय आरण्यक ६/५/१६ के अनुसार कर्मानुकूल प्रत्येक प्राणी मरने के पश्चात यम के सम्मुख उपस्थित हो बुरे और भले के निर्धारण का उल्लेख करता है। इसी प्रकार की एक कथा शतपथ मे भी आई है—

भृगु अपने पिता को पिता वरुण की अपेक्षा अधिक विद्या सम्पन्न समझने लगा। वरुण ने इस बात को समझ लिया कि मेरा पुत्र अपने को मेरी अपेक्षा अधिक विद्वान समझने लगा है। वरुण ने कहा, पुत्र! पूर्व की ओर जाओ। वहा जो कुछ भी हो देखकर पश्चिम की ओर जाना। वहा जो कुछ भी दिखायी दे, उसे आकर मुझे बताना।

भृगु पूर्व की ओर गया। वहा उसने मनुष्य शरीर को पर्व पर्व पर काटकर कुछ मनुष्यो द्वारा परस्पर बाटते हुए देखा। देखते ही बोल पड़ा, अरे इतनी कठोरता, मनुष्य, मनुष्य के ही अंगो को काट कर बाट रहे है। उन मनुष्यो ने कहा, जिन्हे हम काट रहे है, उन्होने पहले हमारे साथ पूर्वलोक मे यही व्यवहार किया था। अब हम लोग भी उसी प्रकार प्रतिकार कर रहे हैं। भृगु ने कहा, क्या उसका कोई प्रायश्चित है? मनुष्यो नें बताया कि प्रायश्चित अवश्य है जिसे तुम्हारे पिता जानते है। भृगु दक्षिण दिशा मे गया और पुरुषों के द्वारा पुरुषो के अग–अंग को काट–काट कर परस्पर बाटते हुए देखा।

भृगु ने दुःख के साथ कहा, कष्ट है, ये मनुष्य–मनुष्य के ही अगों को काटकर बाट रहे हैं। मनुष्यों ने बताया कि जिस प्रकार इन्होने पूर्व लोक मे हम लोगों के साथ व्यवहार किया था, वैसा ही व्यवहार हम लोग इनके साथ कर रहे हैं। भृगू के द्वारा प्रायश्चित पूछने पर उन लोगो ने बताया कि इसे तुम्हारे पिता जानते है।

भृगु पश्चिम की ओर गया जहां उसने कुछ चुपचाप बैठे हुए लोगों को देखा। कुछ लोग बैठे हुए लोगो का मांस खा रहे थे। उसनें यह भयानक दृश्य देख कर कहा,

कष्ट है ये मनुष्य चुपचाप बैठे हुए लोगो का मास खा रहे है। उन खाने वालों ने कहा, जैसे इन सब ने पूर्वलोक मे हम लोगो के साथ व्यवहार किया। उसी का प्रतीकार हम लोग भी कर रहे है। भृगु ने पूॅछा, क्या इसकी कोई प्रायश्चित है? लोगों ने बताया, इसका प्रायश्चित तुम्हारे पिता जानते हैं।

भृगु अब उत्तर की ओर गया जहां रोते चिल्लाते हुए पुरूषों की शोर मचाते हुए पुरुषो द्वारा खाते हुए देखा। भृगू ने कहा, कष्ट है ये शोर मचाते हुए पुरुष रोते हुए पुरुषो को खा रहे है। पुरुषो ने बताया कि जो इन्होंने पूर्वलोक मे हम लोगों के साथ व्यवहार किया। उसी का प्रतिकार हम लोग भी कर रहे है। भृगु ने पूछा, क्या इसकी कोई प्रायश्चित है? लोगो ने बताया, इसकी प्रायश्चित तुम्हारे पिता जी जानते हैं।

अब भृगु पश्चिमोत्तर कोण में गया जहा दो स्त्रियॉ कल्याणी और अतिकल्याणी के मध्य दण्डपाणि पुरुष को देखा। उन्हें देखकर भृगु डर गया और घर आकर बिस्तर पर पड गया।

पिता वरूण ने भृगु को निर्देश दिया कि उठो स्वाध्याय करो। वेदो का स्वाध्याय क्यो नही कर रहे हो? भृगु बोला, स्वाध्याय क्या करूं अब उसके लिए कुछ शेष नहीं। वरुण को मालूम हो गया कि इसे कुछ नही मालूम है। उन्होने उसे बताया कि जो तुमने प्राची दिशा में लोगों को पर्वश मानव शरीर का विभाजन करते हुए देखा, वे वनस्पतिया थीं। वनस्पतियों की समिधा बनाकर उन्हे अपने अधीन कर लेते हैं। दक्षिण दिशा मे जिन्हें तुमने देखा वे पशु हैं। पय से हवन कर उन्हें अपने अधीन कर लेते हैं। पश्चिम में दिखाई पडने वाली औषधियॉ थीं। तृण के द्वारा अवज्योतन करके औषधियों को अपने अधीन कर लेते हैं। उत्तर की ओर दिखाई पडने वाली आयु. थी। वे बलपूर्वक लाकर उन्हें अपने उसर और दिखाई। अधीन कर लेते है। दिगन्तराल मे कल्याणी त्रद्धा

थी, अतिकल्याणी अत्रद्धा थी। पुरूष क्रोध था। वह स्रुक द्वारा जलानयन करके तीनो को रमाधीन कर लेता है।

६. अग्नि होत्र : जनक श्वेतकेतु सोमशुष्य तथा याज्ञवल्क्य ११

अग्निहोत्र याग के विषय मे विभिन्न धारणाये थी, कोई इसे सूर्या और अग्नि के परस्पर हवन का प्रतीक मानता तो कोई शारीरिक भोजनादि क्रियाओ का प्रतीक और कोई उसे प्रजनन क्रिया का प्रतीक मानता था। प्रस्तुत प्रतीक द्वारा इन सभी परस्पर विरोधी धारणाओ मे निहित– एक बार जनक देशान्तर से आते हुए श्वेतकेतु सोमशुष्म एव याज्ञवल्क्य से मिले। जनक ने इन ब्राह्मणो से पूछा– तुम सब अग्निहोत्र कैसे हवन करते हो।

आरुणेय श्वेतकेतु ने कहा, हे सम्राट! सतत दीप्यमान प्रकाश से युक्त– अग्नि एव आदित्य– इन दोनो मे क्रमश एक दूसरे का हवन करता हू। आदित्य धर्म है। सांयकाल उसे अग्नि मे हवन करता हूं। अग्नि भी धर्म है। प्रात आदित्य में उसका हवन करता हू। ऐसा करने से हवन कर्त्ता श्री और यश से संयुक्त होकर दोनो देवो के सायुज्य और सालोक्य प्राप्त कर लेता है।

सात्ययज्ञि सोमशुष्म ने कहा, सम्राट मैं तेज का तेज मे हवन करता हूं। आदित्य तेज है। सायकाल उसका अग्नि मे हवन करता हू। इस प्रकार हवन करने वाला तेजस्वी, यशस्वी एव अन्नाद हो जाता हैं वह दोनों देवो के सायुज्य एवं सालोक्य को प्राप्त कर लेता है।

याज्ञवल्क्य ने कहा, जब मैं गार्हपत्य से आहवनीयाग्नि का उद्धरण करता हूं तो सम्पूर्ण अग्निहोत्र को ऊपर ले लेता हू। जाते हुए आदित्य का सभी देव अनुसरण करते

है। वे मेरे द्वारा उद्धृत व अग्नि कोदेखकर लौट आते है। बाद मे मै पात्रो को शुद्धकर उन्हे रखकर अग्निहोत्री गाय को दुहकर देखते ही देखते प्रतीक्षा मे स्थित देवो को तृप्त कर देता हू।

जनक ने कहा, याज्ञवल्क्य! तुम सत्य के अधिक समीप हो। तुमने अग्निहोत्र के स्वरूप पर विचार किया है। तुम्हे सौ गाये दूगा। किन्तु अग्निहोत्र की उत्क्रान्ति, गति, प्रतिष्ठा, तृप्ति, पुनरावृत्ति, प्रत्युत्यायी लोक आदि के विषय मे तुम भी नही जानते हो। इतना कहकर वे रथ पर बैठकर चले गये।

इन तीनो ने कहा, इस क्षत्रिय ने हम सबसे बढकर बात की है। अच्छा हो, यदि इसे ब्रह्ममोघ के लिए बुलाये। तब याज्ञवल्क्य ने कहा, हम ब्राह्मण है, यह क्षत्रिय है। इसे यदि जीत भी लेते है तो सच सच हम जीते माने जायेगे। जीतना और न जीतना बराबर ही है किन्तु यदि यह हमे जीत लेगा तो सभी लोग हम लोगों की निन्दा करेगे कि क्षत्रिय ने ब्राह्मणो को ब्रह्मोद्य मे हरा दिया। अतएव ऐसा करना ठीक नही है। सभी ब्राह्मणो ने याज्ञवल्क्य की बात को समझ लिया। याज्ञवल्क्य रथ पर चाढकर जनक के घर पर पहुॅचे याज्ञवल्क्य! क्या तुम अग्निहोत्र जानने आये हो। याज्ञवल्क्य ने कहा, हा सम्राट ऐसा ही है। अन्त मे जनक ने बताया।

प्रातः सांयकालीन आहुतिया हवन करने पर ऊपर की ओरजाती हैं। अन्तरिक्ष मे प्रवेश कर जाती हैं। वे अन्तरिक्ष को ही आहवनीय कर देती हैं। वायु की समिधा सूर्य रश्मियो को निर्मल आहुति बना देती है। अन्तरिक्ष को तृप्त कर देती है। वे वहां से ऊपर उठती हैं। द्युलोक में प्रविष्ट होती हैं। द्युलोक को आहवनीय कर देती है। आदित्य को समिघ और चन्द्रमा को निर्मल आहुति बनाती हैं। वे द्युलोक को तृप्त करती हैं। वहां से पुन लौटती हैं। पृथिवी में प्रवेश करती हैं।

इस खर् को आहवनीय, अग्नि को समिध और औषधियो को निर्मल आहुति बना ली है। इस पृथिवी को तृप्त करती है। वे वहा से भी उठकर पुरूष मे प्रवेश करती है। मुख को आहवनीय जिह्वा को समिधा और अन्न को निर्मल आहुति बनाती है। जो इस रहस्य को जानता हुआ भोजन करने वाला है, उसका अग्निहोत्र सम्यक् रूप से हुत है। वे आहुतिया वहा से भी उठकर स्त्री मे प्रविष्ट होती है। उसकी गोद की आहवनीय श्रोणि को समाधि और रेतस् को निर्मल आहुति बनाती है, स्त्री को तृप्त करती है जो इस रहस्य को जानता हुआ मिथुन क्रिया सम्पन्न करता है, उसका पुत्र लोकातिशायी होता है।

हे याज्ञवल्क्य! यही अग्निहोत्र है। इसके अतिरिक्त अन्य कोई बात बताने को शेष नही रही। इस पर प्रसन्न होकर याज्ञवल्क्य ने जनक को वर दिया। जनक ने कहा, याज्ञवल्क्य तुम्हारे प्रति मेरा प्रश्न स्वेच्छापूर्ण हो। तब से जनक ब्रह्मिष्ठ हो गये।

१०. संवत्सर–मीमांसा: प्रीति और उद्दालक शतपथ (१२/२/२/१४)

यज्ञ की दृष्टि से संवत्सर मे १० दिन अधिक महत्त्व के थे। प्रायणीय, उदयनीय, चतुर्दिश महाव्रत, षष्ठया अभिप्लव, अभिजित, विश्वजित और स्वरसाय। इनके परस्पर अनुप्रवेश से यह संख्या नौ, आठ, सात आदि और अन्त मे एक तक पहुच जाती है।

कौशाम्बी निवासी को सुरिविन्दि उद्दालक आरुणि के पास ब्रह्मचारी के रूप मे निवास करता था। आचार्य ने उससे पूँछा, कुमार तुम्हारे पिता वर्ष में कितने दिन मनाते थे? को सुरिविन्द ने कहा, विराट दस अक्षरों वाला है विराट् ही यज्ञ है। उद्दालक – कुमार! तुम्हारे पिता वर्ष में कितने दिन मनाते थे? कौ०– नव, प्राण नौ हैं। प्राणों से यज्ञ का वितन्वर होता है। उद्दा०– कुमार! तुम्हारे पिता वर्ष मे कितने दिन मनाते थे? कौ०– आठ, गायत्री आठ अक्षरो वाली हैं। यज्ञ गायत्री छन्द वाला है। उद्दा०– कुमार!

तुम्हारे पिता वर्ष मे कितने दिन मनाते थे? कौ०– सात, छन्द सात हैं। छन्दो से यज्ञ का वितन्वर होता है। उद्दा०– कुमार! तुम्हारे पिता वर्ष मे कितने दिन मनाते थे? कौ– छ वर्ष मे छ ऋतुये होती है। सवत्सर ही यज्ञ है। प्रायणीय तथा उदयनीय दोनो समान है।

उद्दालक– कुमार! तुम्हारे पिता वर्ष मे कितने दिन मनाते थे? कौ०– पाच यज्ञ पाच है। वर्ष में ऋतुए भी पाच ही है। सवत्सर ही यज्ञ है। चतुर्विंश महाव्रत दोनो दिन समान है।

उद्दा०– कुमार! तुम्हारे पिता वर्ष मे कितने दिन मनाते थे?

कौ०– चार, पशु चतुष्पद होते है। पशु ही यज्ञ हैं। षष्ठ्या और अभिप्लव समान है।

उद्दा०– कुमार! तुम्हारे पिता वर्ष मे कितने दिन मनाते थे?

कौ०– तीन, छन्द तीन है। तीन ही लोक हैं। यज्ञ तीन सवनो वाला है। अभिजित् और विश्वजित् दोनो दिन समान ही है।

उद्दा०– कुमार! तुम्हारे पिता वर्ष मे कितने दिन मनाते थे?

कौ०– दो पुरुष द्विपाद होता है। पुरुष ही यज्ञ है। स्वर सामान् के दिन समान ही है।

उद्दा०– कुमार! तुम्हारे पिता वर्ष में कितने दिन मनाते थे?

कौ०– एक–एक ही दिन होता है। यह एक दिन सवत्सर ही होता है। यही संवत्सर मीमासा है।

११ दृप्तवाल्मीकि और अजातशत्रु १४/३/१/१

आदित्य, चन्द्र, विद्युत, आकाश, वायु, अग्नि, अप्, आदर्श, शब्द तथा छायामय– व्यस्त पुरूष एव आत्पन्विशिष्ट गुणवान् आत्मस्थ समस्त ब्रह्म की उपासना अविद्यामूलक है, क्योकि कर्तब्य और भोक्तृत्व आदि आत्मा के स्वाभाविक धर्म नही हैं। ये यागादि इन्द्रियो के धर्म है। इसी कारण ये कर्तृत्त्व भोकृत्त्व आदि भाव केवल जागृत अवस्था मे और जागृत वासना के कारण स्वप्न मे भी दिखाई पडते है।

गार्ग्यगोत्रोत्पन दृप्त वाल्मीकि विश्रुत वेदाध्यायी था। उसने का शिराज, अजातशत्रु से कहा, तुम्हे ब्रह्म का उपदेश करू। उस अजातशत्रु ने कहा, इस बात पर मैं आपको सहस्र गाये देता हू।

गार्ग्य ने कहा, "यह जो आदित्य मे पुरूष है, उसी की मैं ब्रह्म रूप मे उपासना करता हूँ। अजातशत्रु ने कहा, नही–नही इसके विषय मे बात मत करो। यह सब का अतिक्रमण करके स्थित है। समस्त भूतों का मस्तिष्क है। राजा है, इस रूप मे इसकी उपासना करता हूं। जो पुरूष इसकी इस प्रकार उपासना करता है, वह सबका अतिक्रमण करके स्थित, समस्त भूतो का मस्तिष्क हैं और वह राजा होता है।"

गार्ग्य नें कहा, यह जो चन्द्रमा मे पुरूष है उसी को मैं ब्रह्म रूप मे उपासना करता हूं। अजातशत्रु बोला, नही नही, इस विषय मे बात न करे। यह महान् पाण्डुरवासी सोम राजा है। इस रूप मे मौ इसकी उपासना करता हू। जो इसकी इस प्रकार उपासना करता है उसके लिए नित्यप्रति सोम सुत और स्तुत रहता है। उसका अन्न क्षीण नही होता है।

गार्ग्य बोला, यह जो विद्युत मे पुरूष है इसी की मैं ब्रह्म रूप में उपासना करता हूं। अजातशत्रु ने कहा, नही नहीं, इस विषय मे बात न करो। इसकी तो मैं तेजस्वी

रूप मे उपासना करता हू। जो इसकी इस प्रकार उपासना करता है, वह तेजस्वी होता, उसकी प्रजा तेजस्विनी होती है

गार्ग्य ने कहा, यह जो आकाश मे पुरूष है उसी की मै ब्रह्म रूप मे उपासना करता हू। अजातशत्रु ने कहा, नही नही, इसके विषय मे बात न करो। मैं इसकी पूर्ण और अपरिवर्तित रूप से उपासना करता हू। जो कोई इसकी इस रूप मे उपासना करता है, वह प्रजाएव पशुओ से भरपूर हो जाता है। इस लोक से उसकी प्रजा का विच्छेद नही होता।

गार्ग्य बोला, यह जो वायु मे पुरूष है, इसकी मैं ब्रह्म रूप से उपासना करता हू। अजातशत्रु ने कहा, नही नही इसके विषय मे बात न करो। इसकी तो मैं इन्द्र, बैकुण्ठ और अपराजिता सेना– इस रूप मे उपासना करता हूं। जो कोई इसकी इस रूप में उपासना करता है वह विजयी, अपराभूत और शत्रुजयी होता है।

गार्ग्य ने कहा, यह जो अग्नि मे पुरूष है इसी की मैं ब्रह्म रूप मे उपासना करता हू। अजातशत्रु ने कहा, नही नही इसके विषय मे बात न करो। इसकी तो मैं विषासहि रूप मे प्रार्थना व उपासना करता हूँ। जो कोई इसकी इस रूप मे उपासना करता है, वह निश्चय ही विषासहि हो जाता है। उसकी प्रजायें भी विषासहि हो जाती हैं।

गार्ग्य ने कहा, यह जो जल मे पुरूष है इसी की मैं ब्रह्म रूप मे उपासना करता हूं। अजातशत्रु ने कहा, नहीं नहीं इसके विषय में बात न करो। इसकी तो मैं प्रतिरूप रूप से उपासना करता हूं, जो कोई इसकी इस रूप में उपासना करता है वह निश्चय ही उसे प्रतिरूपमें प्राप्त करता है, वह उसके पास प्रतिरूपमें ही आता है, अप्रतिरूप मे नहीं। उससे प्रतिरूप पुत्र उत्पन्न होता है।

गार्ग्य ने कहा, यह जो दर्पण मे पुरूष है इसकी मैं ब्रह्म रूप मे उपासना करता हू। अजातशत्रु ने कहा, नही नही इसके विषय मे बात न करो। इसकी तो मैं रोचिष्णु रू मे उपसना करता हू। जो कोई इसकी इस प्रकार उपसना करता है वह निश्चय ही रोचिष्णु होता है, उसकी प्रजा भी रोचिष्णु होती है। उसका जिससे सम्पर्क होता है, उन सबसे बढकर राचिष्णु होता है।

गार्ग्य ने कहा, जाने वाले के पीछे जो यह शब्द उत्पन्न होता है, इसी की मै ब्रह्म रूप मे उपासना करता हू। अजातशत्रु ने कहा, नही नही इसके विषय मे बात न करो। इसकी तो मैसे उपासना करता हू। जो इसकी इस प्रकार उपासना करता है वह इस लोक मे पूर्णायु प्राप्त करता है। उसे प्राण समय से पहले नही छोडता।

गार्ग्य ने कहा, यह जो छायामय पुरूष है इसी की मैं ब्रह्म रूप मे उपासना करता हू। अजातशत्रु ने कहा, नही नही इसके विषय मे बात न करो। इसकी तो मैं मृत्यु रूप से उपासना करता हू। जो इसकी इस रूप मे उपासना करता है, वह इस लोक मे सारी आयु प्राप्त करता है और इसके पास समय से पहले मृत्यु नही आती है।

गार्ग्य ने कहा, यह जो आत्मा मे पुरूष है इसी की मैं ब्रह्म रूप मे उपासना करता हू। अजातशत्रु ने कहा, नही नही इसके विषय में बात न करो। इसकी तो मैं आत्मन्वी रूप मे उपासना करता हूँ। जो इसकी इस रूप मे उपसना करता है, वह निश्चय ही आत्मान्धी होता है। उसकी प्रजा भी आत्मान्वी होती है। तब वह गार्ग्य चुप रह गया।

अजातशत्रु नें कहा, बस क्या इतना ही है, इससे तो ब्रह्म विदित नहीं होता। गार्ग्य ने कहा, हां इतना ही है, मैं तुम्हारे समीप आऊं। अजातशत्रु नें कहा, ब्राह्मण क्षत्रिय के पास इस उद्देश्य से जाय कि यह मुझे ब्रह्म का उपदेश करेगा। यह तो उल्टी

सी बात है तो भी मै तुम्हे इसका ज्ञान कराऊगा ही। तब वह उसका हाथ पकडकर उठ खडा हुआ और वे दोनो सुप्त पुरूष के पास गये।

अजाशत्रु ने सुप्त पुरुष को हे ब्रह्म। हे पाण्डुरवास। हे सोभराजन्। इन नामो से पुकारा। परन्तु वह न उठा। जब उसे हाथ से दबाकर जगाया, तब वह उठ बैठा।

अजातशत्रु ने समझाया, यह जो विज्ञानमय पुरूष है यह जब सोया हुआ था, तब कहां था। और यह कहा से आया? किन्तु गार्ग्य कुछ समझ न सका। अजातशत्रु ने स्पष्ट किया, यह जो विज्ञानमय पुरूष है, जब यह सोया हुआ था, उस समय वह विज्ञान के द्वारा इन प्राणो के विज्ञान को ग्रहण कर, यह जो हृदय के भीतर आकाश है उसमे शयन करताहैं जिस समय यह उन विज्ञानो को ग्रहण करता है। उस समय इस पुरूष का नाम स्वपिति होता है। उस समय प्राण गृहीत रहता है, वाक् गृहीत रहती है, चक्षु गृहीत रहता है, श्रोत्र गृहीत रहता है, और मन भी गृहीत रहता है।

जिस समय यह आत्मा स्वप्न वृति का आचरण करता है। उस समय इसके वे लोक उदित होते हैं वहा भी यह महाराज या महाब्राह्मण होता है अथवा ऊची नीची जातियो को प्राप्त करता है। जिस प्रकार कोई महाराज अपने प्रजाजनो को लेकर अपने देश मे यथेच्छ विचरता है, उसी प्रकार यह प्राणो को ग्रहण कर अपने शरीर मे यथेच्छ विचरता है।

इसके पश्चात जब वह सुषुप्त होता है, जिस समय कि वह किसी के विषय में कुछ नही जानता, उस समय जो हिता नाम की बहत्तर हजार नाडियां हृदय से सम्पूर्ण शरीर मे होकर व्याप्त हैं, उनके द्वारा बुद्धि के साथ जाकर वह शरीर भर में व्याप्त होकर शयन करता है। वह जिस प्रकार कोई बालक अथवा महाराज किंवा महाब्राह्मण

आनन्द की दुखनाशिनी अवस्था को प्राप्त होकर शयन करे, उसी प्रकार शयन करता है।

जिस प्रकार ऊर्णनाभि तन्तुओं पर ऊपर की ओर जाता है, तथा जैसे अग्नि से अनेको छोटी–छोटी चिनगारिया उडती है, उसी प्रकार इस आत्मा से समस्त प्राण, समस्त लोक, समस्त देवगण, और समस्त भूत विविध रूप से उत्पन्न होते हे। सत्य का सत्य यह आत्मा की उपनिषद् है। प्राण ही सत्य है उन्ही का यह सत्य है।

१२. याज्ञवल्क्य–मैत्रेयी सवाद शत० (१४/२/४/१ शत० १४/४/५/१)

ब्रह्म और आत्मा मे अभेद है। आत्मा के लिए ही प्रियता, आत्मज्ञान से सब का ज्ञान सभव है। आत्मा से भिन्न किसी भी वस्तु को देखने मे पराभव है। उसी से सम्पूर्ण भूतो की उत्पत्ति एव उसी मे विलय निहित हैं। अनात्म वस्तुओ की सत्ता तो अज्ञान मे है। जिसकी दृष्टि मे सब कुछ आत्मा ही हो जाता है, उसके लिए कर्ता, करण और क्रिया का सर्वथा अभाव हो जाता है। वहा घ्राण, श्रवण, मनन, ज्ञान सब का अभाव हो जाता है। आत्म तत्व किसी का ज्ञेय नही, अपितु सब का स्वयमेव ही ज्ञाता है।

याज्ञवल्क्य के दो पत्निया थी– मैत्रेयी और कात्यायनी। उनमे से मैत्रेयी, ब्रह्मवादिनी विदुषी और कात्यायनी साधारण स्त्री थी। याज्ञवल्क्य ने सन्यास लेने के समय कहा, मैं इस स्थान (गार्हस्थ्य) से ऊपर (सन्यास आश्रम) मे प्रवेश करने वाला हूं। अत· इस कात्यायनी से तेरा बटवारा कर दू। मैत्रेयी ने कहा, भगवन्! यदि धन से भरपूर यह सम्पूर्ण पृथिवी मेरी हो जाय तो क्या मैं इससे किसी प्रकार अमर हो सकती हू। याज्ञवल्क्य ने कहा, नहीं भोगोपकरण युक्त लोगो का जैसा जीवन होता है, वैसा ही तेरा भी जीवन हो जायेगा। धन से अमृतत्व की आशा तो नहीं। मैत्रेयी ने कहा, जिससे

मै अमर नही हो सकती उसे लेकर मै क्या करूगी? भगवन्! जो कुछ अमृतत्त्व का साधन जानते हो उसे बताये।

याज्ञवल्क्य ने कहा, तुम धन्य हो। तुम पहले भी प्रिया रही हो, इस समय भी प्रियतम बात कह रही हो। अच्छा आ बैठ जा तेरे सामने उसकी व्याख्या करूंगा। मेरे द्वारा कहे गये वाक्यो के अर्थ का चिन्तन करना। उन्होने कहा, अरी मैत्रेयी। यह निश्चय है कि पति के प्रयोजन के लिए पति प्रिय नही होता, अपने ही प्रयोजन के लिए पति प्रिय होता है। स्त्री के प्रयोजन के लिए स्त्री प्रिय नही होती। अपने ही प्रयोजन के लिए स्त्री प्रिय होती है। पुत्र के प्रयोजन के लिए पुत्र प्रिय नही होते अपने ही प्रयोजन के लिए पुत्र प्रिय होते हैं। इसी प्रकार धन, ब्राह्मण, क्षत्रिय, लोक, देव प्राणी, प्रजा ये सब पदार्थ प्रिय नही होते, अपितु अपने लिए ही प्रिय होते हैं। अरी मैत्रेयी। यह आत्मा ही दर्शनीय, श्रवणीय, मननीय और ध्यायनीय है। मैत्रेयि इस आत्मा के ही दर्शन, श्रवण, मनन, ध्यान और विज्ञान से सब का ज्ञान हो जाता है।

ब्राह्मण जाति उसे परास्त कर देती है जो उसे आत्मा से भिन्न मानता है। क्षत्रिय जाति उसे परास्त कर देती है जो क्षत्रिय जाति को आत्मा से भिन्न मानता है। लोक उसे परास्त कर देता है जो लोकों को आत्मा से भिन्न देखता है। देवगण उसे परास्त कर देते हैं, जो देवों को आत्मा से भिन्न मानता है उसे भूतगण उसे परास्त कर देते हैं, जो भूतों को आत्मा से भिन्न देखता है। सभी उसे परास्त कर देते हैं, जो सब को आत्मा से भिन्न देखता है। दृष्टान्त यह है कि जिसप्रकार दुन्दुभि वादन किये जाने पर उसके बाह्य शब्दो को कोई ग्रहण नही कर सकता, किन्तु दुन्दुभि के आघात को ग्रहण करने से ही उसके शब्द को भी ग्रहण कर लिया जाता है। एक दूसरा दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई बजायी जाती हुई शख के बाह्य शब्दों को ग्रहण नहीं कर सकता किन्तु शंख के बजाने से उसके शब्द का भी ग्रहण हो जाता है। तृतीय दृष्टान्त भी है,

जैसे कोई बजायी जाती हुई वीणा के बाह्य शब्द को ग्रहण नही कर पाता, किन्तु वीणा या वीणा के स्वर को ग्रहण करने या बजाने पर उस शब्द का ग्रहण भी हो जाता है। चौथा दृष्टान्त है– जैसे गीले ईधन के आधान वाली, अग्नि से पृथक धुआ निकलता है। हे मैत्रेयी इसी प्रकार ये जो ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद इतिहास पुराण, विद्या, उपनिषद, श्लोक, सूत्र, मन्त्रविवरण और अर्थवाद है, वे इस महत् के ही निश्वास है।

जिस प्रकार समुद्र समस्त जलो का अयन है उसी प्रकार त्वक् समस्त स्पर्शों का एक अयन है। उसी प्रकार समस्त स्पर्शों का जिह्वा एक अयन है। इसी प्रकार समस्त रूपो का चक्षु एक अयन है। इसी प्रकार समस्त शब्दो का श्रौत्र एक अयन है। इसी प्रकार सकल्पो का मन एक अयन है। इसी प्रकार समस्त विद्याओ का ह्दय एक अयन है, इसी प्रकार समस्त आनन्दों का उपस्थ एक अयन है और इसी प्रकार समस्त आनन्दो का उपस्थ एक अयन है। इसी प्रकार समस्त विसर्गों का वायु एक अयन है। इसी प्रकार समस्त मार्गों का चरण एक अयन है, और इसी प्रकार समस्त वेदो का वाक् एक अयन है। जिस प्रकार समस्त नागों का चरण एक अयन है, और इसी प्रकार समस्त वेदो का वाक् एक अयन है। जिस प्रकार जल मे डाला हुआ नमक जल में ही विलीन हो जाता है, उसे जल से पृथक करने में कोई सफल नहीं हो सकता, हा वहा से भी जल लिया जाय तो वह नमकीन प्राप्त होगा। हे मैत्रेयी! उसी प्रकार यह महद्भूत विज्ञानघन ही हैं यह इन भूतो के साथ प्रकट होकर इन्ही के साथ विनाश को प्राप्त होता है। देहेन्द्रिय भाव से मुक्त होने पर उसकी कोई सज्ञा नहीं होती। हे मैत्रेयी! ऐसा मैं तुझसे कहता हूं।– ऐसा याज्ञवल्क्य ने कहा।

मैत्रेयी ने कहा, मृत्यु के अनन्तर कोई सज्ञा नहीं रहती। ऐसा कहकर भगवान् ने मुझे मोह में डाल दिया है। याज्ञवल्क्य ने कहा, है मैत्रेयी! मैं मोह का उपदेश नहीं करता। अरी! यह तो उसका विज्ञान कराने के लिए पर्याप्त है।

जहॉ द्वैत होता हे, वहीं अन्य अन्य को सूघता है। अन्य अन्य को सुनता है, अन्य अन्य का अभिवादन करता है। अन्य अन्य का मनन करता है, तथा अन्य को जानता है। किन्तु जहां इसके लिए आत्मा ही सब कुछ हो गया है, वहा किसके द्वारा किसे सूघे, किसके द्वारा किसे देखे, किसके द्वारा किसे सुने, किसके द्वारा किसका अभिवादन करे अथवा किसके द्वारा किए जाने। जिसके द्वारा इन सब को जानता हू, उसे किसके द्वारा जाना जा सकता है। हे मैत्रेयी! विज्ञाता को किसके द्वारा जाने। वह किसका ज्ञेय हो सकता है। ज्ञाता को ज्ञेय नही बनाया जा सकता है।

१३. याज्ञवल्क्य एव अश्वल

यज्ञ विविध हैं– अधिदेव, अध्यात्म और ऋत्विकों के द्वारा सोमपान प्रतीक यज्ञ या अधिमूत यज्ञ। अधिदैव यज्ञ मे अग्नि, आदित्य, वायु और चन्द्रमा अध्यात्म में वाक्, चक्षु, प्राण, एवं मन के रूप व्यक्त हुए हैं। ये ही अधिभूत मे क्रमश होता अध्वर्यु , उद्‌गाता और ब्रह्मा है। अध्यात्म और अधिभूत मे दर्शपूर्णमासादि सांग होने के कारण बन्धनकारी है। इन्हे अधिदेव अर्थ में ग्रहण करने पर आदित्यादि के प्रति दिन रातादि की सत्ता का अभाव होने से काल लक्षण मृत्यु एवं अध्यात्म अधिभूत अर्थका निषेध कर देने पर यजमान कर्मलक्षण मृत्यु से मुक्ति पा लेता है। अतएव केवल ज्ञान युक्त कर्म ही भोगकारी है।

विदेह राज जनक ने एक विशाल दक्षिणा वाले यज्ञ द्वारा यजन किया। उसमें कुरू और पांचाल देश के ब्राह्मण एकत्र हुए। राजा जनक को यह जानने की इच्छा हुई कि इन ब्राह्मणो में अनूचानतम कौन हैं। इसलिए उसने एक सहस्र गायें गौशाला मेंरोक लीं। उनमें से प्रत्येक के सींगों में दश दश पाद सुवर्ण बंधे हुए थे। उसने उनसे कहा, पूज्य ब्राह्मणों! आप लोगों में से जो ब्रह्मिष्ठ हो, वह इन गायों को ले जाए। किन्तु उन

ब्राह्मणो का साहस न हुआ। तब याज्ञवल्क्य ने अपने ही एक ब्रह्मचारी से कहा, हे सौम्य! सामश्रवा! तू इन्हे ले जा। तब वह इन्हें ले चला। इससे वे ब्राह्मण यह हम सब में अपने को ब्रह्मिष्ठ कैसे कहता है, इस प्रकार कहते हुए क्रुद्ध हो गये।

विदेह राजा जनक का होता अश्वल था। उसने याज्ञवल्क्य से पूछा, याज्ञवल्क्य! हम सब मे क्या तुम ही ब्रह्मिष्ठ हो। उसने कहा ब्रह्मिष्ठ को तो नमस्कार करते है, हम तो गायो की ही इच्छा वाले है जैसा ब्राह्माण्ड मे है वैसा ही मनुष्य शरीर मे भी घटित हो रहा है। मनुष्य शरीर मे वाक्, चक्षु, प्राण, और मन क्रमश· ब्रह्माण्ड पुरुषगत अग्नि, आदित्य वायु, चन्द्रमा के प्रतिनिधि ही हैं। इसी प्रकार अध्वर्यु, उदगाता, और ब्रह्मा भी यज्ञ पुरुष के क्रमश वाक, चक्षु, प्राण, मन, स्थानीय है। इन्हीं मे विविध कर्मो से मनुष्य मृत्यु आदि का अतिक्रमण कर लेता है। अज्ञान जनित आसक्ति के स्थान को छोड स्वर्गादि की प्राप्ति करता है।

हे याज्ञवल्क्य ! अश्वल ने कहा, यह सब जो मृत्यु से व्याप्त है, मृत्यु द्वारा स्वाधीन किया हुआ है, उस मृत्यु की व्याप्ति का यजमान किस साधन से अतिक्रमण करता है, याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया, यजमान होता ऋत्विक रूपाग्नि से और वाक द्वारा उसका अतिक्रमण कर सकता है। वाक ही यज्ञ मे प्रमुख होता है। यह जो वाक् है यही अग्नि है, यही होता है, यही मुक्ति एव अतिमुक्ति है।

अश्वल ने कहा, है याज्ञवल्क्य! यह जो कुछ है सब दिन और रात्रि से व्याप्त है। सब दिन एव रात्रि के अधीन है तब भला किस साधन के द्वारा यजमान दिन एव रात्रि के व्याप्ति का अतिक्रमण कर सकता है। याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया, अध्वर्यु, ऋत्विक् और चक्षुरूप आदित्य के द्वारा। अध्वर्यु यज्ञ का चक्षु ही है। अतः यह जो चक्षु है आदित्य है। वह अध्वर्यु है,वही मुक्ति और वही अतिमुक्ति भी है। अश्वल ने कहा, है

याज्ञवल्क्य! यह जो कुछ है वह पूर्वापर पक्ष से व्याप्त है। सब कुछ पूर्वापर पक्ष द्वारा वशीभूत है। किस उपाय से यजमान पूर्वपक्ष और अपरपक्ष की व्याप्ति सेस पार होकर मुक्त होताहै। याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया, ऋत्विक से और वायुरुप प्राण से क्योकि उद्गाता यज्ञ का प्राण ही है तथा यह जो प्राण है वही वायु है वही उद्गाता है वही मुक्ति है, और अतिमुक्ति है।

अश्वल ने कहा, हे याज्ञवल्क्य! यह जो अन्तरिक्ष है, वह निरालम्ब सा है। अत यजमान किस आलम्बन से स्वर्गलोक मे चढता है। याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया, ब्रह्मा ऋत्विक के द्वारा और मन रुप चन्द्रमा से। ब्रह्मा यज्ञ का मन ही है। यह जो मन है, यही चन्द्रमा है, वह ब्रह्मा है, वह मुक्ति है, और वही अतिमुक्ति है।

अश्वबल ने कहा, हे याज्ञवल्क्य! आज कितनी ऋचाओ के द्वारा होता इस यज्ञ में शस्त्रशसन करेगा? याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया, तीन के द्वारा। अश्वबल, वे तीन कौन सी है? याज्ञवल्क्य, पुरोनुवाक्या, याज्या और शस्या।

अश्वबल ने कहा, हे याज्ञवल्क्य! आज इस यज्ञ मे अध्वर्यु कितनी आहुतिया देगा? याज्ञवल्क्य, तीन। अश्वबल, ये तीन कौन–कौन सी हैं? याज्ञवल्क्य, जो होम की जाने पर प्रज्वलित होती है, जो होम की जाने पर शब्द करती है, जो होम की जाने पर पृथ्वी में लीन हो जाती है। अश्वबल, इसके द्वारा यजमान किसे जीतता है? याज्ञवल्क्य, जो होम किये जाने पर प्रज्वलित की जाती है, उनसे यजमान देवलोक को ही जीत लेता है, क्योंकि देवलोक मानो देदीप्यमान हो रहा है। जो होम किये जाने पर अत्यन्त शब्द करती है, उनसे वह पितृ लोक को ही जीत लेता है, क्योंकि पितृ लोक अत्यन्त शब्द करने वाला है। जो होम की जाने पर पृथ्वी में लीन हो जाती है, उनसे मनुष्य लोक को ही जीतता है, क्योकि मनुष्य लोक अधोवर्ती है।

हे याज्ञवल्क्य! अश्वबल ने कहा, आज यह ब्रह्मा यज्ञ मे दक्षिण की ओर बैठकर कितने सूर्य देवताओ द्वारा यज्ञ की रक्षा करता है? याज्ञवल्क्य, एक के द्वारा। अश्वबल, वह एक देवता कौन है। याज्ञवल्क्य, वह मन ही है। मन अनन्त है और विश्वदेव भी अनन्त है, अत उस मन से यजमान अनन्त लोको को जीत लेता है।

हे याज्ञवल्क्य! अश्वबल ने कहा, आज इससे यज्ञ मे उद्गाता कितनी ऋचाओ का स्तवन करेगा। याज्ञवल्क्य – तीनो का । अश्वबल– वे तीन कौन सी हैं? याज्ञवल्क्य – पुरोनुवाक्या, याज्या और शस्या। अश्वबल, इनमे से जो शरीर के अन्दर रहने वाली है। याज्ञवल्क्य– प्राण ही पुरोनुवाक्या है, अपान याज्या है और व्यान शस्या है। अश्वबल , इनसे यजमान किन पर विजय प्राप्त करता है। याज्ञवल्क्य– पुरोनुवाक्या से पृथ्वी लोक पर याज्या से अन्तरिक्ष लोक पर और शस्या से द्युलोक पर विजय प्राप्त करता है। इसके पश्चात् अश्वबल चुप हो गया।

१४. याज्ञवल्क्य और जरत्कारब आर्त्तभाग (१४/३/३/१)

इन्द्रिय और उसके विषय ग्रह और अतिग्रह रूप हैं। ये बन्धन हैं अतएव मृत्युरूप हैं। इस सप्रयोजक बन्धन से मुक्त हुआ पुरुष मुक्त हो जाता है और इससे बधा होने पर वह ससार को प्राप्त होता है, वही मृत्यु हैं इस मृत्यु का भी मृत्यु है। जो मुक्त है उसका कही गमन नही होता, क्योकि वह तो प्रदीप निर्वाण के समान सब का उच्छेद हो जाने पर आकृति से सबद्ध होने से केवल नाम मात्र अवशिष्ट रह जाता है। वह पुरूष अच्छे कार्य किये रहने पर पुण्य यानि और बुरे कर्म किये रहने पर पाप योनि मे उत्पन्न होता है।

जरत्कारव आर्तभाग ने कहा, याज्ञवल्क्य! ग्रह कितने है और अतिग्रह कितने है। याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया, आठ ग्रह है आठ अतिग्रह है। आर्तभाग, जो आठ ग्रह और आठ अतिग्रह है, वे कौन हैं?

याज्ञवल्क्य ने स्पष्ट किया, कि प्राण ही ग्रह है वह अपान रूप अतिग्रह से गृहीत है, क्योकि प्राण अपान से ही गन्धो को सूघता है। बाक् ही ग्रह है, वा नाम रूप अतिग्रह से गृहीत है, क्योकि प्राणी वाक् से ही नामो का उच्चारण करता है। जिह्वा ही ग्रह है। वह रस रूप अतिग्रह से गृहीत है क्योकि प्राणी जिह्वा से रसो को विशेष रूप से जान पाता है। चक्षु ही ग्रह है, वह रूप अतिग्रह से गृहीत है क्योकि प्राणी चक्षु से ही रूपों को देखता है श्रोत्र ही ग्रह है। वह शब्द रूप अतिग्रह से गृहीत है क्योकि प्राणी श्रोत्र से ही शब्दो को सुनता है। मन ही ग्रह है, वह काम रूप अतिग्रह से गृहीत है, क्योकि प्राणी मन से ही कामो की कामना करता है। हस्त ही ग्रह हैं। वे कर्मरूप अतिग्रह से गृहीत हैं, प्राणी हाथ से ही कर्म करता है। त्वक् ही ग्रह है, यह स्पर्श अतिग्रह से गृहीत है क्योकि त्वक् द्वारा ही स्पर्श का ज्ञान कर पाता है। इस प्रकार से आठ ग्रह और आठ अतिग्रह है।

आर्तभाग ने कहा, याज्ञवल्क्य! यह जो कुछ भी है, वह सब मृत्यु का रवाध है, वह देवता कौन है, जिसका रवाध मृत्यु है? याज्ञ०– अग्नि ही मृत्यु है, वह जल का खाद्य है। याज्ञवल्क्य! आर्तभाग ने पूछा, जिस समय यह मनुष्य मरता है उस समय उसके प्राणो का उत्क्रमण होता है या नहीं। याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया, नही नहीं, वे यहां ही लीन हो जाते है। वह फूल जाता है और वायु से पूर्ण हुआ ही मृत होकर पडा रहता है।

आर्त्तभाग ने कहा, याज्ञवल्क्य! जिस समय यह पुरूष मरता है उसे उस समय क्या नही छोडता? याज्ञवल्क्य, नाम नही छोडता, नाम अनन्त ही है, विश्वेदेव भी अनन्त ही है। इस आनन्त्यदर्शन के द्वारा वह अनन्त लोक को ही जीत लेता है।

आर्तभाग ने कहा, याज्ञवल्क्य! जिस समय यह मृत पुरूष वाक् अग्नि मे लीन हो जाता है तथा प्राण वायु मे, चक्षु, आदित्य में, मन चन्द्रमा में, श्रोत्र दिशा मे, शरीर पृथिवी मे, हृदयाकाश, भूताकाश, मे लोग औषधियो मे और केश वनस्पतियो मे लीन हो जाता है। तथा लोहित एव वीर्य जल मे स्थापित हो जाते हे, उस समय पुरुष कहा रहता है?

याज्ञवल्क्य ने कहा, है प्रिय दर्शन आर्तभाग। तू मुझे अपना हाथ पकडा, हम दोनो ही इस प्रश्न का उत्तर दे। यह प्रश्न जन समुदाय मे किये जाने योग्य नही, तब उन दोनो ने उठकर विचार किया। उन्होने जो कुछ कहा तथा जिसकी प्रशसा की वह कर्म ही था। पुरूष पुण्य कर्म से पुण्यवान् और पाप कर्म से पापवान् होता है। अब जरप्कारव आर्तभाग चुप हो गया।

१५. याज्ञवल्क्य और भुज्यु लाट्यायनि (१४/३/३/१)

मोक्ष का आरम्भ नही होता, वह किसी का कार्य भी नहीं है। वह तो बधन का ध्वंसमात्र है। बन्धन अविद्या है। अविद्या का कर्म से नाश असभव है, अतएव ज्ञान युक्त कर्म भी मोक्ष का कारण नहीं बन सकता। कर्मों का फल तो ससारत्व मात्र है।

याज्ञवल्क्य ने भुज्युलाट्यायनि ने पूछा, याज्ञवल्क्य। हम व्रत का आचरण करते हुए भद्रदेश मे घूम रहे थे कि पतजलि काप्य के घर पहुंचे। उसकी पुत्री गन्धर्व से गृहीत थी। उसने उससे पूछा, तू कौन है? वह बोला अगिरस सुधन्वा हूं।

याज्ञवल्क्य ने कहा, उस गन्धर्व ने निश्चय ही यह कहा था कि वे वहा चले गये जहा अश्वमेध यज्ञ करने वाले जाते हे। भुज्यु अश्वमेध याजी कहा जाते है? याज्ञ०– यह लोक ३२ देवरथाहूय है, उसे चारो ओर से दूनी पृथिवी घेरे हुए है। उस पृथिवी को सब ओर से दूना समुद्र घेरे हुए है। जितनी पतली छुरे की धार, जितना सूक्ष्म मक्खी का पख होता है, उतना उन अण्ड कपोलो के मध्य मे आकाश है। इन्द्र (चित्याग्नि) ने पक्षी होकर पारिक्षितो को वायु को दिया। वायु उन्हे अपने स्वरूप मे स्थापित कर रखा है। वहा ले गया, जहा अश्वमेधयाजी रहते हैं इस प्रकार उस गन्धर्व ने वायु की ही प्रशसा की थी। अत वायु ही व्यष्टि है और वायु ही समष्टि है। जो ऐसा जानता है वह पुनर्मृत्यु को जीत लेता है। तब भुज्यु लाट्यायनि चुप हो गया।

१६. याज्ञवल्क्य – उषस्त सवाद (१४/३/४/१)

यह आत्मा सर्वान्तर है, विज्ञानमय है, इसी से सारे प्राण अनुप्राणित है। यह चक्षु श्रौत्रादि का अविषय भूत है। वह दृष्टि का भी द्रष्टा, श्रुति का भी श्रोता, मति का भी मन्ता, विज्ञप्ति का भी विज्ञाता है। इससे भिन्न सब अति है।

याज्ञवल्क्य से उषस्त चाकायण ने पूछा, हे याज्ञवल्क्य। जो साक्षात् अपरोक्ष ब्रह्म और सर्वान्तरात्मा है उसकी मेरे प्रति, व्याख्या करो। याज्ञवल्क्य ने कहा, यह तेरा आत्मा ही सर्वान्तर है। उषस्त, याज्ञवल्क्य। यह सर्वान्तर कौन सा है, याज्ञ०– जो प्राण से प्राणक्रिया करता है वह तेरा आत्मा सर्वान्तर है, जो व्यान से व्यान क्रिया करता है, तेरा आत्मा सर्वान्तर है। यह तेरा आत्मा सर्वान्तर है।

उषस्तचाक्रयण ने कहा, जिस प्रकार कोई गौ और अश्व बताने का संकल्प करके धावनरूप लिग दिखाकर कहे कि यह जो चलता है गौ है जो दौडता है घोडा है, उसी प्रकार तुम्हारा ब्रह्मोपदेश है। अत. साक्षात् अपरोक्षब्रह्म और सर्वान्तरात्मा का

स्पष्ट उपदेश करो। याज्ञवल्क्य यह तेरा आत्मा सर्वान्तर है। उषस्त, याज्ञवल्क्य। सर्वान्तर कौन है? याज्ञ०— तुम दृष्टि के द्रष्टा को नही देख सकते, श्रुति के श्रोता को नही सुन सकते मति के मत्ता का मनन नही कर सकते। विज्ञप्ति के विज्ञाता को नही जान सकते। तुम्हारा यह आत्मा सर्वान्तर है। इससे भिन्न वस्तु विनाशशील है। तब उषस्त चाक्रायण चुप रह गया।

१७. याज्ञवल्क्य – कहोल संवाद (१४/३/५/१)

आत्मा ही ब्रह्म है। वह शरीर के धर्मो से रहित है। शोक, मोह, जरा, मृत्यु आदि शरीर के धर्म हैं, आत्मा के नही, जो पुत्र, वित्त, एव लोकैषणाओं से ऊपर उठकर आत्मदर्शन कर लेता है। वह ब्रह्मरूप ही हो जाता है।

याज्ञवल्क्य से कौषीतकेय कहोल ने पूछा, याज्ञवल्क्य। जो भी साक्षात् अपरोक्ष ब्रह्म और सर्वान्तरात्मा है। उसकी तुम मेरे प्रति व्याख्या करो। याज्ञ०— यह तुम्हारी आत्मा सर्वान्तर है। कहोल, याज्ञवल्क्य। यह बताओं कि सर्वान्तर कौन है? याज्ञ०— जो क्षुधापिपासा, शोक, मोह, जरा, और मृत्यु से परे है, उस इस आत्मा को जानकर ब्राह्मणपुत्रैषणा वित्तैषणा, लौकैषण से रहित हो भिक्षाचरण करते हैं वही वित्तैषणा है और जो वित्तैषणा है और जो वित्तैषणा है वही लोकैषणा है। ये दोनों ही साध्य और साधनेच्छायें एषणायें ही हैं। अत. ब्राह्मण पूर्णतया पाडित्य का सम्पादन कर आत्मज्ञान रूप बल से स्थित रहने की इच्छा करे फिर पाण्डित्य को पूर्णतया प्राप्त कर वह मुनि होता है। मौन और अमौन का पूर्णतया सम्पादन करके ब्राह्मण कृतकृत्य होता है। वह किस प्रकार ब्राह्मण होता है? जिस प्रकार भी हो ऐसा ही ब्राह्मण होता है। इससे भिन्न और सब नाश्वान है। यह सुनकर कौषीतकेय कहोल चुप हो गया।

१८. याज्ञवल्क्य और वाचवतवी गार्गी (१४/३/६/१)

पृथिवी से लेकर आकाश पर्यन्त सम्पूर्ण भूत अन्तर्वहिर्भाव से स्थित है। उनमे से जो बाह्य भूत है, उसे जानकर निराकरण करते हुए, जो निरूपाधिक साक्षात्, सर्वान्तर मुख्य आत्मा है, उसका यहा उपदेश है।

याज्ञवल्क्य से वाचवतवी गार्गी ने पूछा, याज्ञवल्क्य। यह जो कुछ है सब जले मे ओत–प्रोत है किन्तु जल किसमें ओत–प्रोत है। याज्ञ०– वायु मे गार्गी, वायु किसमे ओत–प्रोत है? याज्ञ०– अन्तरिक्ष लोको मे।

गार्गी– अन्तरिक्ष किसमे ओतप्रोत हैं? याज्ञ० गन्धर्व लोको मे।

गार्गी– गन्धर्वलोक किसमे ओतप्रोत हैं? याज्ञ० आदित्य लोको मे।

गार्गी– आदित्यलोक किसमे ओतप्रोत है? याज्ञ० चन्द्र लोको मे।

गार्गी– चन्द्रलोक ंकिसमे ओतप्रोत है? याज्ञ०नक्षत्रलोकों मे ।

गार्गी– नक्षत्रलोक किसमे ओतप्रोत हैं? याज्ञ० देवलोको मे।

गार्गी– देवलोक किसमे ओतप्रोत हैं? याज्ञ० इन्द्रलोक मे।

गार्गी– इन्द्रलोक किसमे ओतप्रोत हैं? याज्ञ० प्रजापति लोक में।

गार्गी– प्रजापति लोक किसमे ओतप्रोत हैं? याज्ञ० ब्रह्मलोक मे।

गार्गी– ब्रह्मलोक किसमे ओतप्रोत हैं? इस पर याज्ञ० ने कहा, हे गार्गी अति प्रश्न मत कर। तेरा मस्तक न गिर जाये। जिसके विषय मे अतिप्रश्न नहीं करना चाहिए उसके विषय में तू अति प्रश्न कर रही है। तू अति प्रश्न मत कर। तब वाचवतवी गार्गी चुप हो गयी।

१६. याज्ञवल्क्य और उद्दालक आरूणि (१४/३/७)

वायु रूप सूत्र के द्वारा यह लोक, परलोक और सम्पूर्णभूत सग्रहीत है। इस सूत्र का नियन्ता अन्तर्यामी अमृत है, जो पृथिवी, अप्, अग्नि, अन्तरिक्षवायु द्युलोक, आदित्य, दिक्, चन्द्रतारक, आकाश, तम तेज, भूत तथा भूतगत प्राण, वाक्, चक्षु, श्रोत्र, मन त्वक्, विज्ञान एव रेतस् आदि मे व्याप्त है। ये सब जिसके शरीर है जिसे ये सब नही जानते है, और इन सब का नियन्ता है, वह आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। अदृष्ट, अश्रुत, अमृत, अविज्ञेय होकर भी सबका द्रष्टा, सबका श्रौता, मन्ता और विज्ञाता है।

याज्ञवल्क्य से आरूणि उद्दालक ने पूछा, याज्ञवल्क्य। हम मद्रदेश में यज्ञशास्त्र का अध्ययन करते हुए काप्य पतजल के घर मे रहते थे। उसकी भार्या गन्धर्वगृहीत थी। हमने उससे पूछा, तुम कौन हो? उसने कहा, मै आधर्वकबन्ध हू। उस गन्धर्व ने काप्य पतजल और याज्ञिको से पूछा, काप्य। क्या तुम उस सूत्र को जानते हो जिसके द्वारा यह लोक और परलोक साथ ही सारे भूत ग्रथित है। तब काप्य पतजल ने कहा, भगवन्। मै उसे नही जानता। उसने फिर पूछा, काप्य। क्या तुम उस अन्तर्यामी को जानते हो, जो इस लोक, परलोक और समस्त भूतो को भीतर से नियमित करता है। काप्य ने उत्तर दिया, भगवन्। मैं उसे नही जानता। उस गन्धर्व ने समझाया, काप्य। जो कोई उस सूत्र और उस अन्तर्यामी को जानता है, वह ब्रह्मवेत्ता है, वह देववेत्ता है, वह भूतवेत्ता है, आत्मवेत्ता और सर्ववेत्ता है।

इसके पश्चात् गन्धर्व ने उन सबसे सूत्र और अन्तर्यामी को बताया। उसे मैं जानता हूं। हे याज्ञवल्क्य। यदि उस सूत्र और अन्तर्यामी को न जानने वाले होकर ब्रह्मवेत्ता की स्वभूत गायों को लेकर जाने पर तुम्हारा मस्तक गिर पडेगा। याज्ञवल्क्य ने कहा, हे गौतम। मैं उस अन्तर्यामी को जानता हू। आरूणि, ऐसा तो कोई भी कह सकता है। यदि जानते हो तो बताओ।

याज्ञवल्क्य ने कहा, गौतम! वायु ही वह सूत्र है, वायु रूप सूत्र के द्वारा लोक, परलोक और सारे के सारे प्राणी ग्रथित हैं। इसीलिए मृत व्यक्ति के लिए कहते हैं कि इसके अग विस्रस्त हो गये हैं। आरुणि ने अनुमोदन किया, ठीक है, उस अन्तर्यामी को बताओ। याज्ञवल्क्य, जो पृथ्वी मे रहने वाल पृथ्वी के भीतर है, पथ्वी उसे नही जानती, जिसका पृथ्वी शरीर है, पृथ्वी के अन्दर रहकर इसका नियमन करता है, यह तुम्हारा आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। जो जल मेंरहने वाला जल के भीतर है, जिसे जल नही मानता , जल जिसका शरीर है और जो भीतर रहकर जल का नियमन करता है, वह तुम्हारा आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। जो अग्नि में रहने वाला अग्नि के भीतर रहता है। अग्नि जिसे नहीं जानता। अग्नि जिसका शरीर है, और अग्नि के भीतर रहकर उसका नियमन करता है। वह तुम्हारा आत्मा अन्तर्यामी है। जो अन्तरिक्ष मे रहने वाला अन्तरिक्ष है भीतर है, जिसे अन्तरिक्ष नहीं जानता। अन्तरिक्ष जिसका शरीर है और जो भीतर रहकर अन्तरिक्ष का नियमन करता है, वह तुम्हारा आत्मा अन्तर्यामी अमृत है।

जो द्युलोक में रहने वाला द्युलोक के भीतर है जिसे द्युलोक नही जानता, द्युलोक जिसका शरीर है, और जो भीतर रहकर द्युलोक का नियमन करता है, वह तुम्हारा आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। जो आदित्य में रहने वाला आदित्य के भीतर है जिसे आदित्य नहीं जानता, आदित्य जिसका शरीर है जो भीतर रहकर आदित्य का नियमन करता है, वह तुम्हारा आत्मा अन्तर्यामी अमृत है जिस दिशाओं में रहने वाला दिशाओं के भीतर है, दिशायें जिसे नहीं जानती, जो भीतर रहकर दिशाओं का नियमन करता है,वह आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। जो चन्द्रमा और तारों मे रहने वाला, चन्द्रमा और तारो के भीतर रहता है, जिसे चन्द्रमा और तारागण नहीं जानते। चन्द्रमा और तारागण जिसकी शरीर हैं, भीतर रहकर जो इनका नियमन करता है, वह आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। जो आकाश में रहने वाला आकाश के भीतर रहता है, जिसे

आकाश नही जानता, आकाश जिसका शरीर है और जो भीतर रहकर आकाश का नियमन करता है, वह तुम्हारा आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। जो तम मे रहने वाला तम के भीतर है, तम जिसे नही जानता, तम जिसका शरीर है, जो भीतर रहकर तम का नियमन करता है, वह तुम्हारा आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। जो तेज मे रहने वाला तेज के भीतर है, जिसे तेज नही जानता, तेज जिसका शरीर है और जो भीतर रहकर तेज का नियमन करता है, वह तुम्हारा आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। यह अधिदैवत दर्शन है।

जो समस्त भूतों मे स्थित रहने वाला समस्त भूतो के भीतर है जिसे समस्त भूत नही जानते, समस्त भूत जिसके शरीर है, और जो भीतर रहकर समस्त भूतो का नियमन करता है, वह तुम्हारा आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। अधिभूत और अध्यात्म दर्शन का प्रत्याख्यान कर रहा हू। जो प्राण मे रहने वाला प्राण के भीतर रहता है, प्राण जिसे नही जानता, प्राण जिसका शरीर है, प्राण के भीतर रहकर नियमन करता है। वह तुम्हारा आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। जो वाणी मे रहने वाला वाणी के भीतर है, वाणी जिसे नही जानती, वाणी जिसका शरीर है और जो भीतर रहकर वाणी का नियमन करता है, वह तुम्हारा आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। जो नेत्र के भीतर रहने वाला है किन्तु नेत्र उसे नही जानता, नेत्र जिसका शरीर है भीतर रहकर जो नेत्र का नियमन करता है, वह आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। जो श्रोत्र के भीतर रहने वाला है किन्तु श्रोत्र उसे नही जानता, श्रोत्र जिसका शरीर है भीतर रहकर जो श्रोत्र का नियमन करता है, वह आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। जो मन के भीतर रहने वाला है किन्तु मन उसे नहीं जानता, मन जिसका शरीर है भीतर रहकर जो मन का नियमन करता है, वह आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। जो विज्ञान के भीतर रहने वाला है किन्तु विज्ञान उसे नहीं जानता, विज्ञान जिसका शरीर है भीतर रहकर जो विज्ञान का नियमन करता है, वह आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। भीतर रहकर जो नियमन करता है, वह आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। जो वीर्य

मे रहने वाल वीर्य के भीतर है जिसे वीर्य नही जानता वीर्य जिसका शरीर है, जो वीर्य के भीतर रहकर वीर्य का नियमन करता है, वह तुम्हारा आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। वह दिखाई नही देता। किन्तु स्वय द्रष्टा है। जो सुनायी नही पडता स्वय सुनता है, मनन का विषय नही होता, स्वय मनन करता है। विशिष्ट रूप मे ज्ञात नही होता स्वय विशिष्ट ज्ञाता है। यह तुम्हारा आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। इससे भिन्न जो भी है वह विनाशशील है। यह सुनकर आरूणि उद्दालक चुप हो गया।

२०. याज्ञवल्क्य और गार्गी (१४/३/८/१)

द्युलोक और पृथिवीलोक के ऊपर नीचे एव मध्य मे व्याप्त स्वय भी जो द्युलोक पृथिवी लोक रूप ही है, जिसे भूत भुवत और भविष्यत् कहते हैं, वह आकाश मे ओत–प्रोत है। यह आकाश तत्व अक्षर, अस्थल, अह्रस्व, अदीर्घ, अलोहित, अस्नेह, अच्छाय, अतम, अवायु, अनाकाश, असंग जरस्, अचक्षु, अश्रौत्र, अवाक्, अतेज, अप्राण, अमुख, अमाप, अनन्तर और अबाह्य है। इसी के शासन मे सारी प्राकृतिक शक्तिया ऋत का अनुगमन करती है।

बहुत से लोगो के पूछ लेने पर वाचवतवी गार्गी बोलीं, पूज्य ब्राह्मणों। अब मैं इनसे दो प्रश्न करूगी यदि यह मेरे उन दोनो प्रश्नो का उत्तर दे देगे तो हममे से कोई भी इन्हे बाद में नही जीत पायेगा। ब्राह्मणो ने कहा, पूछो।

गार्गी ने पूछा, याज्ञवल्क्य ! जिस समय काशी या विदेह का रहने वाला कोई वीर वंशज प्रत्यंचा हीन धनुष पर प्रत्यचा चढाकर, शत्रुओं का अत्यन्त सहार करने वाले दो वाणो वाले धनुष को हांथ मे लेकर खडा हो जाय, उसी प्रकार दो प्रश्न लेकर मैं तुम्हारे सामने उपस्थित होती हूँ। तुम मुझे इन दो प्रश्नो काउत्तर दो। इस पर याज्ञवल्क्य ने कहा, पूछ ले गार्गी। गार्गी– याज्ञवल्क्य ! जो द्युलोक से ऊपर है, जो

पृथ्वी से नीचे है, जो द्युलोक और पृथ्वी के मध्य मे है स्वय भी जो द्युलोक और पृथ्वी लोक है और जिन्हे भूत, भुवत और भविष्यत् कहते है, वे किसमे ओतप्रोत है? याज्ञवल्क्य ने कहा, गार्गी ! वे सब आकाश मे ओत प्रोत है। वह बोली, याज्ञवल्क्य ! जिसने मुझे इसका उत्तर दिया उस तुझको नमस्कार है। अब दूसरे प्रश्न का उत्तर देने के लिए तैयार हो जाइये। याज्ञवल्क्य ने कहा, पूछ ले गार्गी ! गार्गी ने पूछा, आकाश किसमे ओत प्रोत है? याज्ञवल्क्य ने कहा, गार्गि ! उस तत्व को ब्रह्मवेत्ता अक्षर कहते है। वह न मोटा है, न पतला है, छोटा है न बडा, न लाल है, न द्रव है, न तम है न छाया है, न वायु है, न आकाश है, न सग है न रस है, न तेज है, न प्राण है, न मुख है, न माप है, न इसमे अन्दर है न बाहर है, वह कुछ भी नही खाता, उसे कोई भी नही खाता।

हे गार्गि! उस अक्षर तत्व के प्रशासन मे सुर्य और चन्द्रमा द्युलोक और पृथ्वी लोक, निमेष, मुहुर्त, दिन रात, पक्ष, मास, ऋतु और सवत्सर विवृत होकर स्थित है। उस अक्षर के प्रशासन मे ही पूर्व वाहिनी नदिया और अन्य नदिया श्वेतपर्वतों से बहती हैं। उसस अक्षर के प्रशासन मे ही मनुष्यदाता की प्रशसा करते हैं। देव यजमान का और पितर दर्वी होम का अनुवर्तन करते है।

जो कोई इस लोक मे उस अक्षर को न जानकर हवन करता है, यज्ञ करता है, सहस्रो वर्ष तप करता है, उसका वह सारा कर्म नाशवान् होता है, जो कोई इस अक्षर को बिना जाने इस लोक से मर जाता है, कृपण है और जो उस अक्षर को जानकर मरता है वह ब्राह्मण है। यह अक्षर स्वय दृश्य नही अपितु द्रष्टा है, श्रव्य नहीं श्रोता है मननीय नहीं मन्ता है स्वय अविज्ञेय होकर विज्ञाता है। इससे भिन्न कोई भी द्रष्टा, श्रोता, मन्ता और विज्ञाता नहीं है। उसी में आकाश ओतप्रोत है। गार्गी ने कहा, हे पूज्य

ब्राह्मणो ! आप मे से कोई भी इन्हे ब्रहमोघ मे नही जीत सकेगा। इतना कहकर गार्गी चुप हो गई।

२२. याज्ञवल्क्य – शाकल्य सवाद (११/६/३/१, १४/३/६/१)

अनन्त देवो की निविद सख्या विशिष्ट देवो मे अन्तर्भाव है और उनका भी तैंतीस देवो मे और अन्तत एक देव प्राण मे ही अन्तर्भाव, है। एक प्राण का ही अनन्त सख्या के रूप मे विस्तार हुआ है। यहा अधिकार भेद से एक ही देव के नाम रुप, कर्म, गुण और शक्ति का भेद है। उसी प्राण के ८ भेद प्रतिष्ठा सहित बताए गये है।

इसके पश्चात् शाकल्य विदग्ध ने याज्ञवल्क्य से प्रश्न किया, याज्ञवल्क्य देवता कितने है? याज्ञवल्क्य– तीन सहस्र तीन सौ छ । शाकल्य, ठीक है। कितने देवता हैं ? याज्ञवल्क्य– तैतीस। शाकल्य ने कहा – ठीक है कितने देवता है? याज्ञवल्क्य– छ देव हैं। शाकल्य, ठीक है, कितने देवता हैं? याज्ञवल्क्य – केवल तीन देव हैं। शाकल्य, ठीक है, कितने देवता है? याज्ञवल्क्य– दो देवता हैं। ठीक है। ठीक है कितने देवता हैं? याज्ञवल्क्य– एक देव है। शाकल्य, ठीक है, तीन सहस्र तीन सौ छः देव कौन है? याज्ञवल्क्य– देवता तो ३३ है, ये उनकी महिमाये हैं। शाकल्य– तैंतीस देवता कौन हैं? याज्ञवल्क्य– आठ वसु, ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य ये ३१ और इन्द्र तथा प्रजापति, ये ३३ देव हैं। शाकल्य ने कहा, वसु कौन हैं? याज्ञवल्क्य– अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य, द्युलोक, चन्द्रमा एव नक्षत्र–७ ये आठ वसु हैं। इन्ही मे यह सारा जगत विहित है अत. ये वसु हैं। शाकल्य– रुद्र कौन हैं? याज्ञवल्क्य– पुरुष मे ये दश प्राण और ग्यारवा आत्मा। ये जिस समय इस मरणशील शरीर से उत्क्रमण करते हैं, उस समय रुला देते हैं। रुला देने के कारण ये रुद्र हैं। शाकल्य– आदित्य कौन हैं? याज्ञवल्क्य– संवत्सर में १२ मास होते हैं, ये ही आदित्य हैं, ये सब का ग्रहण करते हुए चलने के

कारण आदित्य कहलाते है। शाकल्य, इन्द्र कौन हैं? प्रजापति कौन है? याज्ञवल्क्य– स्तनयित्रु इन्द्र है। यज्ञ प्रजापति है। शाकल्य– स्तनयित्रु कौन है? यज्ञ कौन है? याज्ञवल्क्य– स्तनयित्रु अशनि है, यज्ञ पशु है। शाकल्य– छ देव कौन है। याज्ञवल्क्य– अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य और द्युलोक ये ६ देव है। शाकल्य– तीन देव कौन है? तीनो लोक ही तीन देव है। याज्ञवल्क्य ने कहा– इन्ही मे सारे देव रहते है। शाकल्य– दो देव कौन है? याज्ञवल्क्य– अन्न और प्राण। शाकल्य– अध्यर्द्ध कौन है? यह अध्यर्द्ध क्यो है? शाकल्य ने पूछा। याज्ञवल्क्य बोला, क्योकि इसी मे यह सब ऋद्धि को प्राप्त होता है। शाकल्य– एकदेव कौन है? याज्ञवल्क्य– प्राण, वह ब्रह्म है, उसी को व्यद् कहते है। शाकल्य– पृथिवी ही जिसका आश्रय है, अग्नि जिसका नेत्र है, मन जिसकी ज्योति है उस पुरुष को सम्पूर्ण आत्माओ का परमाश्रय जानता है, वही सच्चा ज्ञाता है। याज्ञवल्क्य– जिसे सम्पूर्ण आत्माओ का परमाश्रय कहते हो उस पुरुष को मैं जानता हूॅ। यह जो शरीर पुरुष है, वही यह है। शाकल्य और बोलो। शाकल्य– अच्छा उसका देवता कौन है? काम ही जिसका आयतन है हृदय लोक है, मन ज्योति है, उस पुरुष को जो सम्पूर्ण आत्माओ का परमाश्रय जानता है, वही ज्ञात है। याज्ञवल्क्य– जिसे तुम सम्पूर्ण आत्माओ का परमाश्रय कहते हो उस पुरुष को मैं जानता हॅं। जो भी यह काममय पुरुष है। वही यह है। हे शाकल्य और बोलो। शाकल्य, उसका देवता कौन है? याज्ञवल्क्य – स्त्रियॉ।

शाकल्य, रूप ही आयतन है, चक्षु लोक है, मन ज्योति है, उस पुरुष को जो सम्पूर्ण आत्माओ का परमाश्रय जानता है, वही ज्ञात है। याज्ञवल्क्य– जिसे तुम सम्पूर्ण आत्माओ का परमाश्रय कहते हो मै उस पुरुष को तो जानता हू। जो भी यह आदित्य में पुरुष है, वही यह है। शाकल्य और बोलो। शाकल्य– उसका देवता कौन है? याज्ञवल्क्य– सत्य। शाकल्य– आकाश ही जिसका आयतन है। हृदय लोक है, मन

ज्योति है, उस पुरुष को जो सम्पूर्ण आत्माओ का आश्रय जानता है, वही ज्ञाता है। याज्ञवल्क्य – जिसे तुम सम्पूर्ण आत्माओ का आश्रय कहते हो। उस पुरुष को तो मैं जानता हूँ। जो भी यह श्रौत्र सम्बन्धी प्रातिश्रुत्क पुरुष है, वही यह है। शाकल्य और बोलो। शाकल्य– उसका देवता कौन है? याज्ञवल्क्य– दिशाये। शाकल्य – तम ही जिसका आयतन है हृदय लोक है मन ज्योति है, उस पुरुष को जो सम्पूर्ण आत्माओ का आश्रय जानता है, वही ज्ञाता है। याज्ञवल्क्य– जिसे तुम सम्पूर्ण आत्माओ का आश्रय कहते हो। उस पुरुष को तो मैं जानता हूँ। जो भी यह छायामय पुरुष है, वही यह है। शाकल्य और बोलो। शाकल्य, उसका देवता कौन है? याज्ञवल्क्य– मृत्यु। शाकल्य– रूप ही जिसका आयतन है, नेत्र लोक है, मन ज्योति है, उसस पुरुष को जो सम्पूर्ण आत्माओ का आश्रय जानता है, वही ज्ञाता है।

याज्ञवल्क्य– जिसे तुम सम्पूर्ण आत्माओं का परमाश्रय कहते हो उस पुरुष को तो मैं जानता हूँ। जो भी यहआदर्श मे पुरुष है वही यह है। शाकल्य और बोलो। शाकल्य– उसका देवता कौन है? याज्ञवल्क्य– असु। शाकल्य– जल ही जिसका आयतन है, हृदय लोक है, मन ज्योति है, जो भी पुरुष को सम्पूर्ण आत्माओ का परम आश्रय जानता है, वही ज्ञाता है। याज्ञवल्क्य – जिसे तुम सम्पूर्ण आत्माओ का आश्रय कहते हो उस पुरुष को तो मैं जानता हूँ। जो भी यह पुत्र–रुप पुरुष है, वही यह है। शाकल्य और बोलो। शाकल्य– उसका देवता कौन है? याज्ञवल्क्य – प्रजापति है।

याज्ञवल्क्य ने कहा, शाकल्य। इन ब्राह्मणो ने तुम्हे अगारे निकालने का चिमटा बना दिया है। शाकल्य– याज्ञवल्क्य ! यह जो तुम कुरुपांचालदेशीय ब्राह्मणों पर आक्षेप करते हो, क्या तुम ब्रह्मवेत्ता हो? याज्ञवल्क्य– मैं देवता और प्रतिष्ठा के सहित दिशाओ को जानता हूँ। शाकल्य– इस पूर्व दिशा में तुम किस देवता से युक्त हो? याज्ञवल्क्य – पूर्व दिशा मे मैं आदित्य देवता से युक्त हूँ। शाकल्य, वह आदित्य किसमे

प्रतिष्ठित है। याज्ञवल्क्य– नेत्रो मे। शाकल्य– नेत्र किसमे प्रतिष्ठित है? याज्ञवल्क्य– रुपो मे पुरुष नेत्र से ही रुपो को देखता है। शाकल्य– रुप किसमे प्रतिष्ठित है? याज्ञवल्क्य– हृदय मे, क्योकि पुरुष हृदय मे ही रुपो को जानता है। शाकल्य– याज्ञवल्क्य ! यह बात ऐसी ही है।

शाकल्य– इस दक्षिण दिशा मे तुम किस देवता वाले हो? याज्ञवल्क्य– यम देवता वाला हूँ। शाकल्य– यम देवता किसमे प्रतिष्ठित है? याज्ञवल्क्य– यज्ञ मे। शाकल्य– यज्ञ किसमे प्रतिष्ठित है। याज्ञवल्क्य– दक्षिण मे। शाकल्य–दक्षिणा किसमे प्रतिष्ठित है? याज्ञवल्क्य– श्रद्धा मे। शाकल्य– श्रद्धा किसमे प्रतिष्ठित है? हृदय मे, क्योकि हृदय से ही पुरुष श्रद्धा को जानता है। याज्ञवल्क्य ने कहा। इस पर शाकल्य ने ऐसा ही है, कहा।

शाकल्य– इस पश्चिम दिशा मे तुम किस देवता वाले हो। याज्ञवल्क्य– वरुण देवता वाला हूँ। शाकल्य– वरुण देवता किसमें प्रतिष्ठित है? याज्ञवल्क्य– जल मे। शाकल्य– जल किसमे प्रतिष्ठित है? याज्ञवल्क्य– वीर्य मे। शाकल्य– वीर्य किसमे प्रतिष्ठित है? याज्ञवल्क्य– हृदय मे, इसी से पिता के अनुरुप उत्पन्न हुए पुत्र को लोग

कहते है कि मानो यह पिता के हृदय से ही निकला है, क्योकि हृदय मे वीर्य स्थित रहता है। शाकल्य– याज्ञवल्क्य ! यह बात ऐसी ही है।

शाकल्य– इस उत्तर दिशा मे तुम किस देवता वाले हो? याज्ञवल्क्य– सोमदेवता वाला हूँ। शाकल्य– सोमदेवता किसमें प्रतिष्ठित है? याज्ञवल्क्य– दीक्षा मे। शाकल्य– दीक्षा किसमे प्रतिष्ठित है? शाकल्य– सत्य में— इसी सो दीक्षित पुरुष को सव्यबदन के लिए आदेश दिया जाता है।शाकल्य– सत्य किसमे प्रतिष्ठित है? याज्ञवल्क्य– हृदय

मे। क्योकि पुरुष हृदय से ही सत्य को जानता है।शाकल्य– यह बात ऐसी ही है याज्ञवल्क्य।

शाकल्य– इस ध्रुवा दिशा मे तुम किस देवता वाले हो याज्ञवल्क्य ! याज्ञवल्क्य– अग्नि देवता वाला हूँ। शाकल्य– वह अग्नि किसमे प्रतिष्ठित है? याज्ञवल्क्य– हृदय मे। शाकल्य– हृदय किसमे प्रतिष्ठित है? याज्ञवल्क्य– अहल्लिक ! (प्रेता) जिस समय तुम इसे अलग मानते हो उस समय यदि यह हम से अलग होा जाय तो इसे कुत्ते खा जाये। अथवा इसे पक्षी चोच मार कर मार डाले।

शाकल्य– तुम (शरीर) और आत्मा (हृदय) किसमे प्रतिष्ठित है? याज्ञवल्क्य– प्राण मे। शाकल्य– प्राण किसमे प्रतिष्ठित है? याज्ञवल्क्य– अपान मे। शाकल्य– अपान किसमे प्रतिष्ठित है? व्यान मे –– याज्ञवल्क्य ने कहा। व्यान किसमे प्रतिष्ठित है? शाकल्य ने पूछा। याज्ञवल्क्य– उदान मे। शाकल्य – उदान किसमे प्रतिष्ठित है? याज्ञवल्क्य– समान मे, जिसका नेति, नेति कह कर उपदेश किया गया है, वह आत्मा अगृह्य है अशीर्य है, असग है, असित है। ये आठ आयतन है, आठ लोक हैं, आठ देव हैं, आठ पुरुष है। वह जो इन पुरुषो को निश्चय पूर्वक जानकर उनका अपने हृदय मे उपसंहार करके औपाधिक धर्मों का अतिक्रमण किये हुए है, उस औपनिषद पुरुष को मै पूंछता हू, यदि तुम मुझे स्पष्ट रुप से न बतला सकोगे, तो तुम्हारा मस्तक गिर जायेगा। उसका मस्तक गिर गया क्योकि वह शाकल्यय उस औपनिषद् ब्रह्म को नहीं जानता था। चोर लोग उसके गिरे मस्तक की हड्डियो को और कुछ समझ कर उठा लो गये। फिर याज्ञवल्क्य ने कहा, पूज्य ब्राह्मणो। आपमे से जिसकी इच्छा हो, वह मुझसे प्रश्न करे, अथवा आप सब मुझसे प्रश्न करे। इसी प्रकार आप सब मे सो जिसकी इच्छा हो, उससे मैं प्रश्न करता हू अथवा आप सबसे मैं प्रश्न करता हूं उन ब्राह्मणों का प्रश्न करने का साहस न हुआ । तब याज्ञवल्क्य ने स्वय कुछ श्लोकों द्वारा प्रश्न किया, यह

सत्य है कि पुरुष, वनस्पति, वृक्ष जैसा ही होता है। पुरुष मे त्वक् वल्कल स्थानीय होता है ।।१।। चोट लगने पर त्वक् से रक्त और वल्कल से गोद निकलता है ।।२।। पुरुष शरीर मे मास शर्करा स्थानीय अस्थि दारु स्थनीय है एव मज्जा वृक्ष और पुरुष मे समान रुप से है ।।३।। कन्तिु यदि वृक्ष को काट दे तो वह अपने मूल से पुन नवीनतर होकर अकुरित हो जाता है, लेकिन यदि मनुष्य को मृत्यु काट देता है तो वह किस मूल से अकुरित होता है ।।४।। वह वीर्य से उत्पन्न होता है, ऐसा तो मत कहो, क्योकि वीर्य तो जीवित पुरुष से ही उत्पन्न होता है। बीज से उत्पन्न होने वाला वृक्ष भी कट जाने के बाद पुन अकुरित हो उत्पन्न हो उठता है ।।५।। यदि बृक्ष को मूल सहित उखाड दिया जाया तोा वह पुनरु उम्पन्न नही होगा। इसी प्रकाश्र यदि मृत्यु मनुष्य को मूल से काट दे तो वह किस मूल से उत्पन्न होता है।

२२.जनक : याज्ञवल्क्य (१४/४/१/१)

निरुपाधिक, निरुपारव्य, नेति नेति से निर्देश्य, साक्षात् अपरोक्ष, सर्वान्तिरात्मा, ब्रह्म अक्षर, अन्तर्यामी, प्रशास्ता, औपनिषद पुरुष विज्ञान– आनन्द रुप ब्रह्म है। सूक्ष्माहार करने वाला वैश्वानर, फिर उससे भीा सूक्ष्मतर आहार करने वाला हृदयान्तर्वर्ती लिगात्मा और फिर उससे भी सूक्ष्म प्राणोपाधिक जगदाता का उपदेश है। फिर रज्जु आदि मे सर्पादि के समान उपाधिभूत जगदात्मा का भी ज्ञान द्वारा लय करके स एष नेति नेति द्वारा साक्षात् सर्वान्तर ब्रह्म का उपदेश किया गया है।

एक ओर विदेह जनक आसन पर बैठा था। तभी याज्ञवल्क्य उसके पास आये। जनक ने कहा, याज्ञवल्क्य ! कैसे आये? पशुओं की इच्छा से अथवा सूक्ष्म बातों को जताने की इच्छा से? याज्ञवल्क्य– राजन् दोनो के लिए आया हॅ। तुमसे किसी आचार्य ने जो कहा है, उसे हम सुने। जनक ने कहा, जित्वा शैलिनि ने कहा है, वाक् ही ब्रह्म है।

याज्ञवल्क्य– यह तो एक पादवाला ब्रह्म हुआ। वाक् ही उसका आयतन है। आकाश उसकी प्रतिष्ठा है! उसकी प्रज्ञा रुप से उपासना करे। जनक, पज्ञता क्या है? याज्ञवल्क्य– राजन् ! वाक् ही प्रज्ञता है। वाक् से ही बन्धु का ज्ञान होता है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्वाङ्गिरस वेद, इतिहास पुराण, विद्या, उपनिषद् श्लोक, सूत्र, अनुव्याख्यान, इष्ट, हुत, आशित, पायित, यह लोक परलोक और समस्त भूत वाक् से ही जाने जाते है। वाक् ही परब्रह्म है। वाक्ब्रह्म के उपासक को वाक् नही छोडती है। उसे सारे प्राणी मिलउपहार देते है। वह देवरुप होकर देवो को प्राप्त होता है। वैदेह जनक ने कहा, मैं तुमको हस्तितुल्य बछडो से युक्त सहस्र गाये देता हॅं। याज्ञवल्क्य ने कहा, राजन् मेरे पिता का आदेश था कि शिष्य को उपदेश से कृतार्थ किये बिना उसका धन लेना नही चाहिए। जनक ने कहा, उपङ्ग शौल्वायन ने मुझसे कहा, प्राण ही ब्रह्म है। याज्ञवल्क्य ने कहा, यह तो एक पाद् ब्रह्म है। प्राण ही उसका आयतन है, आकाश प्रतिष्ठा है। उसकी प्रिय रुप से उपासना करे। जनक, प्रियता क्या है? याज्ञवल्क्य– सम्राट ! प्राण ही प्रियता है, प्राण के लिए ही अयाज्य से यजा करते है। प्रतिग्रह न लेने योग्य से प्रतिग्रह लेते हैं तथा जिस दिशा में जाते हैं उसके वध ही की आशका करते हैं। सम्राट ! यह प्राशण ही परम ब्रह्म है। प्राणब्रह्म के उपासक को प्राण नही छोडता। उसे सभी भूत उपहार देते हैं। वह देव होकर देवो को प्राप्त हो जाता है। जनक, मैं हस्तितुल्य बछडो वाली सहस्र गाये तुम्हे देता हूं। याज्ञवल्क्य – किन्तु राजन्। मेरे पिता का विचार था कि शिष्य को उपदेश के द्वारा कृतार्थ किये बिना उसका धन नही लेना चाहिए।

जनक, वर्कुवार्ष्णि ने मुझसे कहा है, चक्षु ही ब्रह्म है। सम्राट यह तो एक पाद ब्रह्म है, याज्ञवल्क्य ने कहा, चक्षु ही उसका आयतन है, आकाश प्रतिष्ठा है, इसकी

सत्य रुप से उपासना करे। जनक, सत्यता क्या है? चक्षु ही सत्य है। चक्षु ही परब्रह्म है। चक्षुपरब्रह्म के उपासक का चक्षु परित्याग नही करता है। सब भूत उसको उपहार देते हैं। वह देव होकर देवो कोा प्राप्त हो जाता है। जनक, मैं आपको हस्तितुल्य बछडो से युक्त सहस्र गाये देता हूं। याज्ञवल्क्य – किन्तु राजन्। मेरे पिता का विचार था कि बिना शिष्य को संतुष्ट किये उसका धन नही लेना चाहिए।

जनक, भारद्वाज ने मुझसे कहा है, श्रोत्र ही ब्रह्म है। याज्ञवल्क्य ने कहा, राजन्। यह तो ृएक पाद ब्रह्म है। श्रोत्र ही उसका आयतन है। आकाश प्रतिष्ठा है तथा इसकी अनन्त रुप से उपासना करे। जनक, अनन्तता क्या है? याज्ञवल्क्यै– दिशाये ही अनन्तता हैं। कोई भी जिस दिशा को जाता है, उसका अन्त नहीं हो पाता क्योकि दिशाये अनन्त हैं। दिशाये ही श्रोत्र हैं। श्रोत्र ही परमब्रह्म है। श्रोत्र ब्रह्म के उपासक को श्रोत्र नही छोडता। सभी भूत उसे उपहार देते हैं, वह देव होकर देवो को प्राप्त हो जाता है। जनक– मै। आपको हस्तितुल्य बछडो वाली सहस्र गायें देता हूँ। याज्ञवल्क्य – किन्तु मेरे पिता का विचार था कि शिष्य को कृतार्थ किये बिना उसका धन नही लेना चाहिए।

जनक– सत्यकाम जाबाल ने मुझसे कहा है, मन ही ब्रह्म है। याज्ञवल्क्य– मन तो उसका आयतन है आकाश प्रतिष्ठा है। इसकी आनन्द रुप से उपासना करें। जनक – आनन्दता क्या है? याज्ञवल्क्य– मन ही आनन्दता है, मन से ही पुरुष स्त्री की कामना करता है। इसमे अजुरुप पुत्र उत्पन्न होता है, वह आनन्द है, मन ही परमब्रह्म है। मनब्रह्म के उपासक को मन नहीं छोडता। सभी भूत उसे उपहार देते हैं। वह देव होकर देवों को प्राप्त हो जाता है। जनक, मैं आपको हस्तितुल्य बछडो से युक्त १००० गायें देता हूं। याज्ञवल्क्य – किन्तु मेरे पिता का विचार था कि बिना शिष्य को संतुष्ट किये उसका धन नहीं लेना चाहिए।

जनक– विदग्ध शाकल्य ने मुझसे कहा है, हृदय ही ब्रह्म है। याज्ञवल्क्य– यह एक पाद ब्रह्म है, हृदय उसका आयतन है। आकाश प्रतिष्ठा है। इसकी स्थिति रुप से उपासना करे। जनक– स्थिति क्या है? याज्ञवल्क्य– हृदय ही स्थितता है हृदय ही समस्त भूतो का आयतन है, प्रतिष्ठा है। हृदय ही परम ब्रह्म है। हृदय के उपासक को हृदय नही छोडता। सब भूत उसे उपहार देते हैं। वह देव होकर देवो को प्राप्त हो जाता है। जनक – मै हाथी के समान बडे बछडो से युक्त १००० गाये तुम्हे देता हूँ। याज्ञवल्क्य – किन्तु मेरे पिता का विचार था कि शिष्य को उपदेश द्वारा कृतार्थ किये बिना उसका धन नही लेना चाहिए।

तब जनक ने कूर्चासन से उठकर याज्ञवल्क्य के समीप जाते हुए कहा, याज्ञवल्क्य आपको नमस्कार है। मुझे उपदेश दीजिए। याज्ञ०– राजन्! जिस प्रकार लम्बे मार्ग को जाने वाला पुरूष सम्यक् रूप से रथ या नौका का सहारा ले, वैसे ही तू इन उपनिषदो से युक्त प्राणादि ब्रह्म की उपासना कर समादितचित् हो गया है। इस प्रकार तू पूज्य, श्रीमान्, एव उपनिषद्मय हो गया है। इतना होने पर भी तू इस शरीर से छूटकर कहा जायेगा? जनक– भगवन्! मैं कहा जाऊँगा, यह मुझे ज्ञात नही है। याज्ञ०– अब मैं तुझे बताऊगा। जनक– भगवन् आप मुझे बताये।

याज्ञ०– यह जो दक्षिण नेत्र मे पुरूष है उसे इन्द्र कहते हैं। यह जो बाये नेत्र मे पुरूष है, वह इसकी पत्नी विराट् है। ह्रदयाकाश इन दोनों का सस्ताव (मिलन स्थान) है। ह्रदयान्तर्गत लोहित पिण्ड इन दोनो का खाद्यान्न है। ह्रदयान्तर्गत जालतुल्य वस्तु इन दोनो का प्रावरण है। ह्रदयोर्ध्वगामिनी नाडी इन दोनो का सचरण मार्ग है। सहस्रधा विभक्त केश राशि की तरह ये हिता नाडिया ह्रदय मे स्थित है। इन्हीं के द्वारा अन्न शरीर मे जाता है। अतः स्थूल शरीराभिमानी वैश्वानर की अपेक्षा सूक्ष्म देहाभिमानी तेजस सूक्ष्मतर आहार ग्रहण करने वाला है। प्राणाभाव को प्राप्त हुए विद्वान के पूर्वादिक् दक्षिण

दिक्, प्रतीचीदिक् उत्तरादिक्, उदक्प्राण, ऊर्ध्वादिक ऊर्ध्वा प्राण, अवाचीदिक् अवाक् प्राण और सर्वादिक् सर्वप्राण है। वह नेति नेति से उपदिष्ट आत्मा अग्रहणीय, अर्शीय, असख्य, अबद्ध और अक्षय्य है। हे जनक! तू निश्चय ही अभय को प्राप्त हो गया है। जनक ने कहा, भगवन्! आपने मुझे अभय ब्रह्म का ज्ञान कराया है। आपको अभय प्राप्त हो। आपको नमस्कार है। यह विदेह देश और मे आपके अधीन है।

२३. जनक और याज्ञवल्क्य (१४/४/३/१)

विदेहराज जनक के पास याज्ञवल्क्य गये। जनक ने निश्चय किया था कि मै कुछ भी उपदेश न करूगा। किन्तु पहले कभी जनक और याज्ञवल्क्य मे अग्निहोत्र के विषय मे कुछ सवाद हो चुका था। उस समय याज्ञवल्क्य ने उसे वर दिया था, और उसने इच्छानुसार प्रश्न करना ही वर मे मागा था। अत पहले राजा ने ही प्रश्न किया, याज्ञवल्क्य! यह पुरूष किस ज्योतिवाला है। याज्ञ०— सम्राट! यह आदित्यरूप ज्योतिवाला है। यह आदित्य रूप ज्योति से ही बैठता है, सब ओर जाता है, कर्म करता है, और लौट आता है। जनक याज्ञ०— ठीक है। आदित्य के अस्त हो जाने पर यह पुरूष किस ज्योति वाला होता है? याज्ञ०— उस समय चन्द्रमा ही उसकी ज्योति होता है। चन्द्रमा रूप ज्योति के द्वारा ही यह बैठता है, सब ओर जाता है, कर्म करता है, और लौट आता है। जनक, ठीक है, आदित्य और चन्द्रमा के अस्त हो जाने पर यह पुरूष किस ज्योति वाला होता है? याज्ञ०— अग्नि ही इसकी ज्योति होती है यह अग्निरूप ज्योति के द्वारा ही बैठता है, सब ओर जाता है, कर्म करता है, और लौट आता है। जनक, ठीक है, आदित्य और चन्द्रमा के अस्त हो जाने पर और अग्नि के बुझ जाने पर यह पुरूष किस ज्योति वाला होता है? याज्ञवल्क्य, वाक् रूप ज्योति वाला। आदित्य चन्द्रमा के अस्त हो जाने पर अग्नि के शान्त हो जाने पर यह पुरूष

वाक् ज्योति वाला होता है, क्योकि वाक् तब भी वर्तमान रहती है। जनक– वाक् के भी शान्त हो जाने पर यह पुरूष किस ज्योति वाला होता है? याज्ञ०– आत्म ज्योतिवाला। जनक, आत्मा क्या है? याज्ञ०– यह जो प्राणो बुद्धिवृत्तियो के भीतर रहने वाला विज्ञानमय ज्योति स्वरूप पुरूष है वह समान बुद्धिवृत्तियो के सदृश हुआ इस लोक और परलोक मे सचरणकरता है। वह बुद्धि वृत्ति के अनुसार मानों चिन्तन करता है और प्राणवृत्ति के अनुरूप होकर चेष्टा करता है, वही स्वप्न होकर उस लोक देहेन्द्रिय सघात का अतिक्रमण करता है। शरीर तथा इन्द्रिय रूप मृत्यु के रूपो का भी अतिक्रमण करता है। वह यह पुरूष जन्म लेते समय शरीर को आत्म भाव से प्राप्त होता हुआ पापो से देह और इन्द्रियो से सश्लिष्ट हो जाता है। मरते समय पापो को त्याग देता है। पुरूष के दो ही स्थान है। १– एतद्लोक सबधी। २– परलोक सबंधी। तीसरा स्वप्न सबधी स्थान सध्यास्थान है। उस सध्या स्थान मे स्थित रहकर यह इस लोक रूप स्थान और परलोक स्थान इन दोनो को देखता है। यह पुरूष परलोक स्थान के लिए जैसे साधन से सम्पन्न होता है, उस साधन का आश्रय लेकर यह पाप और आनन्द दोनो को ही देखता है

२४. उद्दालक, श्वेतकेतु और प्रवाहण जैबल (१४/६/२/१)

केवल कर्म से पितृलोक और ज्ञान संयुक्त कर्म से देव–लोक की प्राप्ति होती है। इस प्रकार कर्मफलभोग के दो मार्ग हैं। यही सम्पूर्णसंसार की गति का उपसहार है। यहां पर पितृयान और देवयान का विवेचन कर देवयान की साधन स्वरूपा पचाग्नि विधा का निरूपण है।

आरूणेय श्वेतकेतु पांचालो की परिषद् में पहुंचा। यह जैबल प्रवाहण के समीप गया जो कि परिचर्या कर रहा था। उसे देखकर प्रवाहण ने कहा, कुमार वह बोला भोः।

प्रवाहण ने पूछा, क्या तेरे पिता ने तुझे शिक्षा दी है तब श्वेतकेतु बोला, हा। तब प्रवाहण ने छ प्रश्न किये।

प्रजाये किस प्रकार से मरने पर विभिन्न मार्गो से जाती है। पुन पुन बहुतो के पर जाने मर भी वह लोक क्यो नही मरता? कितनी बार आहुतियो के करने पर आप पुरूष शब्द वाच्य होकर उठता है और बोलने लगता है? क्या तू देवयान का अथवा पितृयान का कर्मरूप साधन जानता हू?– श्वेतकेतु ने हर बार नकारात्मक उत्तर ही दिया।

उसके अनन्तर राजा ने श्वेतकेतु से ठहरने के लिए प्रार्थना किया। किन्तु कुमार ठहरने की चिन्ता न करके चल दिया। वह अपने पिता के पास आया और कहा, आपने यही कहा था न कि आपने मुझे सब विषयो की शिक्षा देदी है। पिता ने कहा, सुमेध! क्या हुआ? श्वेत० मुझसे एक राजन्य बन्धु ने पांच प्रश्न किये उनमे से मैं एक का भी उत्तर न दे सका। उद्दालक, वे प्रश्न कौन थे? श्वेतकेतु ने कहा सुनाया। उद्दालक, पुत्र तू ऐसा समझा कि मैं जो कुछ जानता था सो सब कुछ मैने तुमसे कह सुनाया था। अब हम दोनो वही चले और ब्रह्मचर्य पूर्वक उसके यहां निवास करे। श्वेत० ने कहा, आप ही जाय। तब वह उद्दालक प्रवाहण की परिषद् मे गया। उसके लिए राजन ने आसन लगवाकर अहर्य दिया फिर कहा, मै पूज्य गौतम को वर देता हू। उद्दालक ने कहा, आपने जो वर देने की प्रतिज्ञा की है, उसके अनुसार आपने कुमार से जो प्रश्न किया है, वह मुझसे कहे। प्रवाहण– तुम शास्त्रौत उसे पाने की इच्छा न करो। उद्दालक– मै आपके पास शिष्य भाव से उपासना में हूँ। प्र०– गौतम! आपने पितामहो की भाांति तुम मेरा अपराध न समझना। इससे पूर्व यह विद्या किसी ब्राह्मण के पास नही थी। उसमें तुझ ब्राह्मण के प्रति कहता हूं। इस प्रकार सविनय बोलने वाले तुमको निषेध करने मे कौन समर्थ हो सकता है।

गौतम! द्युलोक अक्षि है। आदित्य उसका समिध, किरणे घूम दिन ज्वाला, दिशायें, अगार और अबान्तर दिशाये चिनगारिया है। उस अग्नि मे देवगण श्रद्धा से हवन करते है, जिससे सोम राजा होता है। मेघ अग्नि है सवत्सर उसका समिध, अभ्र, धूम, विद्युत ज्वाला, अशनि, अगार और मेघगर्जन चिनगारिया है। उस अग्नि मे देवगण सोमराजा को हवन करते है।उससे वृष्टि होती है। यह लोक अग्नि है। पृथिवी उसका समिधा, अग्नि धूम, रात्रि, ज्वाला, चन्द्रमा अगार और नक्षत्र चिनगारिया होती है। इस अग्नि मे देवगण वीर्य का हवन करते हुए पुरूष की उत्पत्ति करते है। वह जीवित रहता है। जब तक कर्म शेष रहते है, वह जीवित रहता है और जब वह मरता है तो उसे अग्नि के पास ले जाते है। उसका अग्नि ही अग्नि होता है, समिध, समिधा होती है, ज्वाला ज्वाला होती है, अगार अगारे होते है। चिनगारिया चिनानारिया होती है। जो गृहस्थ पचाग्नि को जानते हैं तथा जो बन मे श्रद्धायुक्त होकर सत्य की उपासना करते हैं। वे ज्योति के अभिमानी देवताओ को प्राप्त होते है। ज्योति के अभिमानी देवो से दिन के अभिमानी देवता को उससे देवलोक को, देवलोक से आदित्य लोक को और आदित्य से विद्युत सबधी देवताओ को प्राप्त होते है। उन वैद्युत देवो के पास एक मानस पुरूष आकर इन्हे ब्रह्मलोको मे ले जाता है। वे उन लोको मे अनन्त संवत्सर पर्यन्त रहते हैं। उनकी पुनरावृत्ति नही होती।

जो यज्ञ, दान, तप करके लोको को जीतते हैं वे धूम को प्राप्त होते हैं। धूम से रात्रि देवता को और इसी प्रकार क्रमश अपदायिमात्र पक्ष, दक्षिणयन, पितृलोक, चन्द्रमा के अभिमानी देवता को प्राप्त होते है। जब उनके कर्मक्षीण हो जाते हैं। देवगण उनका भक्षण करते है। जब उनके कर्मक्षीण हो जाते हैं तो वे आकाश को प्राप्त होते हैं। आकाश से वायु को, वायु से वृष्टि को, वृष्टि से पृथिवी को प्राप्त हो जाते हैं। पृथिवी को प्राप्त होकर वे अन्न बन जाते है। फिर वे पुरूष रूपाग्नि मे हवन कये जाते हैं।

उससे वे लोक के प्रति उत्थान करने वाले होकर स्त्री रूपाग्नि मे उत्पन्न होते है। वे इसी प्रकार पुन पुन परिवर्तित होते रहते है, और जो इन दोनो मार्गों को नही जानते, वे कीट, पतग, डास, और मच्छर आदि होते हैं।

आलोचना और निष्कर्ष

शतपथब्राह्मण मे उपलब्ध ये ब्रह्मोथ–कथाए वैदिक चिन्ताधारा का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण मोड प्रस्तुत करती हैं– एक ऐसा मोड जिसने आगे चलकर उपनिषदो के गम्भीर दार्शनिक चिन्तन को जन्म दिया। ऐहिक कामनाओं की पूर्ति के हेतु किये जाने वाला यज्ञीय कर्मकाण्ड किस प्रकार आध्यात्मिक चिन्तन की आधार–भूमि बन गया इसके रोचक सकेत इन कथाओ मे मिल जाते हैं। इस प्रकार ये कथाये भारतीय दार्शनिक चिन्तन के विकास के अध्येताओ के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है और आस्तिक भारतीय दर्शन के उत्स के रूप मे प्रतिष्ठित हैं।

इन कथाओं ने जिस प्रकार के वातावरण मे जन्म लिया, वह नि सन्देह सहिता के मन्त्र–द्रष्टा ऋषियो के वातावरण से सामाजिक, राजनीतिक आदि सभी दृष्टियो से बहुत भिन्न और विकास की एक सुदीर्घ परम्परा के द्वारा निर्मित प्रतीत होता है। सहिता के मन्त्र–दृष्टा ऋषियो ने मुख्यतः युद्ध के वातावरण मे, जहा आर्य–जन एक और दास–दस्युओ से भिडे है और दूसरी ओर पारस्परिक स्पर्धा में सलग्न है, स्वत स्फूर्त सूक्तो द्वारा इन्द्र आदि देवो की सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न किया था। तब आर्य–जन छोटे–छोटे कबीलो मे विभक्त थे, वर्ण–व्यवस्था बदमूल न हुयी थी, सप्त–सिन्धु प्रदेश आर्य–जनो की गतिविधियो का केन्द्र था, और भरत–जन अभी विपाशा और शुतुद्रि को पार कर आगे बढने की चेष्टा कर रहे थे। इसके विपरीत इन ब्रह्मोद्य–कथाओ मे झलकते आर्य–जनो के विशाल राज्य पूर्व मे काशी, कौशल और

विदेह क्षेत्र बन गया है, अब युद्धो मे शास्त्रो के घात–प्रतिघात से उत्पन्न तुमुल नाद सुनायी नही पडता। चारो ओर शान्ति और समृद्धि का वातावरण दिखायी देता है। स्वभावत इस प्रकार के वातावरण मे सप्त–सिन्धु प्रदेश मे विजेयषण से प्रेरित सरल कर्मकाण्ड, आमुष्मिक ऐहिक तथा कल्याण कामनाओ की विविधता के अनुरूप बहु–विस्तृत हो गया है। यज्ञ–सस्था विकसित होकर विशाल वट–वृक्ष जैसा रूप अपना चुकी है, जिसके साथ–साथ किन्ही परिवारो मे पौरोहित्य की परम्परा प्रतिष्ठित हो चुकी है, और इन पुरोहित परिवारो मे पारस्परिक प्रतिस्पर्द्धा का भाव खूब पनप उठा है। यदि कुठ–पाचाल के आरूणि उद्दालक उदीच्य मे किसी यज्ञ मे ब्रह्मा के रूप मे आमन्त्रित होते है, तो औदीच्य ब्राह्मण भडक उठते है और उद्दालक के साथ शास्त्रार्थ पर उतर पडते है[१]।

परन्तु ब्राह्मण वर्ग की इस पारस्परिक प्रतिस्पर्धा के बीच भी उनकी सत्य निष्ठा अक्षुण्ण है। दूसरे पक्ष को अपने से अधिक अनूचान स्वीकार करने मे उन्हे कोई हिचक नही होती। औदिच्य स्वेदायन शौनक के प्रश्न सुनकर आरूणि उद्दालक ने उसके अध्ययन की श्रेष्ठता सहज भाव से स्वीकार कर ली[२]। तत्कालीन बुद्धि–जीवी वर्ग की इस सतयनिष्ठा को ही परिणाम था कि भारतीय चिन्तन इतनी उच्च्य भूमिका पर प्रतिष्ठित हो सका।

पुरोहित वर्ग जहा कर्मकाण्ड के प्रसार मे उलझा हुआ था, और उसका सारा ध्यान इसी चिन्ता मे लगा था कि यज्ञ के विधि–विधान मे किसी प्रकार की त्रुटि न होने पाए, वहा क्षत्रिय यजमान को स्थूल कर्मकाण्ड से ऊपर उठकर आध्यात्मिक चिन्तन का पर्याप्त अवसर मिल रहा था। कुरूपांचाल नरेश प्रवाहण जैवलि, का शिराज

---

[१] शत ब्रा २/७/१

[२] वही

अजातशत्रु और विदेह सम्राट् जनक आध्यात्मिक चिन्तन मे बहुत आगे बढ चुके थे। राजन्य–वर्ग मे पल्लवित होती इस आध्यात्मिक–चिन्ता–धारा से ब्राह्मण–वर्ग भी अधिक समय तक सम्पर्कित न रह सका। ब्राह्मण–वर्ग ने बडे विनीत भाव से आध्यात्म–चिन्तन–प्रवण क्षत्रियो के पास पहुंच कर ज्ञान की इस अभिनव दिशा का परिचय प्राप्त किया। और फिर स्वय भी इसको इतनी गहराई और सूक्ष्मता प्रदान की कि बाद मे क्षत्रिय–वर्ग भी इस ज्ञान के लिए उनके सामने नतमस्तक हुआ। याज्ञवल्क्य अध्यात्म–ज्ञान मे भी विदेह–सम्राट् जनक के गुरू बन गये।

कुछ विद्वानो ने ब्राह्मणो को क्षत्रियो से अध्यात्म–ज्ञान प्राप्त करने की कथाओ के आधार पर ब्राह्मण–क्षत्रियो मे वर्ग सघर्ष की कल्पना करती हैं[1]। परन्तु यदि इन ब्रह्मोद्य कथाओ को ध्यान से देखा जाए तो इनमे वर्ग–सघर्ष की किचित भी गन्ध नही मिलती। प्रारम्भ में ब्राह्मणों ने विनीत भाव से ही क्षत्रियो से यह ज्ञान प्राप्त किया। क्षत्रियो को भी ज्ञान के वितरण मे किसी प्रकार की हिचक न हुयी और जब स्वय ब्राह्मणो ने इस अध्यात्म चिन्तन को और भी अधिक विकसित कर लिया तो न तो क्षत्रिय–वर्ग के साथ उनकी प्रतिस्पर्धा के कोई सकेत मिलते है, और न क्षत्रिय वर्ग`स उन्होने इस ज्ञान को छिपाया ही।

यज्ञीय कर्मकाण्ड के बीच आध्यात्मिक चिन्तन किस प्रकार अकुरित हो रहा था, इसके अनेक रोचक उदाहरण इन कथाओ मे मिलते हैं। आरूणेय श्वेतकेतु ने वैश्वावसव्य को होता चुना। श्वेतकेतु के पिता ने वैश्वावसव्य के ज्ञान की परीक्षा के लिए जो प्रश्न किए और उनके जो उत्तर दिये गये[2] वे भले ही आज की तर्कबुद्धि का परितोष न कर पाये पर उनमे इतना तो स्पष्ट होता ही है कि वैदिक मनीषियों का

---

[1] शत०बा० १०/३/४/१

[2] शत०ब्रा० १०/३/३/१–८

ध्यान यज्ञ के स्थूल कर्मकाण्ड मे निहित किसी रहस्यात्मक तत्त्व की खोज मे लग गया है। इस चेष्टा के फलस्वरूप यज्ञ की आधिभौतिक, अधिदैविक तथा आध्यात्मिक व्यख्या प्रस्तुत करने की वेष्टा करनने लगी है। अत यज्ञ की समस्त प्रक्रियाए प्राकृतिक नियमो के अनुरूप है,[1] इसी विचार को चरम परिणति यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्ड के सिद्धान्त मे हुयी,[2] जिसने भारतीय चिन्तधारा को अत्यधिक प्रभावित किया और योग–साधना के लिए ठोस आधार प्रस्तुत किया।

यज्ञ की अध्यात्म–परक व्याख्या इन ब्रह्मोधो मे बार–बार उभरी हैं,[3] और इसी तत्कालीन चिन्ता–धारा को एक ऐसा मोड दे दिया जिसने बाद मे उस औपनिषदिक ब्रह्म तक पहुंचा दिया। इस चिन्तधारा के साथ चलते–चलते वैदिक मनीषी ब्रह्माण्ड मे सर्वानुस्यूत एक तत्व तक पहुच गये है, कही उस तत्व को उन्होने अग्नि के रूप मे पहचाना[4] तो कही वैश्वानर[5] के रूप मे। इस चिन्तन का परिपक्व फल इन ब्रह्मीय–कथाओ मे याज्ञवल्क्य–मैत्रेयी–सवाद[6] के रूप मे प्रकट हुआ है, जिसमे आत्मा को ही सब कुछ बता कर उसी के दर्शन, मनन निदिध्यासन का उपदेश किया गया है। यह याज्ञवल्क्य–मैत्रेयी–सवाद कर्मकाण्ड–पाक–चिन्तन तथा औपनिषदिक रहस्यात्मक–चिन्तन को जोडने वाली वह कडी है, जो वैदिक विचार–धारा के अखण्डित सतत–प्रवाह का प्रमाण है।

इन ब्रह्मोद्य–कथाओ मे से वरुण और भृगु के ब्रह्मोद्य मे हमे प्रथम बार पुनर्जन्मवाद के दर्शन होते है। पूर्वजन्म मे जो, जिसके प्रति जैसा व्यवहार करता है,

---

[1] शत०ब्रा० ११/२/७/१

[2] शत०ब्रा० १४/६/१/१

[3] शत०ब्रा० १४/२/४/१/, १४/३/४/१, १४/६/५/१, १४/६/६/१, १४/६/७/१, १४/६/८/१, १४/६/९/१, १४/४/५/१, आदि।

[4] शत०ब्रा० १०/३/३/१–८

[5] शत०ब्रा० १०/६/१/१

[6] शत०ब्रा० १४/२/४/१, १४/४/५/१

अगले जन्म मे उसके हाथो उसे वैसा ही व्यवहार सहन करना पडता है, भारतीय कर्मवाद का यह सिद्धान्त सर्वप्रथम इस ब्रह्मोद्य मे प्रकट हुआ। और फिर इसकी भी कर्मकाण्डपरक व्याख्या प्रस्तुत कर यह निश्चित सकेत कर दिया गया है कि इस विचारधारा को भी, वह चाहे किसी भी स्रोत से आयी हो, वैदिक मनीषियो ने अपनी यज्ञ–परायण विचारधारा मे समाहित कर लिया है। इसी प्रकार मृत्यु के बाद मनुष्य का क्या होता है? नरक क्या है? वहा कैसी दशा रहती है? आदि प्रश्न भी इन ब्रह्मोद्य कथाओ मे उभरने लगे है।[१]

इस विवेचन से स्पष्ट है कि भारतीय– चिन्तन के विकास को समझने के लिये ये ब्रह्मोद्य–कथाए महत्वपूर्ण सामग्री प्रस्तुत करती है और भारतीय चिन्तन–धारा के प्रवाह की अविच्छिन्नता प्रमाणित करती है।

---

[१] शत०ब्रा० १४/६/२/१

चतुर्थ अध्याय

बृहद्देवता में वर्णित कथाएँ

वृहद्देवता मे वर्णित कथाएँ

१.दिव्य, त्वष्टा, दध्यञ्च और मधु की कथा[1]

त्वष्टा शब्द की व्युत्पत्ति त्विष् अथवा त्वक्ष धातु से हुई है, जिसका अर्थ है– "शीघ्रता पूर्वक प्राप्त करना"[2] अथवा कर्मो मे सहायता करना।

त्वष्टा को अग्नि कहा गया है। चन्द्रमा मे आश्रित सूर्य की सहस्र रश्मियो तथा पृथिवी एव उसके ऊपर विद्यमान मधु को त्वष्टा मे निहित बतलाया गया है।

चन्द्रमा मे स्थित दिव्य सोम के रक्षक के रूप मे त्वष्टा ही माने जाते है। सोम की रक्षा मे अग्नि भी तत्पर रहते है।

पुराकथाशास्त्र मे यह वर्णन मिलता है कि "जब देवो द्वारा सोम का पान कर लिए जाने के कारण चन्द्रमा क्षीण होने लगा उस समय सूर्य ने उसे पुन सम्वर्धित किया था।"

अर्थवान् के पुत्र दध्यञ्च पर इन्द्र भली प्रकार प्रसन्न होकर एक अभिचारिक प्रयोग "ब्रह्म" प्रदान किया, जिससे दध्यञ्च ऋषि और भी दीप्तिमान हो गये।

इन्द्र ने ऋषि को मना करते हुए कहा–" इस प्रकार उद्घाटित मधु की कही भी चर्चा मत करना, क्योकि यदि इस मधु की कथा फैल गयी तो मैं तुम्हे जीवित नही रहने दूँगा।"

इतना सुनने के बाद दिव्य अश्विनो ने ऋषि से गुप्त रूप से मधु की याचना की। उनके द्वारा याचना करने पर परम दयालु ऋषि ने शचीपति इन्द्र के द्वारा कही गयी बातो को बता दिया, तत्पश्चात नासत्यो ने कहा कि आप हम दोनो को

---

[1] वृहददेवता, ३/१६–२५

[2]– नि० ८/१३–त्वष्टा तूर्णमश्नुत इति नेरूक्ता त्विषेर्वास्यात्। दीप्तिकर्मण । त्वक्षतेर्वास्यात्। करोतिकर्मण ।

शीघ्रतापूर्वक अश्व का सिर धारण करके मधु ग्रहण कराये, इससे इन्द्र अपका वध नही कर पायेगे।

चूँकि अश्व सिर के रूप मे दध्यञ्च अश्विनद्वय को रहस्य बता दिया था, अत इन्द्र ने उसके उस शिर को पृथक कर दिया। इन्द्र द्वारा सिर पृथक करने के बाद अश्विनो ने उसके शिर को पुन स्थापित कर दिया।

दध्यञ्च अश्व शिर इन्द्र द्वारा अपने वज्र से पृथक कर दिया जाने के पश्चात शर्यणावत् पर्वत पर स्थित एक सरोवर मे गिर पडा। उस समय से वह जलो के ऊपर उठकर तथा जीवित प्राणियो को विविध वरदान देते हुए युगपर्यन्त उन्ही जलो मे डूबा रहता है।

मध्यम स्थानीय[1] गण के अन्तर्गत आने वाला त्वष्टा रूपो का निर्माता[2] माना गया है। मत्रो मे इसकी नेपातिक स्तुति ही की गयी।

२—ऋभुओ और त्वष्टा की कथा[3]

अडिगरस के पुत्र सुधन्वन् के ऋभु, विश्वान् और वाज तीन पुत्र हुए। ये तीनो त्वष्टा के शिष्य कहे गये है।

त्वष्टा ने इन्हे अपनी समस्त ज्ञात कलाओ की शिक्षा प्रदान किया जिससे ये लोग भी इन शिक्षाओ मे पारगत हो गये।

एक बार विश्वेदेवो ने जो स्वय भी समस्त कलाओ मे प्रवीण थे, इन्हे चुनौती दी। तत्पश्चात् सुधन्वन् के पुत्रो ने विश्वेदेवो के लिए विभिन्न वाहनो का निर्माण किया। इनसे सर्वदुधा नामक गाय उत्पन्न की गई। इन लोगो ने अश्विनों के लिए

---

[1] – नि० ८/१४ " माध्यमिकस्त्वष्टेत्याहु। मध्यमे च स्थाने समाम्नात।

[2] – ऋग्वेद मे त्वष्टा को प्राय रूपो का निर्माता तथा तेत्सिरीयसहिता मे 'रूपकृत' कहा गया है।

[3] वृह०, ३६८३ ८८

तीन आसनो वाले दिव्यरूप रथ को बनाया तथा इन्द्र के लिए दो अश्वो को उत्पन्न किया। देवो के द्वारा भेजे गये अग्नि के माध्यम से भी इन्होने अपने कौशल प्रदर्शन किया।

अग्नि के द्वारा एक चमस् को चार भाग मे विभक्त करने की बात कहे जाने पर सुधन्वन् के पुत्रो ने स्वर्गलोक मे परस्पर विचार–विमर्श करने के पश्चात उनके कथन से हर्षित होकर चार चमसों (प्यालो) का निर्माण कर दिया और त्वष्टा सविता तथा प्रजापति ने समस्त देवो को आमन्त्रित करके ऋभुओ को अमरत्व प्रदान किया।[1]

तृतीय सवन मे विश्वेदेवो के साथ इनके भाग का भी निर्धारण किया गया है और इन्द्र ने उस सवन के समय ऋभुओ के साथ सोमपान किया।[2]

३.दीर्घतमस् के जन्म की कथा[3]

उचथ्य और वृहस्पति नाम के दो सहोदर ऋषि पुत्र थे। उचथ्य की पत्नी का नाम ममता था, जो भृगुवशी थी।

उचथ्य और वृहस्पति दोनो मे कनिष्ठ वृहस्पति ममता के पास मैथुन के लिये गये। ममता के गर्भ मे पहले से विद्यमान शिशु ने उनके शुक्रोत्सर्ग के समय कहा, "चूँकि पहले से ही मै यहॉ सम्भूत हूँ, अत तुम शुक्र को सकर करने का काम मत करो।" ऐसा कहने पर भी वृहस्पति शुक्र सम्बन्धी इस अवरोध को सहन न कर सके।

तत्पश्चात् उन्होने गर्भ को सम्बोधित करते हुए कहा – तुम दीर्घतमस्वी

---

[1] ऋ० स०, ४ ३३ ३–४
[2] तदेव, १२० ८
[3] वृहद्देवता, ४/११–१५,२१–२५

होवो। इसलिए उपथ्य के पुत्र का नाम दोघतमस् नाम क साथ जन्म हुआ।

ऐसा प्रचलित है कि जन्म लेने के थोडे ही समय पश्चात् अकस्मात् दीर्घतमस् नेत्रहीन हो गये । दीर्घतमस् को नेत्रहीन होने की सूचना मिलते ही सभी देवतागण दुखी हो गये। दुखी होने के पश्चात् सभी देवो ने विचार–विमर्श किया। विचाार विमर्श करने के पश्चात् उसे नेत्र प्रदान किया गया जिससे उनका अन्धापन दूर हुआ।

एकबार उनके परिचारक खिन्न हो गये और उन अन्धे दीर्घतमस को बॉधकर नदी मे फेक दिया । उन परिचारको मे से त्रेतन नामक एक परिचारक ने दीर्घतमस् पर अपनी तलवार से प्रहार करना चाहा, जैसे ही प्रहार करने की इच्छा प्रकट हुई वह दीर्घतमस् पर प्रहार न करके स्वयं अपने ही सिर स्कन्ध और वक्ष के टुकडे–टुकडे कर दिये।

महान पाप मे लीन उस दास का दीर्घतमस् के द्वारा वध कर दिये जाने के पश्चात् दीर्घतमस् ने नदी के जल मे अपने सज्ञाशून्य अगो को हिलाया। ऐसा करने के पश्चात् नदी की तेज धारा ने उन्हे बहाकर अड्ग देश के निकट पहॅुचा दिया।

उशिज् नामक दासी अड्गराज के गृह मे नियुक्त थी। ऐसा कहा जाता है कि राजा ने पुत्र प्राप्ति की इच्छा से इस उशिज् नामक दासी को दीर्धतमस् के पास भेजा। जब महा तेजस्वी दीर्धतमस् जल से बाहर निकले तो देखा कि वह भक्ति भाव मे लीन सामने खडी है। उसे भक्ति भाव मे लीन खडे हुये देखकर दीर्धतमस् ने उससे कक्षीवत् तथा अन्य पुत्रो को उत्पन्न किया।

४. अगस्त्य और लोपामुद्रा की कथा[1]

वृहद्देवता मे अगस्त्य एव लोपामुद्रा के दाम्पत्य जीवन की कथा मिलती है–

[1] वृहद्देवता ४/५४–६४

गृत्समद ने तप के साथ अपना सामजस्य स्थापित करके इन्द्र के समान विराट शरीर धारण किये हुए वह एक मुहूर्त मे ही दिव्यलोक आकाश और पृथ्वी पर प्रकट हुये।

जिस समय गृत्समद् पृथ्वी पर प्रकट हुए उस समय धुनि और चुमुरि नामक पराक्रमी दैत्य उन्हे इन्द्र समझकर उन पर वज्र सहित टूट पडे। दैत्यो द्वारा आक्रमण किये जाने के पश्चात दोनो के पापपूर्ण भाव को जानकर ऋषि गृत्समद् ने 'योजातएव'। सूक्त द्वारा इन्द्र के कार्यो का गान किया।

जब गृत्समद् ने इन्द्र के कार्यो का गान किया तो उस गान के द्वारा दोनो दैत्यो 'धुनि और चुमुरि' मे भय उत्पन्न हो गया। इन्द्र ने यह कहते हुए उन्हे मार गिरायर कि "यह मेरा अवसर है।" दैत्यो को मार गिराने के पश्चात इन्द्र ने गृत्समद ऋषि से कहा–

"हे मित्र गृत्समद तुम मुझे एक प्रिय के रूप मे देखो, क्योकि तुम मुझे अत्यन्त प्रिय हो गये हो।"

इन्द्र ने गृत्समद् पर प्रसन्न होकर उनसे कहा–"हे गृत्समद! तुम मुझसे कोई एक वर मॉगो। तुम्हारा तप अक्षय हो।' इन्द्र के ऐसा कहने पर गृत्समद नत् मस्तक होकर इन्द्र से बोले–

" हे वक्ताओ मे श्रेष्ठ! हम लोगो को ऐसी शक्ति प्रदान करो जिससे शरीर की सुरक्षा हो सके और हृदयडगम हो जाने वाली वाणी की भी सुरक्षा हो सके तथा हमे ऐसी शक्ति दो कि हम वीर बने और सम्पत्ति से परिपूर्ण हो।"

"हे इन्द्र हम अन्तरात्मा से तुम्हारा ध्यान करते है और हम तुम्हे प्रत्येक जन्म मे जान लेते है, तुम हमसे दूर मत जाओ, तुम श्रेष्ठ रथी हो।"

गृत्समद् के इस प्रकार वर मागने पर ऋषि ने इन सबका वर के रूप मे वरण किया। यह सुनकर परम विजयी शचीपति इन्द्र ने सहमत होकर ऋषि को अपने दाहिने हाथ से पकड लिया। ऐसा करने पर ऋषि ने भी इन्द्र के प्रति मैत्री भाव प्रकट करते हुए उन्हे हाथ से पकड लिया।

किसी समय धुनि और चुमुरि नामक दोनो दैत्यो ने साथ–साथ इन्द्र के आवास मे प्रवेश किया। वहॉ पुरन्द इन्द्र ने स्वय गृत्समद् का आदर तथा पूजन किया। अपनी मित्रता के कारण इन्द्र ने ऋषि को पुन सम्बोधित किया–

"हे ऋषियो मे श्रेष्ठ। तुम अपनी स्तुति द्वारा हम लोगो को प्रसन्न करते हो अत शुनहोत्र के पुत्र होने के कारण तुम्हारा नाम गृत्समद् होगा।

तत्पश्चात श्रुधि से आरम्भ बारह सूक्तो द्वारा ऋषि ने इन्द्र की स्तुति की। इन्द्र की स्तुति करते समय गृत्समद् ने वहॉ ब्रह्मणस्पति के दर्शन किये।

६– एक पुत्रिका–पुत्री विश्वामित्र और शक्ति[1]

ऋग्वेद के एक सूक्त मे यह उल्लेख मिलता है कि किस प्रकार पुत्रिका कही जाने वाली को अपना पुत्री बनाया जाता है अथवा उसे इस आशय मे गर्भित किया जाता है।[2] ऋग्वेद की 'न' ऋचा मे पुत्री को उत्तराधिकार देने का निषेध किया गया है।[3] ऋषि ने यह कहा है कि पुत्री से छोटा पुत्र ज्येष्ठ भ्रता के होता है।

एक समय की बात है जब सुदास द्वारा महायज्ञ किया जा रहा था, उस महायज्ञ मे शक्ति ने गाधिन पुत्र को घायल करके चेतना रहित कर दिया था। जब वह अपने पुत्र को अचेतन अवस्था मे देखकर वह अत्यन्त दुखी हुआ। उसे दुःखी

---

[1] वृददेवता, ४/११०–१४

[2] ऋ० स० ३/३१

[3] ३३१२

देखकर जमदग्नियो ने सूर्य के आवास पर पहुँचाया। वहॉ पर ब्रह्म अथवा सूर्य की पुत्री ने उसे ससर्परी नाम वाच् प्रदान की। तत्पश्चात् वाच् ने विश्वामित्र की अचेतन अवस्था को दूर कर दिया।

७– इन्द्र का जन्म और बामदेव के साथ युद्ध[१]

अदिति के गर्भ मे विद्यमान इन्द्र ने कहा कि मै उचित रूप से जन्म नही लूँगा, तो अपने हित की रक्षा के लिए अदिति ने उसे समझाया किन्तु उसके समझाने के बाद भी इन्द्र ने जन्म लेने के तुरन्त बाद ही ऋषि को युद्ध के लिए ललकार दिया।

तत्पश्चात् इन्द्र और वामदेव के साथ युद्ध आरम्भ हो गया। युद्ध आरम्भ होने के पश्चात् इन्द्र ने वामदेव को पराजित करने के लिए अपने बल का प्रयोग किया। इस प्रकार वामदेव तथा इन्द्र के बीच दस दिन तथा रात्रियो तक युद्ध चलता रहा। अन्त मे वामदेव ने अपनीं शक्ति द्वारा इन्द्र को पराजित कर दिया।

"क इमम्"[२] ऋचा मे गौतम ने उसका ऋषियो की सभा मे विक्रय करते हुए इस उद्देश्य से "नकिर इन्द्र"[३] द्वारा स्वयं उसकी स्तुति की तथा "किम आद्व" के द्वारा उसके क्रोध को बीच मे ही समाप्त कर दिया। तत्पश्चात् ऋषि ने इन्द्र के रूप, वीरता तथा धीरतापूर्ण कार्यो और विविध कर्मो को अदिति से बताया। इस प्रकार वामदेव ने 'अहम्'[४] से प्ररम्भ अपने सूक्त मे यद्यपि आत्मस्तुति की है, परन्तु वह इन्द्र की ही स्तुति मानी जाती है।

बृहद्देवता मे वामदेव एव इन्द्र से सम्बन्धित एक दूसरी कथा भी पायी जाती है। इसके अनुसार दोनो मे अत्यधिक मित्रता थी। किसी समय वामदेव ने देवो,

---

[१] –वृहददेवता, ४/१२७–१३५

[२] भू०, ४ २४ १०

[३] तदेव, ४ ३०१

[४] तदेव, ४/२६

ऋषियो और पितरो की पूजा के लिए अन्य सामग्री के अभाव मे कुत्ते की अतडियो को पकाया था, उस समय इन्द्र उस ऋषि के लिए मधु ले आये थे। इस पर गौतम के वशज उस ऋषि ने 'त्वाम्'[1] से प्रारम्भ होने वाले १५ सूक्तो द्वारा अग्नि की तथा "आ"[2] से प्रारम्भ १६ सूक्तो द्वारा इन्द्र की स्तुति की।

८—त्रयरुण और वृशजान की कथा[3]

एक बार इक्ष्वाकुवशीय राजा त्रिवृष्ण के पुत्र राजा त्रयरूण अपने रथ पर सवार होकर जा रहे थे। उस समय जन के पुत्र वृषजान नामक पुरोहित ने अश्वो की रश्मियो लगामो को अपने हाथमे ले लिया। उसी समय उसके रथ से एक ब्राह्मण कुमार का सिर कट जाने के पश्चात् राजा ने अपने पुरोहित से कहा कि "तुम हत्यारे हो।"

राजा त्रयरूण के द्वारा यह कहे जाने पर कि तुम हत्यारे हो पुरोहित वृषजान ने अर्थवान मत्रो का दर्शन किया और बालक को पुन जीवित कर दिया। तत्पश्चात वह कोध मे आकर राजा त्रयरूणका परित्याग करके अन्य देश मे चला गया।

वृषजान के चले जाने पर राजा की अग्नि तापरहित हो गयी। उसमे डाली गयी हवि ताप के अभाव मे पकती ही नही थी। बार—बार ऐसा होने पर राजा अत्यन्त दुखी हुआ। तत्पश्चात् अपनी भूल को समझकर राजा त्रयरुण वृषजान के पास गया और उन्हे प्रसन्न करके अपने साथ ले आया। पुन वृशजान को अपना पुरोहित बनाया, पुन पुरोहित बना लिए जाने के पश्चात् वृशजान ने प्रसन्न होकर राजा के घर में अग्नि के ताप को ढूढा। वहॉ उसने राजा की पत्नी को पिशाची के रूप मे पाया।

---

[1] तदेव, ४४/१—१५

[2] तदेव, ४/१६—३२

[3] बृहद्देवता, ५/१२—२२

तत्पश्चात् बिस्तर से युक्त आसन्दी पर राजा व्रयरूण के साथ बैठकर वृशजान ने पिशाची को "कम् एव त्वम्"[1] मत्र द्वारा सम्बोधित किया।

उस अग्नि के ताप को एक कुमार के रूप मे बताते हुए वृषजान ने पिशाची को सबोधित किया । जब उन्होने 'विज्यनेतिषा'[2] का उच्चारण किया तब पास आते हुए अन्धकार को दूर भगाते हुए और प्रकाश को प्रकाशित करते हुए अग्नि सहसा प्रकट होकर पिशाची जहॉ बैठी थी, उसे वही भस्म कर दिया।

६. श्यावाश्व की कथा

प्राचीन काल मे रथवीति दार्भ्य नामक एक प्रसिद्ध राजर्षि हुए। ऐसा सुना जाता है। कि एक बार वह यज्ञ की इच्छा से अत्रि के पास गये और उनको प्रसन्न किया।

तत्पश्चात् उन्हे अपना तथा अपने कार्य का प्रयोजन बताकर जब हॉथजोडकर खडे हुए तब उसने अपने ऋत्विज के रूप मे अत्रि के पुत्र अर्चनानस को चुना।

अत्रि अपने पुत्र को साथ लेकर यज्ञ की सिद्धि के लिए राजा के पास गये। अर्चनानस के पुत्र का नाम श्यावाश्व था, जिसे उसके पिता ने प्रसन्नतापूर्वक अड्गो और उपाडगो सहित वेदो की शिक्षा प्रदान की थी।

अर्चनानस् ने अपने पुत्र के साथ राजा के यज्ञ को पूॅर्ण किया। जिस समय यह यज्ञ चल रहा था उसी बीच उसने राजा की यशस्विनी पुत्री को देखा। उस यशस्विनी पुत्री को देखने के बाद अर्चनानस् के मन मे यह विचार आया कि वह

---

[1] ऋ० ५२२

[2] तदेव, ५२६

राजपुत्री को देखने के बाद अर्चनानस् के मन मे यह विचार आया कि वह राजपुत्री उसकी पुत्र–वधू बन सकती है।

पिता अर्चनानस् के विचार को जानने के पश्चात् श्यावाश्व का मन भी उस पर आसक्त हो गया। एतदर्थ उसने यजमान से कहा– "हे राजन! तुम मेरे साथ सम्बद्ध हो जाओ। राजा ने अपनी पुत्री श्यावाश्व को देने की इच्छा से महारानी से कहा– तुम्हारा क्या विचार है[1] मै कन्या को श्यावाश्व को देना चाहता हूँ अर्थात् अपनी पुत्री का विवाह श्यावाश्व के साथ करना चाहता हूँ, क्योकि अत्रि–पुत्र हम लोगो के लिए हीन जामाता नही होगा।"

राजा के ऐसा कहने पर रानी ने कहा– चूँकि मै राजर्षियो के कुल मे उत्पन्न हुई थी, अत मेरा जामाता भी ऋषि होना चाहिए। इस युवक ने मत्रो का दर्शन नही किया है, अतएव जामाता नही बन सकता। अत कन्या किसी ऋषि को ही दी जाय, तत्पश्चात ही वह वेद माता होगी, क्योकि ऋषियो ने मंत्रद्रष्टा ऋषि को वेद का पिता माना है।

राजा ने अपनी पत्नी के साथ विचार–विमर्श करने के पश्चात श्यावाश्व को यह कहते हुए अस्वीकृत कर दिया कि "जो ऋषि नही है, वह हमारा जामाता होने के योग्य नही है।"

यद्यपि राजा द्वारा अस्वीकृत कर दिये जाने पर श्यावाश्व यज्ञ की समाप्ति के पश्चात् अपने पिता के साथ वापस लौट आया किन्तु उसका हृदय कन्या के पास ही लगा रहा।

यज्ञ से लौटने के पश्चात् शचीपति और तुरन्त दोनो राजा पुरुमीरुह से मिले।

---

[1] वृहद्देवता, ५/२०–८१

यह दोनो राजा तुरन्त तथा पुरुमीरुह ऋषि विददश्च के पुत्र थे। इन दोनो राजाओ ने भी स्वय दोनो ऋषियो का पूजन किया।

तत्पश्चात् राजा तरन्त ने ऋषि पुत्र का दर्शन अपनी महारानी को कराया। तरन्त की अनुमति से उस महारानी शशीमुखी ने प्रचुर धन भेड, बकरियॉ, गाये तथा अश्व श्यावाश्व को प्रदान किए। इस प्रकार याजको द्वारा सम्मानित होकर पिता और पुत्र अपने अत्रि आश्रम चले गये। उन्होने प्रदीप्त तेज वाले महर्षि अत्रि का अभिवादन किया, किन्तु श्यावाश्व के मन मे यह विचार आया कि चूँकि हमने किसी मत्र का दर्शन नही किया है, अत मै सर्वाड्.ग सुन्दरी कन्या को नही प्राप्त कर सका। अत हमे मत्र द्रष्टा हो जाना चाहिए।

जब उसने मन मे इस प्रकार चिन्तन किया तब उसके सम्मुख मरूद्गण प्रकट हुए। उसने अपने समक्ष अपने ही समान रूप वाले रूक्मवक्ष मरूतो को देखा।

पुरूषरूप तथा समानवय देवो को देखकर विस्मित श्यावाश्व ने मरूतो से पूछा— "केष्ठ" तब तक उसे ज्ञात हो गया कि यह रूद्र के पुत्र दिव्य मरूद्गण है।

उन्हे देखकर उसने यज्ञ वहन्ते[1] ऋचा द्वारा उनकी स्तुति की।

ऋषि ने यह विचार किया कि मरुतो को देखकर उनकी स्तुति किये बिना ही यह पूँछना कि आप कौन है ? उसने उनकी मर्यादा का उल्लघन किया है। स्तुति किये जाने पर और उन स्तुतियो से प्रसन्न होकर पृश्नि के पुत्र मरूद्गण जब चलने लगे तब उन्होने अपने वक्ष से स्वर्णाभूषण उतार कर ऋषि को दे दिया। जब मरूद्गण वहॉ से चले गये तब वह महायशस्वी श्यावाश्व विचारो मे रथीवीति की पुत्री के पास पहुॅच गये।

---

[1] ऋ०, ५६११

ऋषि हुए श्यावाश्व ने तत्काल रथवीति को अपने सम्बन्ध मे बताने की इच्छा से 'एत मे स्तोत्रम्'[1] से प्रारम्भ दो ऋचाओ द्वारा रात्रि को इस कार्य के लिए नियुक्त किया और रथवीति को न देखने वाली रात्रि को आर्ष नेत्रो से देखकर उन्होने एष क्षेति[2] द्वारा कहा कि वह हिमवान् के रोचक पृष्ठ पर रहते है। ऋषि की आज्ञा को मानकर रात्रि द्वारा प्रेरित होकर दर्भ के पुत्र रथवीति कन्या को साथ लेकर अर्चमानस् के पास गये और उनका चरण पकडने के बाद करवद्ध झुककर यह कहते हुए अपना नाम बताया–

मै दर्भ का पुत्र रथवीति हूँ– आप मेरे साथ सबध करने की इच्छा से गये थे, जिसे मैने अस्वीकृत कर दिया था उसके लिए आप मुझे क्षमा करे। हे भगवन मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आप मुझपर क्रोधित न हो। आप ऋषि के पुत्र है स्वय भी ऋषि है और हे भगवन! आप ऋषि के पिता भी है।

इतना कहने के पश्चात् रथवीति ने अर्चनानस् से कहा– महाराज आइए आप कन्या को पुत्र–वधू के रूप मे स्वीकार कीजिए। राजा ने ऐसा कहने के बाद स्वय ही पाद्य अर्ध्य और मधुपर्क द्वारा उनका पूजन किया तथा उन्हे एक सौ शुक्ल घोडे प्रदान करके घर जाने की अनुमति प्रदान की। तत्पश्चात् ऋषि अर्चनानस् ने भी 'सनन्'[3] से आरम्भ छ ऋचाओ द्वारा शशीयसी और तरन्त तथा राजा पुरूमीरूह की स्तुति करने के पश्चात् अपने घर चले गये।

१०. भृगु, अडि.गरस और अत्रि के जन्म की कथा[4]

ऐसी कथा प्रचलित है कि प्राचीन काल मे प्रजा की कामना से प्रजापति ने साध्यो और विश्वेदेवो के साथ तीन वर्ष तक लगातार यज्ञ सत्र सम्पादित किया।

---

[1] ऋ०, ५६११७–१८
[2] ऋ०, ५६११६
[3] ऋ०, ५६११५–१०
[4] वृहददेवता, ५/७८२–८६, ५/६७१०१

उस दीक्षा के अवसर पर वाक् सशरीर वहॉ आई। सशरीर वाक् को वहॉ देखकर एक साथ ही 'क' प्रजापति और वरूण का शुक्र स्खलित हो गया। उनकी इच्छा से वायु ने शुक्र को अग्नि मे डाल दिया। तत्पश्चात् शुक्र के उन ज्वालाओ से भृगु उत्पन्न हुए और उसके अडगारो से अडिगरस् ऋषि उत्पन्न हुए।

जब वाक् ने इन दो पुत्रो को देखा तो स्वय भी दृष्ट होकर प्रजापति से कहा–हे विश्वेदेवो! इन दो के अतिरिक्त मुझे ऋषि के रुप मे एक तृतीय पुत्र भी उत्पन्न हो। जब वाक् ने इस प्रकार प्रजापति को सबोधित किया तब भरती ने कहा ऐसा ही होगा। तत्पश्चात सूर्य और अग्नि के समान श्रुति वाले अत्रि ऋषि उत्पन्न हुए।

जिस समय सूर्य के प्रकाश को स्वर्भानु द्वारा अदृश्य कर दिया गया था उस समय अन्धकार को दूर करने के लिए अत्रियो ने अग्नि की स्तुति की। इसके साथ ही विभिन्न स्थलो पर अत्रियो ने त्रयरुण त्रस–दस्यु, अश्वमेध, ऋणचय आदि की भी स्तुति की है।

११. वसिष्ठ और उनके वशज[१]

प्रजापति के पुत्र के रूप मे मरीचि उत्पन्न हुए तथा मरीचि के पुत्र कश्यप हुए। आगे चलकर दक्ष की पुत्रियॉ कश्यप की तेरह दिव्य पत्नियॉ बनी। जिनका नाम अदिति, दिति, यनु, काला, दनायु, सिहिका, मुनि, कोधा, विश्वा और वरिष्ठा, सुरभि विनता तथा कद्र था। इनसे ही देव, असुर गन्धर्व, सर्प, राक्षस, पक्षी, पिशाच तथा अन्य जातियॉ उत्पन्न हुई। इन पुत्रियो मे से देवी अदिति ने भाग, अर्यमन् और अश, मित्र और वरूण धातु और विधातु, महातेजस्वी विवस्वान्, त्वष्टा, पूषन् तथा इन्द्र और विष्णु नामक बारह पुत्रो को जन्म दिया। इस प्रकार मित्र एव वरूण का

---

[१] ब ५/१४३–४८

युग्म अदिति से उत्पन्न हुआ। इनके द्वारा उर्वशी के साथ समागम करने के पश्चात् कुम्भ से वसिष्ठ ऋषि का जन्म हुआ। ऋषि वसिष्ठ और उनके वशज हर प्रकार के यज्ञीय कर्मो से सम्बद्ध होने के कारण यज्ञो मे दक्षिणा प्राप्त करने वाले श्रेष्ठ ब्राह्मण बन गये थे।

भाल्लविनो की एक श्रुति मे यह कहा गया है कि प्रत्येक व्यक्ति को वसिष्ठ के उन सभी वशजो को दक्षिणा से सम्मानित करना चाहिए जो कि आज भी यज्ञ सत्र पर उपस्थित होते हो।

मैत्रावरुण के पुत्र ऋषि वसिष्ठ ने अग्निम्[1] से आरम्भ अगले १६ सूक्तो मे अग्नि की स्तुति की है, जहॉ जुषत्वन [2] आप्री मत्रो से मुक्त हैं।

इसके पश्चात् प्राग्नेय[3] 'प्रसमाज[4]' और 'प्राग्नेय[5]' भी जिसमे तीन ऋचाए है, वैश्वानर को सम्बोधित किया गया है। त्येह[6] से आरम्भ मत्र इन्द्र को सम्बोधित किया गया है, जिसके अन्तर्गत पन्द्रह सूक्त[7] से मरूतो की नेपातिक स्तुति की गयी है। 'न कि सुदास च'[8] ऋचा मे तथा तेनप्तु[9] से आरम्भ चार ऋचाओ मे वसिष्ठ द्वारा पैजवन सुदास के दान का उल्लेख किया गया है। 'शिवव्य च'[10] को उन लोगो ने इन्द्र को सम्बोधित सूक्त अथवा एक सवाद सूक्त कहा है।

१२. कक्षीवत् और स्वनय की कथा[11]

कहते है कि जिस समय कक्षीवत अपने गुरू से विद्या प्राप्त करके घर लौट

---

[1] ऋ० ७ ११
[2] तदेव ७ २
[3] तदेव ७ ५
[4] तदेव, ७ ६
[5] तदेव ७ १३
[6] तदेव, ७ १८
[7] तदेव ७ १८–३२
[8] तदेव, ७ ३२–१०
[9] तदेव, ७ १८ २२–२५
[10] तदेव, ७ ३३
[11] वृहद्देवता, ३ १४२–१५०

रहे थे, मार्ग मे थककर वन मे ही सो गये। उस समय भावयप्य के पुत्र राजा स्वनय ने अपनी सभा, पुरोहित और पत्नी के साथ क्रीडा के लिए जाते हुए मार्ग मे कक्षीवत् को सोया हुआ देखा। कक्षीवत् को रूप सम्पन्न तथा देवपुत्र के समान देखकर राजा ने बिना वर्ण और गोत्र आदि के पूछे ही अपनी पुत्री का विवाह उसके साथ करने का विचार कर लेने के पश्चात उनको जगाकर उनसे उनका वर्ण और गोत्रादि पूछा। इस पर प्रत्युत्तर मे कक्षीवत् ने कहा–राजन! मैं अडि गरस वशोत्पन्न उचथ्य के पुत्र दीर्घतमा ऋषि का पुत्र हूँ। तत्पश्चात् राजा स्वनय ने कक्षीवत् को आभूषणो से अलकृत दस कन्याए उन्हे ले जाने के लिए दस रथ तथा चार–चार के दल मे चलने वाले सुदृढ सुडौल शरीर वाले अश्व भी उपहार मे दिया। इसके साथ ही बहुत सारा धन हीन धातु से निर्मित बर्तन तथा भेड बकरियॉ आदि भी प्रदान किया।

इनके अतिरिक्त राजा स्वनय ने कक्षीवत् का एक 'सौनिष्क एक प्रकार का 'कण्ठाभूषण' और एक सौ बैल भी प्रदान किया। इसका वणनशतम्[1] से आरम्भ सूक्त की ऋचाओ मे वर्णन है। कक्षीवत् ने एक सौ अश्व, एक सौ निष्क कन्याओ सहित दस रथ, चार–चार के दल मे चलने वाले रथवाहक अश्व और एक हजार साठ गाये[2] इन सबको प्राप्त करने के पश्चात् स्वनय की प्रशंसा की तथा अपने पिता को प्रात[3] वाला सूक्त समर्पित किया।

१३. सोभरि और चित्र की कथा[4]

सोभरि और चित्र ने इन्द्र से प्रार्थना करते हुए कहा– हे इन्द्र आप हम लोगों पर कृपा कीजिए जिससे विश्वकर्मा मेरे लिए सुन्दर वर्णों के प्रासादो का निर्माण करे

---

[1] ऋ० ११२६ २–३
[2] ऋ०, ११२६ २–३ निष्कान छतम अश्वान वधूमतौ दश रथास षष्टि सहस्रम् गब्यम।
[3] तदेव, ११२५
[4] वृहददेवता, ५ ५६–६२

तथा साथ ही अलग–अलग देव वृक्षो की पुष्पवाटिकाओ का भी निर्माण करे तथा कोई ऐसा कार्य बताये जिससे सहपत्नियो के बीच आपस मे कोई स्पर्धा न रहे। ऐसा कहने पर इन्द्र ने कहा ठीक है, ऐसा ही होगा। तुम्हारी सभी मनोकामनाये पूर्ण होगी।

एक समय की बात है कि जब कण्व के पुत्र सोभरि अपने वशजो के साथ कुरूक्षेत्र मे यज्ञ कर रहे थे उसी समय चूहो ने उनके सारे अन्न और विविध प्रकार के हविष्यो को खा डाला। तत्पश्चात् सोभरि ने "इन्द्रो वा"[१] ऋचा से दान शक्ति का वर्णन करते हुए इन्द्र, चित्र तथा सरस्वती की स्तुति किया।

सोभरि के स्तुति करने पर चूहो के राजा चित्र उन पर प्रसन्न एव आत्मतुष्ट होकर स्वय भी चित्र की देववत् स्तुति की। उसने ऋषि को अनेक प्रकार की सहस्रो गाये प्रदान की। तत्पश्चात ऋषि ने उनकी स्तुति करते हुए दान को ग्रहण किया। चित्र ने हृदय से प्रसन्न होकर ऋषि को सम्बोधित किया–

हे ऋषि! चूँकि मैने पशु योनि मे जन्म लिया है, इसलिए मै ऋषि के द्वारा स्तुति करने के योग्य नही हूँ। अत आप देवताओ की स्तुति करे। ऐसा कहने के पश्चात भी ऋषि ने ८ २१ १८ ऋचा से उसकी (चित्र) की पुन स्तुति की और औत्यम्[२] ऋचा से उन्होने अश्विनो की स्तुति की।

१४ अपाला की कथा[३]

प्राचीन काल मे अग्नि की एक पुत्री हुई, जिसका नाम अपाला पडा। अपाला चर्म रोग से पीडित थी। इन्द्र अपाला को अग्नि के निर्जन आश्रम मे देखकर उस पर आसक्त हो गये।

---

[१] ऋ० ८ २५ १७

[२] तदेव ८ २२

[३] वृहददेवता ६ ९९ १०८

अपाला तपस्विनी थी, अत वह अपनी तपस्या द्वारा इन्द्र की समस्त इच्छाओ को जान गयी। तत्पश्चात वह जल कुम्भ लेकर पानी लाने के लिए गयी। उस समय वह जल के किनारे सोम को देखा। तदनन्तर वह वन मे ही एक ऋचा से उसकी स्तुति की। कन्यावा[1] मे इसका वर्णन मिलता है।

एक बार जब अपाला ने अपने मुख मे सोम को दबा रखा था, तत्पश्चात् 'असो भएषि'[2] ऋचा से इन्द्र का आह्वान् किया। अपाला के आवाहन करने पर इन्द्र ने उसके घर अपूप और सत्तू खाने के पश्चात् उसके मुख से सोम का पान किया तथा अपाला ने एक ऋचा से इन्द्र की स्तुति की। इस प्रकार अपाला ने तीन ऋचाओ द्वारा[3] उसे सम्बोधित करते हुए कहा– हे इन्द्र! मुझे सुलोभ और दोषरहित अडगो वाली तथा श्रेष्ठ त्वचा वाली बनाओ।

अपाला के इस वचन को सुनकर इन्द्र अत्यन्त प्रसन्न हुए। गाडी के जुये के बीच के छिद्र से उसे प्रक्षिप्त करते हुए इन्द्र ने उसे तीन बार बाहर खीचा, जिससे अपाला सुन्दर त्वचा वाली हो गयी।

अपाला की प्रथम अपहृत त्वचा शल्यक् बन गयी, दूसरी गोध (घडियाल) और अन्तिम त्वचा कृकलात (नेवला) बन गयी।

यास्क और भागुरि ने इस सूक्त को एक इतिहास माना है। जबकि शौनक ने कन्या[4] सूक्त को तथा पात्तम[5] से आरम्भ बाद मे आने वाले दो सूक्तो[6] को इन्द्र को सम्बोधित माना है।

---

[1] ऋ० ८ ६११

[2] तदेव, ८ ६१२

[3] तदेव, ८ ६१४६

[4] तदेव ८ ६१

[5] तदेव ८ ६२–६३

[6] तदेव, ८ ६३–६४

१५. सोम के पलायन की कथा[1]

एक बार वृत्र और सोम के बीच युद्ध हो रहा था। उस समय वृत्र के भय से त्रस्त होकर सोम देवो के पास से भाग गया और कुरूओ के प्रान्त मे स्थित अशुमती नामक नदी मे रहने लगा।

जिस समय इन्द्र अनेक प्रकार के शस्त्रो से युक्त होकर मरूतो के साथ युद्ध के लिए उद्यत थे, उस समय वृत्रहा (इन्द्र) केवल वृहस्पति को लेकर सोम के पास आये। उन लोगो के आते हुए देखकर सोम यह विचार करने लगा कि वृत्र अपनी आकामक सेना सहित उसका वध करने के लिए ही आ रहा है, ऐसा सोचकर सोम अपनी सेना के साथ व्यवस्थित हो गया। धनुष से युक्त ओर व्यवस्थित देखकर उससे वृहस्पति ने कहा–हे सोम। यह मरुतो के स्वामी है । हे प्रभो तुम पुन देवताओ के पास चले जाओ । इस प्रकार देव गुरु का वक्य सुनकर वृत्र के भय से रहित सोम ने इन्द्र ने कहा– ''नही मैं देवताओ के पास नही जाऊॅगा''। उसके ऐसा कहने पर बलवान इन्द्र उसको बलपूर्वक साथ लेकर देवो के पास स्वर्ग चले गये। तत्पश्चात् देवो ने उसका विधिवत् पान किया।

सोम का पान करने के पश्चात उन लोगो ने युद्ध मे नौ बार नब्बे दैत्यो का वध किया। इन सबका अप[2] से आरम्भ तीन ऋचाओ मे उल्लेख मिलता है।

ऋषि ने इन्द्र, मरुतो और वृहस्पति की भी स्तुति की है, क्योकि इन तीन ऋचाओ के देवता यही लोग है। किन्तु शौनक का विचार है कि यहॉ केवल इन्द्र ही देवता है।

ऐतरेय ब्राह्मण मे ऋचाओ को इन्द्र तथा वृहस्पति को सम्बोधित माना गया

---

[1] वृहद्देवता ६ १०६–११६
[2] ऋ० ८ ९६, १३–१५

है। "अयम्" से आरम्भ तीन ऋचाओं[1] मे भृगु के पुत्र नेम ने बिना देखे ही इन्द्र की स्तुति की है।

इस प्रकार स्तुति करने के पश्चात इन्द्र ने कहा—मै यहॉ हूँ, हे ऋषि! देखो।[2]

इन्द्र ने ऐसा इसलिए कहा कि इन्द्र की स्तुति करते समय अकेले होने के कारण नेम ने यह कहा था कि इन्द्र नही है।

१६. विष्णु द्वारा इन्द्र की सहायता[3]

इन्द्र ने अपने को प्रकट करते हुए दो ऋचाओ[4] में स्वय अपनी स्तुति की है। इन्द्र द्वारा अपनी स्तुति स्वय किये जाने पर ऋषि अत्यन्त प्रसन्न हुए और विश्वेता ते[5] से आरम्भ दो ऋचाओ मे इन्द्र के दान और उनके विभिन्न प्रकार के कर्मो की प्रशसा की। किन्तु मनोजवा[6] ऋचा द्वारा वज्र की स्तुति है।

वृत्र इन तीनो लोको को त्रस्त करते हुए अपने कोध के कारण अविजित रहा। जब इन्द्र वृत्र का वध करने मे समर्थ नही हो सके तब विष्णु के पास जाकर बोले मै वृत्र का वध करना चाहता हूँ, अत आप पराक्रम से युक्त होकर मेरे समीप खडे हो।

'द्यौस्' (आकाश) मेरे उद्यत हुए वज्र को स्थान प्रदान करे। तथास्तु कहकर विष्णु ने वैसा ही किया और द्यौस ने उन्हे स्थान दिया।

---

[1] तदेव ८ १००, १–३
[2] तदेव ८ १०० ४–५
[3] बृहद्देवता, ६ १२१–२३
[4] ऋ०, ८ १०० ४–५
[5] तदेव, ८ १००, ६–७
[6] तदेव, ८ १०० ६

१७. सरण्यू की कथा[1]

त्वष्टा के सरण्यू तथा त्रिशिरस् नामक दो युगल सन्ताने थी। त्वष्टा ने सरण्यू का विवाह विवस्वान् के साथ कर दिया। तत्पश्चात् सरण्यू तथा विवस्वत् ने यम और यमी को जन्म दिया। ये दोनो यमज थे, किन्तु इन दोनो मे यम ज्येष्ठ थे।

एक बार सरण्यू ने अपने पति की अनुपस्थिति मे अपने समान एक स्त्री की सृष्टि करके उसे ही यमजो को देकर स्वय अश्वी का रूप धारण करके वन मे चली गयी।

विवस्वान् इस परिस्थिति से अवगत नही थे। अतएव अनभिज्ञता से उसने इस स्थानापन्न स्त्री से उत्पन्न किया। आगे चलकर मनु भी विवस्वान के समान तेजस्वी राजर्षि बने। जब विवस्वान को यह ज्ञात हुआ कि सरण्यू एक अश्वी के रूप मे चली गयी है, तो उसने भी सलक्षण अश्व का रूप धारण करके शीघ्रतापूर्वक समागम की प्रबल इच्छा से त्वष्टा की पुत्री के पीछे चला गया।

जब विवस्वत् को सरण्यू ने अश्व के रूप मे देखा तो वह उसे पहचान गयी, तत्पश्चात् सरण्यू ने विवस्वान् से मैथुन का आग्रह किया। विवस्वत् ने उस पर आरोहण नही किया।

अतिशय उत्तेजना के कारण विवस्वान् का शुक्र भूमि पर गिर पडा। सन्तान की इच्छा के कारण उस अश्वी ने शुक्र को सूँघा। शुक्र को सूँघने के पश्चात दो कुमार नासत्यौ अथवा दस्रौ प्रकट हुए, जिनकी स्तुति अश्विनो के रूप मे की जाती है।

---

[1] बृहद्देवता १६२–६३, ७१–१०

यास्क ने त्वष्टा[1] से आरम्भ उन दो ऋचाओ को विवस्वान् और त्वष्टा की कथा माना है, जिनकी देवता सरण्यू है।

१८. घोषा की कथा [2]

प्राचीन काल मे काक्षीवत् की पुत्री घोषा एक पाप से अपग होने के पश्चात साठ वर्षों तक अपने पिता के गृह मे रही। घोषा को इस बात की अत्यन्त चिन्ता हुई थी कि बिना पुत्र अथवा पति के मै वृथा ही जरा अवस्था को प्राप्त हो गयी हूँ। अतएव उसने निश्चय किया कि मै शुभस्पती अश्विनो की शरण मे जाऊँगी।

उसने सोचा कि चूँकि मेरे पिता ने शुमस्पती की आराधना करके यौवन, आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य और सर्वभूतहन विष प्राप्त ıकया था, अत मै भी उनकी कृपा से रूप और सौभाग्य प्राप्त कर सकती हूँ। सर्वप्रथम इसके लिए अश्विनो को सतुष्ट करने वाले मत्रो की प्राप्ति आवश्यक है।

इस प्रकार चिन्तन करते समय उसने 'यो वा परि'[3] से आरम्भ दो सूक्तो का दर्शन किया। स्तुति किये जाने पर दिव्य अश्विन् द्वय उस पर प्रसन्न हुए। तत्पश्चात् अश्विन् द्वय ने घोषा के शरीर मे प्रवेश करके उसे जरा–विहीन, रोगरहित और सुन्दर बना दिया। अश्विन् द्वय ने घोषा को पति और पुत्र के रूप मे ऋषि सुहस्त्य को प्रदान किया।

अश्विनौ कक्षीवत् की पुत्री घोषा को जो कुछ दिया उसका 'न तस्य'[4] और 'अमाजुर'[5] ऋचाओ द्वरा वर्णन मिलता है।

---

[1] ऋ०, १० १७,१–२
[2] वृहददेवता,
[3] ह० १० ३८ ४०
[4] तदेव १० ४४ ११
[5] तदेव, १० ३६,३

१६. इन्द्र वैकुण्ठ की कथा[1]

प्रजापति की एक आसुरी पुत्री थी जिसका विकुण्ठा था। उसने इन्द्र के समान पुत्र की महान इच्छा से तपस्या की। इस प्रकार उसने प्रजापति से विभिन्न वरदानो के रूप मे समस्त इच्छाओ को प्राप्त कर लिया। तत्पश्चात दैत्यो और दानवो का वध करने की इच्छा से स्वय इन्द्र उससे जन्म लिया।

किसी समय जब इन्द्र और दानवो के बीच समर भूमि मे युद्ध हो रहा था उस समय इन्द्र ने नौ–नौ नब्बे बार और सात–सात की सख्या मे सात बार दानवो का वध किया।

इन्द्र ने अपने बाहुबल से दानवो के स्वर्ण रजत और लौह दुर्गो को ध्वस्त करके तीनो लोको मे व्यवस्थित दानवो का यथास्थान वध कर दिया। तत्पश्चात् पृथ्वी पर उन्होने कालकेय और पुलोम जाति के लोगो धर्नुधरो और स्वर्ग मे प्रह्लाद की तुष्ट सन्तानो का उन्मूलन कर दिया।

इस प्रकार दैत्यो का साम्राज्य प्राप्त कर तथा अपनी वीरता के दर्प मे असुरो की माया से मोहित होकर उसने देवो को त्रस्त करना आरम्भ कर दिया।

देव लोग उस असीम शक्ति वाले इन्द्र से त्रस्त होकर उससे मुक्ति पाने के लिए श्रेष्ठ ऋषि सप्तगु के पास भाग कर गये ताकि वे इन्द्र को रोक दे। चूँकि सप्तगु ऋषि उनके प्रिय सखा थे, इसलिए उनके हाथ का स्पर्श करते हुए उन्होने उनको 'जागृभ्य'[2] सूक्त से सतुष्ट किया। तत्पश्चात् आत्मबोध करके और सप्तगु की स्तुति से प्रसन्न होकर उन्होने 'अह भुवम्'[3] से आरम्भ तीन सूक्तो में अपनी स्तुति की। तत्पश्चात् उन्होने अपने प्राचीन काल मे किये गये कार्यो का वर्णन किया।

---

[1] –वृहददेवता ७ ५०–६५

[2] ऋ० स० १० ४७

[3] तदेव, १० ४८–५०

प्राचीन काल मे किस प्रकार विदेह के राजा व्यश को सोम पति बनाया था। प्राचीन काल मे वशिष्ठ के श्राप से व्यश विदेह के राजा बन गये। तत्पश्चात् इन्द्र की कृपा से राजा व्यश ने सरस्वती तथा अन्य नदियो के तट पर यज्ञ–सत्र का आयोजन किया था। इस प्रकार इन्द्र ने अपनी महान शक्ति का, शत्रुओ को पहुँचायी गयी क्षति का मनुष्यो के बीच अपने ऐश्वर्य का तथा भुवनो पर अपने प्रभुत्व का वर्णन किया। उसने 'प्रवो महे'[1] से अपनी अक्षय शक्ति की स्तुति की।

२०. सुबन्धु की कथा[2]

ऋग्वेद सहिता के 'यत्'[3] से प्रारम्भ होने वाले सूक्त मे इतिहास का वर्णन मिलता है।

एक बार जब इक्ष्वाकुवशीय रथ प्रोष्ट राजा असमाति न आत्रियो क द्विपदो, ऋषि सुबन्धु तथा अन्य उन पुरोहितो को अपने राज्य से निकाल दिया। तत्पश्चात् असमाति ने किरात और आकुलि नामक दो मायावियो को श्रेष्ठ समझकर अपना पुरोहित बना लिया।

सुबन्धु से ईश्र्या रखने वाले तथा गोपायनो के विरूद्ध गायन करने वाले किरात और आकुलि कपोत बनकर अपनी माया और योग बल से सुबन्धु के ऊपर गिर पडे । उसके आघात से पीडित सुबन्धु मूर्छित हो पृथ्वी पर गिर पडे। तद्नन्तर कपोत धारी किरात और आकुलि ने सुबन्धु के प्राण को नोच डाला तथा लौटकर राजा के पास चले गये। सुबन्धु के प्राणविहीन होकर भूमि पर पडे रहने पर गोपायनों ने एक साथ उसके कल्याण के लिए 'मा'[4] सूक्त का जप किया। इस

---

[1] तदेव १० ५० १

[2] वृहददेवता ७ ८३–६३

[3] ऋ० सो० नपि० १० ५८

[4] ऋ० १० ५७

प्रकार उनकी आत्मा को पुन लौटाने के लिए इन लोगो ने 'यत्'[1] से आरम्भ सूक्त का आश्रय लिया।

'प्रतारि'[2] से आरम्भ जिन तीन ऋचाओ का इन लोगो ने उनके उपचार के लिए जप किया। वही इस सूक्त की प्रथम तीन ऋचाए (१–३) है। यहॉ इनका निक्रति को दूर भगाने के अर्थ मे प्रयोग हुआ है।

'माषु'[3] से आरम्भ तीन पाद सोम को सम्बोधित है। अन्तिम पाद् निऋति को सम्बोधित है। बाद की दो ऋचाओ द्वारा[4] असुनीति की स्तुति की गयी है।

यास्क का विचार है कि इन दो ऋचाओ मे से अन्तिम पाद अनुमति[5] को सम्बोधित है।

पृथ्वी, आकाश, सोम और पूषन्, वायु, पथ्या और स्वस्ति का विस्तृत विवरण ऋग्वेद[6] मे मिलता है। इन सबको पुन रन[7] ऋचा मे सुबन्धु के कष्ट को शान्त करने वाला माना गया है। शम्[8] से आरम्भ तीन ऋचाए [9] दो लोको को सम्बोधित है। जबकि शम्[10] ऋचा की प्रथम अर्द्धर्च ऋचा इन्द्र को सम्बोधित है। तत्पश्चात आ से आरम्भ चार ऋचाओं[11] से उन्होने इक्ष्वाकु के वशज की स्तुति की है। स्तुति करने के पश्चात इन्द्र त्वा से आरम्भ ऋचा मे उनके लिए आशीष कहा गया है। उनकी माता ने अगस्त्यस्य[12] से राजा की स्तुति की है। इस प्रकार स्तुति किये जाने

---

[1] तदेव १० ५८

[2] तदेव १० ५६

[3] तदेव १० ५६–४

[4] तदेव १० ५६ ५–६

[5] ऋ० १० ५६ ६

[6] तदेव १० ५६ ६

[7] तदेव १० ५६–६०

[8] तदेव १० ५८,८ १०

[9] तदेव १० ५६ १०

[10] तदेव १०,६० १–४

[11] तदेव १० ६० ५

[12] ऋ० १० ६० ६

पर वह राजा लज्जा पूर्वक गोपायनो के पास गया। तत्पश्चात् अत्रियो ने द्विपद सूक्तो से अग्नि की स्तुति की।

इस प्रकार प्रसन्न होकर अग्नि ने उन लोगो से कहा– सुबन्धु की आत्मा इस अन्त परिधि मे है, अर्थात हित की इच्छा रखने वाले मेरे द्वारा इक्ष्वाकु का यह वशज रहित है। सुबन्धु को उसका प्राण लौटा देने और 'जीवित रहो' कहने के पश्चात गोपायनो द्वारा स्तुति की जाने पर अग्निदेव उन पर प्रसन्न होकर स्वर्ग को चले गये।

तत्पश्चात् इन लोगो ने प्रसन्न होकर 'अय माता'[1] ऋचा द्वारा सुबन्धु के प्राण का आह्वान किया तत्पश्चात् भूमि पर पडे हुए सुबन्धु के शरीर को निर्दिष्ट करते हुए उन लोगो ने उसकी चेतना के धारणार्थ सूक्त के शेष अश का गायन किया। और अयम्[2] ऋचा मे उन लोगो ने उसकी चेतना प्राप्त कर लेने पर अपने हाथो से उसका पृथक–पृथक स्पर्श किया।

'इदम्' से आरम्भ छ सूक्त[3] विश्वे देवो को सम्बोधित है। इनमे से द्वितीय सूक्त[4] मे अडिगरस की स्तुति की गयी है।

जन्म, कर्म और इन्द्र के साथ उनका सखा भाव बताते हुए ऋषियो ने स्तुति की। ' प्र नूनम्'[5] तथा शेष ऋचाओ से सवर्ण के पुत्र मन की स्तुति की गयी है।

२१. पुरुरवस् और उर्वशी की कथा[6]

प्राचीन काल मे अप्सरा उर्वशी पुरूरवस् के साथ रहती थी। दोनो आपस मे समझौता करके पति–पत्नी का आचरण करने लगे।

---

[1] तदेव १० ६० ७
[2] तदेव, १० ६० १२
[3] तदेव १० ६१ ६६
[4] तदेव १० ६५
[5] ऋ० १० ६२ ८–११
[6] वृहददेवता ७ १४३–१५२

उर्वशी के साथ पुरूरवस् के सहवास पर ईर्श्या करते हुए तथा दोनो के प्रगाढ अनुराग को देखकर पाक शासन (इन्द्र) ने उन्हे अलग करने के लिए अपने पार्श्वस्थ वज्र से कहा– 'हे वज्र यदि तुम मेरा प्रिय चाहते हो तो पुरूरवस् और उर्वशी के प्रेम सम्बन्ध को भग कर दो।"

इन्द्र के ऐसा कहने पर "बहुत अच्छा" ऐसा कहकर वज्र ने अपनी माया से उनके प्रेम को भग कर दिया, तत्पश्चात् उर्वशी से अलग होकर राजा पुरूरवस् इधर–उधर भटकने लगे।

भटकते हुए राजा पुरुरवस् ने एक तालाब मे पॉच सखियो से घिरी हुई सुन्दरी उर्वशी को देखा। उर्वशी को देखकर राजा ने लौट चलने का आग्रह किया, परन्तु उर्वशी ने दु.ख प्रकट करते हुए उत्तर दिया कि– अब तुम मुझे यहॉ नही प्राप्त कर सकते, तुम मुझे स्वर्ग मे ही पुन· प्राप्त कर सकोगे।

२२. सरमा और पणियो की कथा [१]

पणि नाम के असुर गण रसा के उस पार के निवासी थे। इन लोगो ने इन्द्र की गायो का अपहरण कर लिया। और उन गायो को सतर्कतापूर्वक छिपा दिया।

गायो को छिपाते हुए असुरों को वृहस्पति ने देखा तथा इन्द्र से बता दिया । तत्पश्चात् इन्द्र ने सरमा को वहॉ दूती के रूप मे भेजा। किम्[२] से आरम्भ होने वाली ऋचा के द्वारा पणियो ने अयुग्म ऋचाओ के माध्यम से सरमा से पूछा– तुम कहॉ से आ रही हो? हे कल्याणी! तुम किसकी हो? अथवा तुम्हारा यहॉ क्या कार्य है?

पणियो के ऐसा प्रश्न करने पर सरमा ने उत्तर दिया– मैं इन्द्र की दूती के

---

[१] –वृहददेवता ८.२१–३६

[२] –ऋ० १०.१०८

रूप मे विचरण कर रही हूँ। तुम्हे तथा तुम्हारे गोष्ट और इन्द्र की गायो को ढूँढ रही हूँ, क्योकि इन्द्र गायो के सम्बन्ध मे जानना चाहते है।

असुरगण जब यह ज्ञात हुआ कि यह इन्द्र की दूती है तो असुरो ने सरमा से कहा– हे सरमा! तुम यहॉ से न जाओ। यहॉ हम लोगो की बहन के रूप मे रहो।

हम लोग आपस मे मिलकर अपने–अपने भाग की गायो का विभाजन कर ले अब से पुन हमारे लिए अमित्रवत न रहो। सूक्त[1] की अन्तिम ऋचा तथा सभी युग्म ऋचाओ से सरमा ने कहा– हे पणियो मैं न तो तुम्हारी बहन बनना चाहती हूँ और न ही तुम लोगो का धन ही चाहती हूँ, बल्कि जिन गायो को तुम लोगो ने छिपाकर रखा है, मै उनका दुग्धपान करना चाहती हूँ।

सरमा के ऐसा कहने के पश्चात् पणिया ने दूध लाकर दिया। सरमा ने लालच मे आकर उस आसुरी दूध का पान कर लिया, जो श्रेष्ठ मोहक आनन्दायक तथा बल को पुष्ट करने वाला था। तत्पश्चात् सरमा पणियो के दुर्जेय पुर से चलकर सौ योजनो के विस्तार वाली रसा को पुन पार करके इन्द्र के यहॉ पहुॅची। इन्द्र ने सरमा से पूछा–तुमने गायो को कही देखा है?

सरमा ने आसुरी दुग्धपान के प्रभाव से इन्द्र को नकारात्मक उत्तर दिया। अर्थात सरमा ने कहा–मैने कही गायो को नही देखा है। सरमा के ऐसा कहने पर इन्द्र कुद्ध हुआ और सरमा को पैर से मारा। तत्पश्चात सरमा दूध का बमन करती हुई भयभीत होकर पुन पणियो के पास गयी। अपने रथ पर बैठकर इन्द्र ने सरमा के पदचिन्हो का अनुसरण करते हुए जाकर पणियो को मारा और गायो को वापस लाया।

---

[1] तदेव १० १०८ ११

२३. अभ्यावर्तिन् और प्रस्तोक सार्जन्य की कथा[1]

प्राचीन काल मे वारशिखो के साथ अभ्यावर्तिन् चायमान प्रस्तोक का युद्ध हो रहा था। उस युद्ध मे वारशिखो द्वारा अभ्यावर्तिन् चायमान् तथा सजय के पुत्र प्रस्तोक ये दोनो राजा पराजित हो गये। पराजित होकर ये लोग भरद्वाज के पास पहुँचे।

ऋषि भरद्वाज की स्तुति करते हुए अपना नाम बताने के पश्चात् चायमान और प्रस्तोक ने भरद्वाज से कहा–ब्रह्मन्–हम लोग वारशिखो के द्वारा युद्ध मे पराजित हो गये है।

अत हम लोग आप को अपना पुरोहित बनाकर योद्धाओ को विजित कर सकते है। उसे ही योद्धा जानना चाहिए जो शाश्वत ब्रह्म की रक्षा करता है।

चायमान और प्रस्तोक के ऐसा कहने पर भरद्वाज ऋषि ने हॉ कहकर अपने पुत्र वायु को सम्बोधित किया– हे पुत्र! तुम चायमान और प्रस्तोक इन दो राजाओ को अपने शत्रुओ द्वारा पराभूत न होने जैसा बना दो।

वायु ने अपने पिता के कथनानुसार उनके आयुधो को (शस्त्रो को) पृथक–पृथक ' जी भूतस्य' द्वारा अभिषिक्त कर दिया।

२४. इन्द्र और व्यंस की बहन[2]

'अद्य' वाली ऋचा मे एक इतिहास वर्णित है किसी कन्या ने इन्द्र को स्त्री लिडग से युक्त कहकर सबोधित किया है, क्योकि इन्द्र ने अपने युवा काम के कारण व्यस की ज्येष्ठ बहन उस दानव कन्या के साथ प्रेम किया था। 'अग्निना''

---

[1] वृहददेवता ५–१२४–१२८

[2] वृहददेवता ६ ७६–८०

अश्विनो को सबोधित सूक्त है। इसके पश्चात् इन्द्र को सबोधित दो सूक्त आते है।

तत्पश्चात् आने वाला सूक्त इन्द्र एव अग्नि को सबोधित है। पुन एक सूक्त अग्नि एव इन्द्र को सबोधित है। किन्तु वरूण के सूक्त की ''आ वाम्'' से आरम्भ अतिम तीन ऋचाए अश्विनो को सबोधित है ''इमे और सम्'' यह दो सूक्त अग्नि को सबोधित है। इसके बाद के दो सूक्त इन्द्र को सबोधित है।

कानीत्, पृथु श्रुवस् द्वारा वश अश्व्य को जो कुछ दान मे दिया गया था। इसकी ''आस्'' से आरम्भ ऋचाओ द्वारा स्तुति की गयी है। ''आ ना'' से आरम्भ प्रगाध ऋचाए तथा इस सूक्त की अति ऋचा के पूर्व की एक ऋचा भी वायु को सबोधित है।

२५. इन्द्र और ऋषिगण तप का महात्म्य[1]

ऋषियो के द्वारा स्वर्ग की आकाक्षा करने पर इन्द्र ने कहा– 'हे ऋषिगण! आप लोग महान् तप करे, क्योकि बिना तप किये। इस कष्ट का निवारण नही हो सकता है।'

स्वर्ग की आकाक्षा रखने वाले उन सभी ऋषियो ने तप किया। उग्र तप के परिणामस्वरूप उन लोगो ने सोम पवमान से सबधित ऋचाओ का उच्चारण किया–

जो मन वाणी, शरीर और भोजन से पवित्र होता है वह स्वाध्याय का फल प्राप्त करता है। जो ईर्ष्यालु नही है, जो अध्यवसायी सेवी है तथा तप करने वाले है,

---

[1] वृहददेवता ६–१४०–१४६

वह अपने दस पूर्वजो तथा वशजो को पवित्र करते है। साथ ही अपने को भी पवित्र करते है।

जो ईष्यालु नही जो अध्यवसायी सेवी है तथा तप करने वाले है, वह अपने दस पूर्वजो तथा वशजो को पवित्र करते है।

पावमानी गायत्रियॉ ही उज्जवल और सनातन ज्योति रूप परम ब्रह्म है, जो अपने अन्त समय मे प्राणायाम करते हुये उनका ध्यान करता है तथा जो पवमान पितरो, देवताओ और सरस्वती का ध्यान करता है, उसके पितरो के समीप दूध, घृत, और जल की धारा बहती है।

सोम को सम्बोधित ११४ सूक्तो वाले इस मण्डल को पवमान मण्डल कहा गया है।

२६. त्रिशिरस् और इन्द्र

त्रित ने अग्नि को सम्बोधित करते हुए "अग्ने" से आरम्भ होने वाले सात सूक्तो का दर्शन किया है, किन्तु त्वष्टा के पुत्र त्रिशिरस् ने 'प्र के तुना' से आरम्भ बाद के सूक्त का दर्शन किया।

उस सूक्त की छ ऋचाये से अग्नि को सम्बोधित है, जबकि 'अज्य से आरम्भ बाद की तीन ऋचाओ से उन्होने एक स्वप्न के अन्त मे इन्द्र की स्तुति की है।

ऐसा प्रसिद्ध है कि असुरो की एक बहन के पुत्र होने के कारण विश्वरूप को धारण कर सकने वाले त्रिशिरस् असुरो का लाभ चाहने की इच्छा से देवों के पुरोहित बन गये।

तत्पश्चात् इन्द्र को यह जानकारी हो गयी कि ऋषि त्रिशिरस् को असुरा न ही देवो के बीच भेजा। तो उन्होने शीघ्रता पूर्वक उसके तीन सिरो को अपने वज्र से काट कर गिरा दिया।

तत्पश्चात् जिस मुख से उसने सोमपान किया था, वह कपिञ्जल बन गया, दूसरा मुख सुरापान के कारण कलविङ्ग बना तथा तृतीय मुख तित्तिर बन गया।

२७. इन्द्र,मरूद्गण और अगस्त्य[1]

प्राचीन वृत्तान्तो के कथन के समय ऋषियो ने कहा कि एक बार आकाश मे भ्रमण करते हुए शतक्रतु मरुतो के साथ गिर गये थे।

इन्द्र ने मरूतो को नीचे गिरा देखकर इनकी तुष्टि की और इन लोगो ने भी ऋषियो के रूप मे इन्द्र सबोधित किया। तत्पश्चात् तप की सहायता से अगस्त्य इनके सवाद से तत्वत अवगत हो गये।

अगस्त्य इन्द्र के लिए एक हवि का निर्माण करके शीघ्रता पूर्वक वहाँ गये और उन्होने 'तनु नु'[2] से आरम्भ तीन सूक्तो द्वारा मरुतो की स्तुति की।

'महशचित्'[3] सूक्त से इन्होने इन्द्र की स्तुति की तथा 'सहस्रम्'[4] ऋचा द्वारा उन्होने मरूतो को वह हवि देने की इच्छा की, जिसे उन्होने इन्द्र के लिए निर्मित किया था।

इन्द्र ने उसके भाव को जानकर 'न'[5] से आरम्भ यह वचन कहा—वास्तव मे न

---

[1] वृहद्देवता, ४ ४६–५५
[2] ऋ०, १ १६६–१६८
[3] ऋ० १ १६८
[4] तदेव० १ १६७ १
[5] तदेव, १ १७० १

तो आगत कल के लिए कुछ है और न आज के लिए कुछ है, जो अभी रहा ही नही, उसे कौन जानता है। दूसरे का मन चचल है हम जो सोचते है वह विनष्ट हो जाता है।

अर्थसचार की अनिश्चितता से मनुष्य का चिन्तन किया हुआ भी विनष्ट हो जाता है, तब अगस्त्य ने इन्द्र से 'कि न'[1] अर्थात यह कहा कि मरुद्गण आपके भ्राता है। मरूतो से सहमत हो शतक्रतु हमारा वध न करे, किन्तु 'कि नो भ्रात'[2] ऋचा मे इन्द्र ने मान्य (अगस्त्य) का उपालम्भ किया।

किन्तु 'अरम्'[3] में अगस्त्य ने क्षुब्ध इन्द्र को शान्त किया है। शान्त करने के पश्चात् अगस्त्य ने मरूतो को हवि समर्पित किया।

चूँकि सोम सवन के समय मरूतो को भी अपने साथ सोम पान करने वाला बनाया, अत इन्द्र को सम्बोधित सूक्तो मे मरूतो की नैयातिक स्तुति ही प्राप्त होती है।

ऋषि ने हृदय से प्रसन्न होकर 'प्रति'[4] से आरम्भ दो सूक्तो द्वारा पुन पृथक् रूप से मरूतो की स्तुति की, किन्तु बाद के छ सूक्तो द्वारा इन्द्र की ही स्तुति की गयी है।

२८. अग्नि के पलायन की कथा

ऐसी एक श्रुति प्रसिद्ध है कि वैश्वानर, अग्निगृहपति, यविष्ठ पावक और अग्नि सह सुत आदि भ्राताओ के वषट्कार द्वारा छिन्न भिन्न होने पर अग्नि सोचीक देवो के पास से चले गये । तत्पश्चात् वह वसुओ जलो और वनस्पतियो मे प्रवेश कर गये।

---

[1] तदेव १ १७०,२
[2] तदेव, १ १७०,३
[3] तदेव, १ १७०,४
[4] वृहददेवता ७ ६१ ८१

हव्य वाहन अग्नि नष्ट हो जाने के पश्चात असुरगण प्रकट हुए। युद्ध मे असुरो का वध करने के पश्चात् देवगण अग्नि की खोज मे इधर उधर भटकने लगे। तब यम और वरूण ने उसे दूर से देख लिया। वह दोनो उसे अपने साथ लेकर देवताओ के पास गये। अग्नि को देखकर देवो ने कहा– "हे अग्नि! हमारी हवियो को वहन करो, हमसे वर ग्रहण करो, हे चित्रभानु! हमारी सेवा करो जिस पथ से देवगण गये है। उस पथ को तुम श्रेष्ठ भाव से स्वयं सुगम बनाओ। देवो के ऐसा कहने पर अग्नि ने उत्तर दिया– "आप सब देवो ने मुझसे जो कुछ कहा है, उसे मैं करूँगा मुझे पञ्चजन का हाता बनाये। शालामुख्य, प्रणीत, गृहपति के पुत्र, उत्तर दक्षिणाग्नि इनको पञ्चाग्नि माना गया है।

यास्क और औपमन्वय ने मनुष्यगण, पितृगण देवगण, गन्धर्वगण सर्पगण, राक्षसगण, असुरगण अथवा गन्धर्वगण, पितृगण देवगण, असुरगण यक्ष और राक्षसगण इन्हे ही पञ्चजन माना है।

शाकटायन् के विचार से यह चार वर्ण और पॉचवे निषादगण हैं। फिर भी शाकपूणि का विचार है कि यह चार ऋत्विज और यजमान हैं। इन्हे (ऋत्विजो को) होतृ, अध्वर्य, उद्‌गातृ और ब्रह्मन् कहते है।

आत्मवदियो के कथनानुसार यह चक्षु, श्रोतृ, मन, वाच् और प्राण हैं। ऐतरेय ब्राह्मण में इन्हे गन्धर्व और अप्सराये, देवता, मनुष्य और पितर, तथा सर्प कहा गया है, साथ ही अन्य पार्थिव जीवो तथा अन्य देवो को भी (इनके अन्तर्गत सम्मिलित किया गया है) जो यज्ञ भाग प्राप्त करते है। मुझे दीर्घायुष्य और विविध हवियॉ प्राप्त हो तथा मेरे ज्येष्ठ भ्रातागण प्रत्येक यज्ञ मे सुरक्षित रहें और प्रयाज तथा अनुयाज, घृत और सोम यज्ञ के बलि–पशु के देवता हम ही हों तथा यज्ञ के देवता भी हम ही हो।

"तवाग्नेयज्ञ"[1] शब्दो द्वारा इसकी स्वीकृति दी गयी और वह स्वीकृति बन गयी । उसे तीन सहस्त्र तीन सौ उन्तालिस देवो ने सब प्रकार का वर दिया। अपने अडगो को हिलाते हुये भ्राताओ सहित प्रसन्न हुए और अतन्द्रित होकर यज्ञो मे होता का कार्य सम्पन्न करने लगे।

आगे चलकर उनकी अस्थियॉ देवदारू वृक्ष बन गयी, उनका मेदा और मास गुग्गुल, उनके स्नायु, सुगन्धित तेजन और उनका शुक्र रजत और कचन। उनके शरीर के रोग काश,उनके केश, कुश, उनके नख कूर्म, उनकी अतडियॉ अवका, उनकी मज्जा बालू और शर्करा तथा उनके रक्त और पित्त गेरू आदि जैसी विविध धातुये बन गये। इस प्रकार "महत्" से आरम्भ तीन सूक्तो[2] मे अग्नि और देवताओ का वार्तालाप वर्णित है।

२६. देवापि की कथा

कुरू वशीय राजा ऋषिषेण के दो पुत्र देवापि ज्येष्ठ और शातनु कनिष्ठ थे, किन्तु राजकुमार देवापि त्वचा दोष से पीडित था। राजा ऋष्टिषेण का स्वर्गवास होने के पश्चात उनकी प्रजा ने उन्हे राज्य दिया, किन्तु एक क्षण विचार करके उन्होने अपनीं प्रजा से कहा–

"मै राज्य के योग्य नही हूँ, शान्तनु ही तुम्हारा शासक हो।" इससे सहमत होकर उनकी प्रजा ने राजा के रूप मे शान्तनु का राज्याभिषेक किया। कुरु के वशज चले गये। तत्पश्चात् उस राज्य मे पर्जन्य ने बारह वर्षो तक वर्षा नही की। परिणामस्वरूप अपनीं प्रजा के साथ शान्तनु देवापि के पास आये और उस धर्म व्यतिक्रम के लिये उनका प्रसादन किया तत्पश्चात् अपनीं प्रजा सहित उन्होंनें देवापि

---

[1] ऋ०, १० ५१ ६
[2] ऋ०, १० ५१ ५३

को राज्य देना चाहा एतदर्थ शातनु द्वारा विनम्रता पूर्वक निवेदन करने पर देवापि ने उत्तर दिया–

मै राज्य के योग्य नही हूँ, क्योकि त्वचा दोष से मेरी शक्ति क्षीण हो गयी है। हे राजन्! मैं स्वय वर्षा के लिए तम्हारे यज्ञ पुरोहित का कार्य करूँगा। तदनन्तर शतनु ने देवापि को अपना पुरोहित नियुक्त करते हुए उनसे ऋत्विज के रूप मे कार्य करने के लिए कहा। इस प्रकार देवापि ने यथा–विधि वर्षा कराने वाला कर्म सम्पन्न किया और उसने "वृहस्पतेपति"[1] ऋचाओ से बृहस्पति का यज्ञ किया। इस समय जातवेदस् ने उसे इस सूक्त की 'दधामते द्युमती वाचम् आसन्"[2] ऋचा का बोध कराया। फलत प्रसन्न होकर बृहस्पति ने देवापि को दिव्य वाणी प्रदान की तथा इससे उन्होने वर्षा कराने के लिए चार ऋचाओं[3] से देवो की और शेष ऋचाओं[4] स अग्नि की स्तुति की। इस प्रकार शान्तनु के राज्य मे वृष्टि हो गयी। प्रज धन्य–धन्य से सम्पन्न हो गयी।

३०.सप्त वध्रि की कथा[5]

ऐसी श्रुति है कि भरत वशीय राजा अश्वमेध पुत्र विहीन था। पुत्र प्राप्ति के लिए उसने ऋषि के सहयोग से अनुष्ठान प्रारम्भ किया। परन्तु सात बार वह इस अभिप्राय मे असफल रहा। अत अन्ततोगत्वा आठवी बार भी विफल हो जाने पर उस ऋषि को वृक्षद्रोणी मे रखकर एक गर्त मे फेक दिया। वहॉ वह रात्रि भर पडा रहा। ऋषि ने वही पडे रहकर अश्विनौ[6] सूक्तो के माध्यम से शुभस्पति(प्रकाश के अधिपति) की स्तुति की। तत्पश्चात् उस ऋषि को गर्व से ऊपर उठाते हुए मरूत्

---

[1] ऋ०, १० ६८,१–३
[2] तदेव, १० ६८,२
[3] तदेव, १० ६८,४–७
[4] तदेव १० ६८ ८–१२
[5] वृहददेवता, ५.८२–८६
[6] ऋ०, ५.७८

देवताओ नें उसे सफल कर दिया। इस प्रकार राजा की चिर प्रतीक्षित मनो कामना पूर्ण हो गयी। आगे चलकर ऋषि के द्वारा द्रष्टमत्र निकलते हुए गर्भो के लिए आमन्त्रण स्तुति के रूप मे प्रयुक्त होने लगे।

३१.चायमान और प्रस्तोक की कथा[१]

प्राचीन काल की बात है। कि अभ्यार्तिन और साज्र्जन्य ने वारशिखो को विजित करके अपने गुरू भरद्वाज को प्रचुर मात्रा मे धन प्रदान किया पर इन्द्र द्वारा देखे जाने पर भरद्वाज और गर्ग ने 'दयान्'[२] और 'प्रस्तोक'[३] से आरम्भ होने वाली ऋचाओ द्वारा उसके दान की स्तुति करने लगे।

'दयान् अग्ने'[४] ऋचा द्वारा ऋषि अपनी ओर से उसके दान की स्तुति करने लगे और स्वय ही प्रदान की गयी वस्तुओ का उल्लेख करने लगे।

जिन देवताओ का इन सूक्तो मे प्रसगात्मक वर्णन हुआ है। उन्ही को रथीतर ने सूक्त भाक् माना है।

३२. अगस्त्य एव वशिष्ठ का जन्म [५]

एक बार मित्रावरूण देवताओ ने एक यज्ञ मे रूपसी उर्वशी को देख लिया। वे उसके ऊपर इतने आकृष्ट हुए कि उनका वीर्य स्खलित हो गया । उनका वीर्य एक कुम्भ मे गिर गया तथा रात भर वही पडा रहा। उस स्थल पर दो वीर्यवान् तपस्वी ऋषि अगस्त्य एव वसिष्ठ उत्पन्न हो गये। चूँकि वीर्य विविध रूपो से स्थल, कुम्भ और जल मे गिरा था, अत ऋषि श्रेष्ठ वशिष्ठ स्थल पर अगस्त्य कुम्भ से

[१] वृहददेवता, ५/१३६–४२
[२] ऋ० ६ २७ ८
[३] तदेव ६ ४७ २२
[४] तदेव, ६ २७ ८
[५] वृहददेवता, ५ १४६–१५७

तथा द्युतिमान् मत्स्य जल से पैदा हो गये। उस समय महा यशस्वी अगस्त्य खूँटे के आकार के समान होकर उदित हुये थे। एकमान से सीमित किये जाने के कारण उनका मान्य नाम भी पड गया।

कुछ लोग कहते है कि कुम्भ से नापने का कार्य किया जाता है तथा कुम्भ से परिमाण लक्षित होता है। अत कुम्भ से पैदा होने के कारण ऋषि का दूसरा नाम कुम्भ पड गया।

ऐसी कथा प्रचलित है कि जिस समय जलो को ग्रहण किया किया जा रहा था उस समय वशिष्ठ एक पुष्कर(पुष्प) पर खडे पाये गये थे।

पुष्कर पर खडे देखकर विश्वेदेवो ने चारो ओर से उस पुष्कर को घेर लिया। तत्पश्चात् जब वशिष्ट जल से निकले तो वे महान तप करने लगे। वशिष्ठ शब्द की उत्पत्ति श्रेष्ठ कर्म को उत्पन्न करने अर्थ वाली वस् धातु से माना जाता है।

अत इनका नाम इनके श्रेष्ठ गुणो के आधार पर वशिष्ठ पडा ।

ऐसा कहा जाता है कि एक बार तपस्या मे लीन वशिष्ठ ने अन्य ऋषियों के लिये उस समय अदृष्य इन्द्र को देखा था ।

ऐसा देखने पर हरिवाहन इन्द्र ने इन्हे सोमपान को ग्रहण करने के लिये कहा– 'ऋषयो वा इन्द्रम्' ब्राह्मण वाक्य से भी ऐसा स्पष्ट होता है।

३३. वशिष्ठ और वरूण का कुत्ता [१]

किसी समय रात्रि मे सोते समय वशिष्ठ ने स्वप्न देखा कि वह वरूण के द्वार गये है। घर पहुचनें पर उन्होने अन्दर प्रवेश किया। अन्दर प्रविष्ट होनें पर एक कुत्ता भौकता हुआ वशिष्ट पर टूट पडा। काटने के लिए दौडते हुए उस कुत्ते को

शान्त करके उन्होने 'यद् अर्जुन'[2] से आरम्भ दो ऋचाओ द्वारा उसे सुला दिया। ऐसा करने पर राजा वरूण ने उन्हे अपने पाश से आवद्ध कर दिया इस प्रकार आबद्ध हो जाने के पश्चात वसिष्ठ ने अपने पिता वरूण की "धीर"[3] से आरम्भ, बाद के चार सूक्तो की स्तुति करने पर उसके पिता ने उन्हे मुक्त कर दिया।

"ध्रवासु त्वासु" [4] ऋचा का उच्चारण करते ही उसके पाश गिर पडे।

३४. नहुष और सरस्वती की कथा

प्राचीन काल मे अपने को एक सहस्र वर्ष तक के लिए दीक्षित कराने की इच्छा से राजा नहुष इस पृथ्वी पर सभी नदियो से इस प्रकार कहते हुए कि– "मै यज्ञ करने वाला हूँ" इसके लिए या तो पृथक्–पृथक् अथवा द्वन्द्व रूप से अपनी–अपना भाग मुझे प्रदान करो। ऐसा कहते हुए एक रथ पर बैठ कर पृथ्वी पर भ्रमण करने लगे। नदियो ने राजा के ऐसा कहने पर उत्तर दिया–

अत्यन्त शक्तिशाली हम लोग किसी भी प्रकार आपके एक सहस्र वर्ष के यज्ञ सत्र के लिए सभी भाग नही दे सकती है। अत हे नहुष! तुम सरस्वती के पास जाओ, वही तुम्हारे लिए सभी भाग लाने मे समर्थ हो सकती है।

नदियो के ऐसा कहने पर राजा नहुष ने कहा–"ऐसा ही होगा" यह कहकर शीघ्रता पूर्वक सरस्वती नदी के पास गये । वहाँ जाने पर सरस्वती नदी ने नहुष का स्वागत किया और उन्हे दूध और घृत दिया।

राजा के प्रति सरस्वती के इस अद्भुत कार्य की वरूण के पुत्र वसिष्ठ ने दो ऋचाओ[1] मे से प्रथम की द्वितीय ऋचा मे स्तुति की है।

---

[1] वृहददेवता, ६ ११–५
[2] ऋ०, ७ ५५,२–३
[3] तदेव, ७ ८६ ८६
[4] तदेव, ७ ८८ ७

३५.कण्व और प्रगाथ की कथा[1]

घोर ऋषि के दो पुत्र थे कण्व और प्रगाथ गुरू के द्वारा आज्ञा पाकर ये दोनो वन मे रहने लगे। एक बार बन मे प्रवास के वमय प्रगाध अपने ज्येष्ठ भ्राता कण्व की पत्नी की गोद मे सिर रखकर सो रहे थ। कण्व के उपस्थित हो जाने पर भी वे वे वहॉ से उठे नही ।

अत पाप की शडका से क्रुद्ध होकर शाप देने की इच्छा से कण्व ने उन्हे अपने पैर से इस प्रकर जगाया जैसे कि वह अपने तेज से प्रगाथ को भस्म कर देगे। जब प्रगाथ को ऐसा आभास हुआ कि उसके ज्येष्ठ भाई कण्व उस पर क्रुद्ध है, तो वह करबद्ध खडे होकर उन दोनो का अपनी माता और पिता के रूप मे वरण किया।

३६. कपिञ्जल के रूप में इन्द्र [2]

किसी समय इन्द्र स्तुति प्राप्त करने की इच्छा से तीतर पक्षी बन गया। ऋषि के बाहर जाने के समय उस तीतर रूपी पक्षी ने ऋषि के दक्षिण स्थित होकर शब्द किया उस समय गृत्समद् आर्ष नेत्रो से पक्षी के रूप मे इन्द्र को पहचानते हुए "कनिक्रदत्"[3] से आरम्भ बाद के दो सूक्तो [4] से उनकी स्तुति किया।

३७. कपोत नैर्ऋत [5]

प्राचीन काल मे कपोत नैर्ऋत नाम का ऋषि था, जिसने दीर्घकाल तक किया।

---

[1] वृहददेवता, ६ १४०–१४६
[2] तदेव, ४ ६३–६४
[3] ऋ०, २ ४२
[4] तदेव २ ४३ ४३
[5] वृहददेवता, ८ ६७–६८

ऐसी कथा प्रचलित है कि एक वन मे कपोत ने इसके अग्निधान पर अपना पैर रख दिया था, तत्पश्चात् ऋषि आत्महितैषी वाक्यो से "देवा"[1] सूक्त द्वारा कपोत की स्तुति किया।

३८. भूताश काश्यप [2]

प्राचीन काल मे श्रेष्ठ मुनियो के कोई सन्तान नही थी । इसलिए भूताश काश्यप ने सतान की कामना से विविध प्रकार के अनुष्ठानो को सम्पन्न किया।

भूताश काश्यप की पत्नी ने काश्यप से कहा– "आपकी जितनी इच्छा हो मैं उतने पुत्रो का प्रजनन करूँगी, आप केवल देवो की स्तुति करे तत्पश्चात् उनके पास समस्त द्वन्द केवल स्तुति की इच्छा से प्रस्तुत हो गये। उन्हे देखकर उसने एक सूक्त के द्वारा उनकी स्तुति की। अश्विनौ इस सूक्त के सूक्तवाक् देवता है।

३९. राजर्षि, त्रसदस्यु और इन्द्र[3]

ऋग्वेद मे "अदात्"[4] से आरम्भ दो ऋचाओं द्वारा राजर्षि त्रसदस्यु के दान की स्तुति की गयी है। इन्होने ५० बधुये ७० गाये प्रदान की। अश्वो तथा ऊँटो के तीन यूथ और विभिन्न प्रकार के वस्त्र, रत्न, भूरे बैल भी प्रदान किये। इन यूथो को अग्रसर करने के लिए एक अधिपति भी प्रदान किये।

ऋषि ने विवाह करने के पश्चात् मार्ग मे जाते हुए इसका इन्द्र से वर्णन किया तथा "वयम्"[5] से शक्र की स्तुति की। इससे प्रसन्न होकर शचिपति इन्द्र ने कहा, " हे ऋषि! तुम वर मागो इन्द्र के ऐसा कहने पर विनम्रतापूर्वक ऋषि ने उत्तर

---

[1] ऋ०, १० १६५
[2] वृहददेवता, ८ १८–२०
[3] वृहददेवता, ६ ५१–५७
[4] ऋ०, ८ १९ ३६ ३७
[5] तदेव, ८ २१

दिया– हे प्रभो! मैं एक साथ ही ककुत्स्थ जातीय पचास कन्याओ का रमण करूँ और इच्छा पूर्वक अनेक रूप धारण कर सकूँ तथा यौवन, अक्षयरति, शङखनिधि तथा पद्मनिधि मेरे गृह मे सदैव वर्तमान रहे।

४०. विश्वामित्र गाधिन के पुत्र[१]

पृथ्वी पर शासन करने के पश्चात् तप द्वारा ब्रह्मर्षि पद तथा सौ पुत्रो को प्राप्त कर गाधिन के पुत्र ने अग्नि को सम्बोधित "सौमस्य मा"[२] सूक्त का और इसके बाद वैश्वानर को सम्बोधित दो सूक्तों[३] का उच्चारण किया।

४१. विश्वामित्र सुदास् और नदियाँ[४]

ऐसा प्रसिद्ध है कि दस राजाओ के साथ सुदास् का युद्ध हुआ था। उसमे इन्द्र की सहायता से सुदास् ने विजय प्राप्त की। सुदास् ने युद्ध से प्राप्त धन का कुछ भाग विश्वामित्र को दे दिया। विश्वामित्र उस धन को लेकर लौट रहे थे कि मार्ग मे शुतुद्रि एव विपाश नाम की दो नदियाँ पडी। यज्ञ पुरोहित होने के कारण सुदास् के साथ विपाश और शुतुद्रि के सगम पर जाते समय ऋषि ने 'शम्' शब्द द्वारा इन दोनो नदियो को सबोधित किया। चूँकि नदियो मे अथाह जल था अतएव उन्हे पार करना दुष्कर था।

इस प्रकार ऋषि ने ऋग्वेद के कुछ मत्रो के द्वारा[५] नदियो की स्तुति की और उसके प्रत्युत्तर मे नदियो के कुछ मत्रों[६] के द्वारा विश्वामित्र को पार जाने का उपाय बताया। इस प्रकार विश्वामित्र सुदास् द्वारा गृहीत धन को लेकर अपने निश्चित स्थान पर पहुँच गये।

---

[१] वृहददेवता, ४ ६५
[२] ऋ० ३ १
[३] देवता, ३ २, ३
[४] वुहददेवता ४ १०५–१०६
[५] ऋ० ३ ३३ ३ ३ ३३ १०,११
[६] तदेव, ३ ३३ ६, ८,४,१०

४२. विश्वामित्र और वाच् ससर्परीः वशिष्ठों के विरूद्ध अभिचार[१]

वाच् द्वारा कुशिको के अचेतनत्व को दूर कर दिये जाने के पश्चात् विश्वामित्र ने इन कुशिको की सहायता से जमदग्नियो (ऋषियों) का पूजन किया तथा स्वय दो ऋचाओं[२] के द्वारा स्तुति की। विश्वामित्र ने अन्य ऋचाओं[३] द्वारा घर जाते समय गाडी के अडगो और बैलो की स्तुति की। तत्पश्चात् घर जाकर विश्वामित्र ने स्वय ही इन सब वस्तुओ को रख दिया। इसके बाद विश्वामित्र ने ऋग्वेद की कतिपय ऋचाओं[४] से वशिष्ठ के प्रति अभिचार प्रारम्भ दिया और वशिष्ठ को पराजित किया।

४३.मित्र वरूण और उर्वशी की कथा[५]

ऐसा प्रसिद्ध है जब दो आदित्यो ने अप्सरा उर्वशी को एक यज्ञ सत्र मे देखा तो उनका वीर्य स्खलित हो गया। और जल से भरे कुभ मे गिर गया जो रात भर वही पडा रहा।

चूँकि यह वीर्य विविध रूपो मे कुभ, जल और स्थल पर गिरा था अत ऋषि श्रेष्ठ मुनि वशिष्ठ स्थल पर उत्पन्न हुए जबकि अगस्त्य कुभ मे और महा तेजस्वी मत्स्य जल मे उत्पन्न हुए। इसमे अगस्त्य मित्र हुए और मत्स्य वरूण।

४४. रोमशा और वरूण[६]

वृहस्पति ने रोमशा नामक अपनी पुत्री राजा भावयव्य(स्वनय) को प्रदान किया। तत्पश्चात् इस घटना को जानकर और अपने प्रिय शखा स्वनय को देखने

---

[१] वृहददेवता, ४ ११६–११८
[२] ऋ० ३ ५३ १५
[३] ऋ० ३ ५३ १७–१२०
[४] ऋ० ३ ५३ २१–२४
[५] वृहद्देवता, ५.१४६–१५२
[६] तदेव, ३ १५६, ४ १–३

की इच्छा से शचीपति इन्द्र तत्काल स्वनय के पास गये। राजा ने उनका हर्षपूर्वक विधिवत स्वागत किया और अडिगरस की पुत्री भी वहाँ आई। हर्षित होकर उसने उन लोगो की चरण वन्दना की। तब इन्द्र उससे मित्र भाव मे कहा, "हे रानी! तुम्हे रोग है अथवा नही ?"

उसने सरलता पूर्वक बालसुलभ उन्हे सबोधित करते हुए 'उपोम'[१] मे अपनी बात कही। इसके पूर्व की ऋचा [२] से सात्वना देते हुए राजा हर्षित हुए। तब उसने एक पतिव्रता की भॉति अपने पति का अनुगमन किया।

४५ ऋणचय को वभु का दान[३]

कुछ लोगो का कहना है कि अत्रि ने ऋग्वेद के कुछ सूक्त[४] राजाओ को सबोधित किया, क्योकि कोई व्यक्ति अपने को स्वय कुछ नही दे सकता, जबकि ऋषि ने राजा से दान ग्रहण किया था। ऋणचय ने अत्रि के पुत्र वभ्रु को उसने उस सोम यज्ञ के ऋत्विज् के रूप मे चुना जिसमे एक सहस्र दक्षिणाऐ प्रदान की गयी। अत वभ्रु ने ऋणचय के लिए यज्ञ किया। और रसमो[५] के राजा ने उन्हे चार सहस्र चार सौ गाये और एक सुवर्णयज्ञीय पात्र विशेष दिया[६] और उन्होने प्रवर्ग्य के लिए सुवर्ण यज्ञ पात्रो को प्राप्त किया। इन्हे प्राप्त करके जाते हुए मार्ग मे ऋषि मध्यम अग्नि तथा इन्द्र ने प्रश्न किया और उन्होने उन सबका भद्रम्[७] से आरम्भ चार ऋचाओ द्वारा वर्णन किया।

---

[१] ऋ० १ १२६–७
[२] तदेव, १ १२६ ६
[३] वृहद्देवता, ५ ३२ ३६
[४] ऋ० ५ ४१–५१
[५] तदेव ५ ३० १४
[६] तदेव, ५ ३० १५
[७] ऋ० ५ ३० १२–१५

४६. अत्रि की दान स्तुति[१]

ऋग्वेद मे "यत् त्वा सूर्य"[२] से आरम्भ पॉच ऋचाओ मे अत्रियो के कर्मो का कीर्तन है । कुछ लोग कहते है कि 'अनस्वन्ता'[३] से आरम्भ अग्नि को सबोधित सूक्त मे दान से तुष्ट होकर स्वय अत्रि ऋषि ने इन राजर्षियो की प्रशसा की है।

राजा त्रयरूण ने दस हजार तीन सौ बीस गाये और दो बैलो सहित एक सुवर्ण रथ अत्रि को दिया। अश्वमेध ने सौ बैल और त्रसदस्यु प्रचुर धन दिया।

४७. भरद्वाज की उत्पत्ति[४]

अङिगराऋषि के पुत्र वृहस्पति हुए। इनके पुत्र का नाम भरद्वाज था। इन्हें विदधिन् कहा जाता है। इन्हे मरूतो का गुरू कहा जाता है। इस प्रकार ये अङिगरा के पौत्र के रूप मे वर्णित हैं। ऋग्वेद के छठे मण्डल के द्रष्टा ऋषि भरद्वाज एव उनके पुत्रगण कहे गये है।

४८. शश्वती की कथा

अङिगरस की पुत्री शश्वती 'अन्वस्य स्थूरम्'[५] ऋचा में शश्वती ने स्त्री के रूप मे रहते हुए अपने पति की स्तुति की है।

ऋषि ने उस आसङ्ग को पुन. पुरूष बना दिया,[६] जो स्त्री हो गया था। 'स्तुति' से आरम्भ चार ऋचाओं[७] मे आसङ्ग ने स्वय अपने ही दान का कीर्तन किया है।

---

[१] वृहद्देवता ५.२८–३२

[२] ऋ० ५.४०.५६

[३] तदेव ५.२७

[४] वृहद्देवता ६.४०–४१

[५] ऋ० ८.१–३४

[६] ऋ० ८.१

[७] तदेव, ८.१.३०–३३

४६. इन्द्र के पुत्रवधू की कथा[१]

इन्द्र की पुत्रवधू ने देवताओ को आया हुआ देखकर किन्तु यह देखकर कि यज्ञ के लिए शक्र(इन्द्र) नही आये। उन्हे इन्द्र को परोक्ष रूप से सबोधित किया। "मेरे श्वसुर नही आये है, यदि आये तो अन्न का भक्षण और सोम का पान भी करे।"[२] उसके इस वचन को सुनकर वज्रधर इन्द्र उसी समय आये। और उत्तर वेदि पर खडे होकर उच्च स्वर से सरोस्वत्[३] कहा।

५० राजा मित्रातिथि की कथा[४]

ऐसी प्रसिद्धि है कि राजा मित्रातिथि की मृत्यु पर कवष एलूष ऋषि ने "यस्य से आरम्भ चार ऋचाओ[५] के द्वारा मित्रतिथि के पौत्र उपमश्रवस को सात्वना दी।

५१. सव्य की कथा[६]

सव्य शतर्चिनो मे से एक है जो इन्द्र के ही एक रूप हैं। इन्द्र के समान पुत्र प्राप्ति की कामना करने वाले अडिगरस ऋषि के योग बल के परिणामस्वरूप स्वय इन्द्र ही सव्य के रूप मे उनके पुत्र बनकर उत्पन्न हुए थे।

---

[१] वृहद्देवता ७ ३०–३२
[२] ऋ० १० २८ १
[३] तदेव १० २८ २
[४] वृहददेवता ७ ३५–३६
[५] ऋ० १० ३३ १–६
[६] वृहद्देवता ३ ११३–११७

पञ्चम अध्याय

निरुक्त में वर्णित कथाएँ

निरुक्त में वर्णित कथाएँ

१ दिव्य त्वष्टा, दध्यञ्च और मधु की कथा

मैक्डानल के अनुसार त्वष्टा नाम से अनेक बार उल्लिखित देवता महत्त्व की दृष्टि से सविता के पश्चात् आता है । ऋग्वेद सहिता मे इसके नाम का ६५ बार हुआ है त्वष्टा के लिए अलग से एक भी सूक्त समर्पित नही है।[१] त्वष्टा धुंधले स्वरूप वाले वैदिक देवो की श्रेणी मे है।[२]

यास्क ने त्वष्टा को माध्यमिक कहा है। इसलिये इसे निघण्टु मे माध्यमिक देवताओ के साथ सकलित किया गया है।[३] आचार्य शाकपूणि इसे पार्थिव अग्नि मानते है।

यास्क ने इसके तीन निर्वचन किये हैं–

१ तूर्णमश्नुत इति नैरुक्ता ।

२ त्विषेर्वा स्याद् दीप्तिकर्मण ।

३ त्वक्षतेर्वास्यात् करोतिकर्मण ।[४]

- नैरुक्त कहते है कि यह अपने भक्ष्य पर शीघ्र ही फैल जाता है, या उसका भक्षण कर डालता है। आग सहसा फैलती है जहॉ ईंधन मिलता है उसे पूर्णरूप से सहसा/शीघ्रता पूर्वक खा जाती है।

- यह दीप्त होती है, प्रकाशित एवं प्रज्जवलित होती है।

---

[१] वैदिक मैथलोजी मैक्डानल, पृ०३०३
[२] तदेव, पृ० ३०७
[३] तदेव, ८ १४
[४] तदेव, ८ १३

◆ तीसरा निर्वचन वैदिक स्वरूप को प्रकाशित करता है–यह करना अर्थवाली त्वक्ष् से निष्पन्न है। ऋग्वेद सहिता मे त्वष्टा के पुरूषविध वर्णनो मे हाथ को छोडकर और किसी अग का उल्लेख नही मिलता है।

त्वष्टा के स्थान के बारे मे निश्चित् रूप मे कुछ कह पाना बहुत कटिन है। ऋग्वेद सहिता मे त्वष्टा को सोमपान के लिये बुलाया गया है[1]। अथर्ववेद सहिता मे इसे सोम से भरे कलश को धारण करने वाला बताया गया है[2]।

मैत्रायिणी सहिता मे इसे द्युलोक और पृथिवी लोक के मध्य अर्थात् अन्तरिक्ष मे जाता हुआ कहा गया है।[3]

उपर्युक्त आधार पर यह कहा जा सकता है कि त्वष्टा सोमपायी इन्द्र के लोक (अन्तरिक्ष) का ही देवता है। सम्भवत इसीलिये यास्क ने इसे माध्यमिक देवताओ मे रखा है।

व्युत्पत्ति की दृष्टि से त्वष्टा त्वक्ष् से निष्पन्न है। सम्पूर्ण सहिता और ब्राह्मण साहित्य मे इसका कोई आख्यात् रूप प्रयुक्त नही हुआ है। यास्क ने त्वक्ष को कृ के अर्थवाला बताया है। अवेस्ता मे यह थ्वक्ष् (मेहनत से करना) और भारोपीय मे त्वेक रूप मे है।[4]

मैक्डानल का कथन है कि अर्थ मे यह तक्ष का समानार्थक दीख पडता है[5] **अस्मा इदु त्वष्टा तक्षद् वज्रम्**[6] ऋग्वेद सहिता मे तक्ष् का प्रयोग बनाना अर्थ मे हुआ है। फलत त्वष्टा का अर्थ निर्माता या तक्षक (तराशने वाला) प्रतीत होता है।

---

[1] ऋ० १२२६,६५,६

[2] अ०स०, ६४६

[3] मै० स०, ४,१४६

[4] डा० सिद्धेश्वर शर्मा, पृ०४५

[5] वैदिक वेदशस्त्र, मैक्डानल, पृ० ३०७

[6] ऋ० स०, १६१६

२. पुरूरवस् और उर्वशी की कथा।[1]

निघण्टु मे उर्वशी पद सकलित है।[2] उसकी व्याख्या करते हुए यास्क ने निरूक्त मे लिखा है–

"उर्वश्यप्सरा उर्वभ्यश्नुत, अस्म्यामश्नुत, उरूर्वावशोऽस्या।"

अप्सरा का निर्वचन करते हुए वे लिखते है–

"अप्सरा· अप्सारिणी। अपि वाप्स इति रूपानाम।

. तद्रा भवति रूपवती, तदनया ५५ त्तमिति वा तदस्यै दत्तमिति वा।"[3]

इससे निम्न दो बाते विदित होती है–

१ उर्वशी रूपवती है। रूप रुच् से निष्पन्न माना है।[4] रुच् का अर्थ चमकना, दीप्त होना है। अत उर्वशी चमकीली है।

२ अत्यधिक व्याप्त होने वाली है। प्रत्यक्षत इन दोनो विशेषताओ से युक्त तत्त्व विद्युत् है। इस प्रकार निर्वचन से भी अर्वशी अन्तरिक्ष स्थानीय देवता सिद्ध होती है।

ऋग्वेद संहिता मे उर्वशी का अत्यधिक मानवीकरण रूप उपलब्ध होता है। वहा यह पुरुरवस ऐल की प्रेमिका के रूप मे वर्णित है। ऐल पुरुरवस् का ऋग्वेद सहिता मे उर्वशी के द्वारा परित्यक्त अतएव व्याकुल विरही प्रेमी के रूप मे वर्णन हुआ है।[5]

---

[1] श० ली० एजेज

[2] नि०, ४ २ ४७

[3] नि० ५ १३

[4] तदेव, २ ३

[5] ऋ०स०, १० ६५

व्युत्पत्ति की दृष्टि से पुरूरवस् का अर्थ होता है–अत्यधिक शब्दो वाला (पुरु+रवस्) उर्वशी मे भी वशी शब्दार्थक वाश् ही व्युत्पन्न है।

पुरूरवस् को ऐल (इला का पुत्र) कहा जाता है। इला को घुतहस्ता एवम् घृतपेदी कहा गया है।[1]

नदी सहित उर्वशी के प्रसग मे एक बार 'इला' का वर्णन हुआ है।[2]

यास्क ने इला को अन्तरिक्ष स्थानीय देवियो मे स्थान दिया है। कदाचित् इसके आधार पर ही पुरूरवस् को ऐल कहा गया है अथवा यह भी हो सकता है कि पुरूरवसृ गरजते मेघ का नामकरण हो। इला ऋग्वेद मे दूध और घी के हविष् का मानवीकरण है। मेघ यज्ञ के धूम से बनने के कारण ऐल कहला सकता है।

वस्तुत इनका जैसा भी स्वरूप हो, ऋग्वेद सहिता में ये दोनो परस्पर अत्यन्त आसक्त प्रेमी और प्रेमिका के रूप मे और उर्वशी अप्सरा का रूपवती प्रेमिका (योषा) के रूप मे वर्णन है।[3]

३. गृत्समद् इन्द्र और दैत्यगण

गृत्समद–गृत्स–मदन अर्थात मेधावी तथा आनन्दपूर्ण । गृत्समद मेधावी का पर्यायवाची है। यह स्तुति करना अर्थवाली गृ धातु से व्युत्पन्न है।[4] अथवा गृत्से समूहे मद यस्य स अर्थात समूह मे हर्षित होने वाला वृहद्देवता कम आचार्य शौनक के अनुसार गृत्समद का अर्थ है स्तुति से आनन्दित होने वाला ।

जल की वर्षा जिस अवस्था मे होनें लगती है। उस प्राकृतिक अवस्था का नाम इन्द्र है। गर्जन–तर्जन होते रहने पर जब वर्षा होती है उस अवस्था को

---

[1] ऋ०स०, ७ १६ ८, १० ७० ८
[2] तदेव, ५ ४१ ६
[3] तदेव १० १२३ ५
[4] नि०, ६ ५

ऋषियो मे वृत्र नाम दिया है। देवताओ मे श्रेष्ठ इन्द्र उस वृत्र से युद्ध करके अपने वज्र से उसका वध करते है तब वर्षा होती है। इन्द्र के तीन काम बताये गये है ।

१ जल बरसाना।

२ वृत्र का वध करना।

३ कुछ अन्य पराक्रमयुक्त कर्मो को करना ।

४.कपिञ्जल के रूप मे इन्द्र

अपने विशिष्ट कर्म के आधार पर इन्द्र का कपिञ्जल नाम पडा है, क्योकि प्रचण्डता से क्रन्दन करता हुआ यह वाणी को उसी प्रकार प्रवृत्त करता है जिस प्रकार नाविक नाव को। इसके प्रति कहे गये वाक्य इस प्रकार है–

हे शकुनि! अत्यन्त मङगलमय हो। ऐसा हो कि कोई प्रेत तुझे कही प्राप्त न कर पाये तथा जान न पाये।

उसकी व्युत्पत्ति कल्याणमय स्तुति करना अर्थवाली 'गृ' धातु से हुयी है अथवा गृ– निगरण से। यह कुत्सित वस्तुओं को निगलता है।

नैरुक्तों के अनुसार इसकी व्युत्पत्ति भ्रस्ज् से हुयी है अर्थात यह आप्लावित करता है। किसी पक्षी ने गृत्समद के प्रति जब कि वह किसी विशेष उद्देश्य को प्राप्त करने के लिये आगे बढने को था। रम्भण के स्वर मे उचारण किया। यह कपिञ्जल ही था।[1]

---

[1] नि० ६४ गृत्समदमधेमभ्युत्थित कपिञ्जलोऽभिववाशे । तदभिवादिन्येषा ऋग्भवति।।

५.सरण्यू की कथा

प्राचीन काल मे सरण्यू ने अमर स्त्राी को मर्त्यो से छिपा लिया और उसी के समान रूपवाली दूसरी स्त्री बनाकर उसे सूर्य को दे दिया। सरण्यू ने अश्विन देवो को धारण किया तथा दोनो मिथुनो को त्याग दिया। इस सम्बन्ध मे इतिहास प्रसिद्ध है। नैरुक्तो का कथन है– त्वष्टा की पुत्री सरण्यू ने विवस्वत् आदित्य से यम तथा यमी मिथुनों को धारण किया। वह समान स्वरूप की अन्य स्त्री को स्थानापन्न करके तथा मादा अश्व को ग्रहण करके भाग खडी हुई। उस विवस्वत् आदित्य ने अश्व का रूप धारण करके उसका अनुसरण किया तथा उससे समागम किया। उन दानो से अश्विनौ की उत्पत्ति हुयी। सरण्यू के समान स्वरूप वाली स्त्री से मनु उत्पन्न हुआ।[१]

६. ऋभुओं और त्वष्टा की कथा

यज्ञ के प्रवर्तक ऋभुओ ने परिश्रमपूर्ण कर्मो का उत्साह से सम्पादन करके मनुष्य होते हुये अमरता प्राप्त की । सुबन्धा के पुत्र सूर्य की भॉति देदीप्यमान ऋभुओ ने वर्ष मे वस्तुओ को उनके कर्मो के साथ मिश्रित किया।

अत्यधिक शीघ्रता से कर्मो को समाप्त करके मेघावी ऋभुओ ने अमरता प्राप्त की यद्यपि वे मनुश्य थे। प्रभु सूर्य की भॉति दृष्टिगोचर होते हुए प्रज्ञावान थे। सूर्य की किरणे भी प्रज्ञावान् कहलाती है।[२]

त्वष्टा अपनी पुत्री के विवाह का उत्सव मनाता है। अत यहॉ सम्पूर्ण ब्राह्माण्ड एकत्र है, जिसका विवाह हो रहा है है ऐसी महान विवस्वत् की पत्नी तथा

---

[१] नि०, १२ १०
[२] नि० १२ १०
[३] तदेव, १२ ११

यम की माता अदृश्य हो गई अर्थात रात्रि जो आदित्य की पत्नी है, आदित्य के उदय पर अदृश्य हो जरती है।[3]

७.इन्द्र और मरुद्गण

एक बार अगस्त्य ने इन्द्र को हबि देने का निश्चय करके भी उसे मरुतो को

देने का विचार बनाया तत्पश्चात् इन्द्र जाकर गिडगिडानें लगे– न तो आज है और न ही कल होगा, जो नही हुआ है उसे कौन जानता है? दूसरे का मन अत्यन्त चचल है, जिससे सुनिश्चित वस्तु भी समाप्त हो जाती है। हम सोचते है कुछ होता है कुछ और।[१]

८. भृगु और अङ्गिरस और अत्रि के जन्म की कथा

भृगु ज्वालाओ से निकले। भृगु की उत्पत्ति (भृज् भूँजे जाने पर भी न जले) से हुई है। अङ्गिरा अगारो से निकले। अगार = अक (चिन्ह) देने वाले। उन्होने कहा–

तीसरे व्यक्ति को यही खोजो, उसी से अत्रि उत्पन्न हुए। (अत्रि न तृतीय) अर्थात जो तृतीय नही है (अ+त्रि)।[२]

९.देवापि की कथा

निरुक्त मे देवापि की कथा इस प्रकार मिलती है– कुरूवशीय राजा ऋषिषेण के देवापि और शन्तनु दो पुत्र हुये। छोठे भाई शन्तनु ने अपना अभिषेक करा लिया तथा देवापि तपस्या करने के लगा। इससे शान्तनु के राज्य मे बारह वर्ष तक पानी नही बरसा। ब्राह्मणो ने उससे कहा– पुमने अधर्म किया है। बडे भाई को छोडकर तुमने अभिषेक करा लिया है, इस लिए तुम्हारे यहॉ पानी नही बरसता । शान्तनु ने

---

[१] नि०, ३ १७

देवपि को राज्य देने को कहा । देवापि ने उत्तर दिया – मै तुम्हारा पुरोहित रहूँगा और तम्हारा यज्ञ कराऊँगा ।

देवो की भक्ति देवापि जानने वाले देवापि होता के स्थान पर बैठे। उन्होने ऊपर से नीचे की ओर समुद्र अर्थात वर्षा वाले जल को छोडा।

होता के स्थान के लिए चुने जाने पर पुरोहिप देवापि ने शान्तनु पर कृपा करके ध्यान दिया, तब दानी वृहस्पति ने देवापि को देखकर उसे देवताओ के सुनने योग्य और वर्षा की याचना करने वाली स्तुति प्रदान की की।[१]

१०.त्रित की कथा

किसी समय त्रित गायो को लेकर चारागाह से लौट रहा था। शालावृकी के क्रूर पुत्रो ने उसे कुएँ मे ढकेल दिया। कुये मे पडा हुआ वह देवताओ से प्रार्थना करता है –

मै त्रित कुएँ मे गिर पडा हूँ। कुएँ की ईटे सपत्नियो के समान कष्ट देती हैं। जिसप्रकार चूहे चर्बीदार (अन्न से युक्त=अन्नादि मिश्रण) सूतो को खा जाते है उसी प्रकार हे स्वामिन्! तुम्हारी स्तुति करने वाले मुझको इच्छाये या चिन्ताये कष्ट देती है। हे रोदसी मेरी इस दशा को जानो।[२]

११.सरमॉ–पणि की कथा

पणि नामक असुरो ने इन्द्र की गायो को चुरा लिया था। इन्द्र ने अपनी गायो को खोजने का काम लिए सरमा को सौंपा। इन्द्र द्वारा भेजी गयी देवशुनी (सरमा) ने पणि नामक असुरो से गायो को छुडाने के लिए वार्तालाप किया।

---

[२] तदेव, ३ १७

[१] नि० २ १०

[२] नि०, ४ ६

इन्द्र की गाय को खोजते हुए सरमा पणि के पास गयी और कहा तुम इन्द्र की गायो को लौटा दो। इन्द्र से बैर मत करो पणियो ने उसे लालच दिया पर वह तैयार न हुई।

पुन पणि कहते है कि हे सरमा ! तुम्हे देवताओ ने कष्ट दिया है। इस लिए तुम इधर आई हो तो हम तुम्हे बहन मान लेते है। तुम यहाँ से लौट कर मन जाओ । हम सभी लोग हम सभी लोग मिलकर गायो को बटवारा कर लेगे।

सरमा पुन कहती है–मै तुम्हारी बहन बनना स्वीकार नही करूँगी । गायो को चाहने वाले इन्द्रादि देवता तुम पर आक्रमण कर देगे, तुम दूर भाग जाओ ।[१]

१२. विश्वामित्र, सुदास और नदियाँ

किसी समय विश्वामित्र, ऋषि अपने यजमान राजा सुदास के यहाँ यज्ञ कराकर दक्षिणा मे प्राप्त धन लेकर इस पार आने की इच्छा से विपाशा (व्यास) और शतुद्रि (सतलज) के सगम पर आये। अन्य लोग उनके पीछे–पीछे आ रहे थे। उस समय नदियो मे भयङ्कर बाढ आई थी। इस पार आने की कामना से विश्वामित्र, ने सुगमता से तरणीय बन जाने के लिए नदियो से प्रार्थाना की कि हे नदियो ! "अल्प जल वाली हो जाओ।"

एक क्षण के लिए हे महान जल से पूर्ण नदियो! मेरी मैत्रीपूर्ण प्रार्थना पर अपनी गति को रोक दो । मै कुशिक का पुत्र तथा सुरक्षा का इच्छुक एक उत्तम सूक्त द्वारा तुम्हारा आह्वान करता हूँ।

मेरी मैत्रीपूर्ण प्रार्थना पर प्रवाहित होना छोड दो। मै कुशिक का पुत्र तुम्हारे लिए सोम तैयार करता हूँ। हे महान जल से सम्पन्न नदियो ! एक क्षण के लिए गति को रोक दो ।

---

[१] नि०, ११२५

मै रक्षा के लिए महान शक्तिशाली, अत्युत्तम , गम्भीर बुद्धि से पूर्ण स्तुति के द्वारा तुम्हारा आह्वान करता हूँ। नदियों ने उत्तर दिया –

वज्र को धारण करने वाले इन्द्र ने हमारे मार्गो को खोदा, उसने नदियो को घेरने वाले वृत्र को नष्ट किया। सुन्दर हाथो वाला देवता सविता हमे यहॉ लाये , उसकी प्रेरणा से विस्तृत हुयी कहती है –

हे गायक हम तेरे वचनो को सुनेगे, तू इस रथ मे दूर से आया है। मै स्वय को तेरे लिए नीचे झुकाती हूँ जैसे कि दूध पिलाने वाली मॉ अपने शिशु के लिए नीचे के लिए अथवा जैसे कोई कन्या अपने प्रेमी का आलिङ्गन करने के लिए स्वय को झुकाती है।

षष्ठ अध्याय

बैदिक कथओं की उत्पत्ति एवं उनका संदेश

वैदिक कथाओं का मूल्यांकन एवम् उनका सदेश

साहित्य समाज का दर्पण है । काल विशेष के साहित्य मे तद्युगीन मान्यताये प्रतिविम्बित हो जाया करती हैं। वैदिक साहित्य भी इससे अछूता नही है। ब्रह्मण युग को यदि कर्मकाण्डयुग कहा जाय तो, सम्भवतः अतिशयोक्ति न होगी । परम्परागत यागो की उहापोह, उनके स्वरूप, विविध चिन्तन तथा सगति इन ब्राह्मण ग्रन्थो का विषय बना। यही सगति की भावना ही अधिकाश ब्राह्मण ग्रन्थो के आख्यानो का मूल कारण बनी। यह बात और है कि कुछ ऐतिहासिक, प्रतीकात्मक और दार्शनिक तथा अन्य कथाये भी कर्मकाण्ड के प्रयोजन से ब्राह्मणो में यज्ञो के प्रसग मे विनियुक्त कर ली गई अतएव सारी की सारी कथायें अन्तत: कर्मकाण्डपरक हो गई । आधुनिक युग की बदली हुई परिस्थतियो मे विशुद्ध साहित्यिक चेतना वाले पाठको को न तो मानसिक सतोष ही दे सके और न ही कौतुहलवृत्ति को ही शान्त कर सके, और न ही ये कथाएँ ब्रह्मानन्द सहोदर कहे जाने वाले रस की कल्पनामात्र अनुभूत करा सके। इसके विपरीत आधुनिक पाठको को ये कथाएँ नितान्त हास्यास्पद प्रतीत होती होंगी। किन्तु इन कथाओ का अपना एक मूल्य है, कि इनके अध्ययन से हम तत्कालीन मानव के मानसिक तथा मानव के मानसिक स्तर तथा सामाजिक एव धार्मिक परिस्थितियो से अवगत हो सकते है। आज के युग मे इन कथाओ के अध्ययन का यही प्रयोजन है। इतना ही नही यही कथाएँ परवर्ती लौकिक साहित्य की आधारशिलाएँ है। इसदृष्टि से भी इनके अध्ययन की आवश्यकता है। इन कथाओ के अध्ययन एवं मूल्याकन के सम्बन्ध मे इतना अवश्य अपेक्षित है कि इनका मूल्याकन आधुनिक मानदण्डों की दृष्टि से नहीं अपितु तद्युगीन आधार पर होना चाहिए। इन्हे आधुनिक साहित्यिक कसौटी पर कसना इतिहास के प्रति भारी भूल होगी।

शतपथादि ब्राह्मण ग्रन्थो मे वर्णित कथाओ को दार्शनिक, ऐतिहासिक एव सृष्टि प्रक्रिया सम्बन्धी तथा ऐतिहासिक इन तीन वर्गो मे रख सकते है। इनसे तत्कालीन इतिहास दार्शनिक चिन्तन के विकास तथा धार्मिक मान्यताओ का भी अच्छा ज्ञान प्राप्त होता है। साथ ही साथ आधुनिक साहित्य का रूप जिसे हम आज देखते है अपने मूल रूप मे सहिताओं और ब्राह्मणो की विविध कथाओ मे ही समाविष्ट है। इस दृष्टि से भी इनके विकास क्रम का अध्ययन अति रोचक होगा। सहितागत और ब्राह्मणगत कथाओ मे सम्वाद तत्व तो इतने सुन्दर ढग से उपन्यस्त है कि परवर्ती साहित्य मे इतना विकास असम्भव नही तो दुर्लभ अवश्य है। वैदिक साहित्य मे रूपक का प्राधान्य और साथ ही अतिशयोक्ति की प्रकृति अवश्य दृष्टिगत होती है। किन्तु इन आख्यानो को मानवीय मूल्यों से वचित रखना कथमपि न्यायोचित नही होगा।

वैदिक कथाओं का संदेश

वैदिक कथाओ के माध्यम से वैदिक कवि ने अपनी तप पूत ज्ञानरश्मि के आलोक से रजस् एव तमस् की अरण्यानी मे भकटते हुए मानव के अन्धकाराच्छादित जीवन–पथ को आलोकित करने का स्तुत्य प्रयास किया है। कवियो का संदेश है कि–देवता सरल चित्त भोले–भाले मानवो से प्रेम करते हैं। उनके कष्टो को देखकर द्रवित हो जाते हैं। एक ही आह्वान पर दौड पडते है, रक्षा करते हैं, वरदान देते हैं और स्नेह का स्रोत प्रवाहित करते है। वे मानवो के साथ उठते बैठते हैं। इन्द्र, अग्नि, अश्विन, उषस्, सविता और सूर्य के द्वारा दिये गये विविध वर इसके प्रमाण है।

यदि इन्द्र और वृत्र को मानवीय वृत्तियो के प्रतीक मान लेते हैं तो उनका युद्ध मानव मन की सहज दैवी और आसुरी वृत्तियो के सतत सघर्ष का रूपक होगा, जो सर्वत्र सभी कालो में सहस्रों रगमंचों पर एक ही साथ अभिनीत हुआ और

आज भी हो रहा है तथा भविष्य मे भी होता रहेगा। च्यवन का वृत्तान्त जहॉ एक और वाजपेय विधा का रहस्योन्मेष है वही दूसरी ओर नारी के कौतूहल वृत्ति का, पतिपरायणता का, और इनसे बढकर पिता की इच्छा एव आदेश पालन का तथा दूसरो के अपराधो के लिए दूसरो की रक्षा एव मगल कामना के लिए अपने ही जीवन को उत्सर्ग कर देने का जीवन्त उदाहरण है। यदि च्यवन मे वैदिक ऋषि की गरिमा है तो सुकन्या सच्चे अर्थो मे वैदिक नारी है, जिसमे चरित्र की उच्चता है, हृदय की उदारता है। वह पति मात्र को देवता मानती है। वह अपनी सभी इच्छाओं उमगो और स्पन्दनो को दबा देती है। अश्विन कुमारो की अनुकम्पा से च्यवन की यौवन प्राप्ति, सुकन्या के तप का ही फल है। यही कथा गुरूजनों के प्रति अपराध करने के दुष्परिणामो का भी निर्देश करती है। कठोपनिषद् मे वर्णित कथा अतिथि की गरिमा, विश्वास की महिमा, विचारो के निश्चय की दृढता तथा अग्निविद्या के रहस्योद्घाटन का मनोरम निदर्शन है। भारतीय जीवन की मान्यताओ मे अतिथि को इतना गौरव मिला है कि नन्हे से बच्चे की उपेक्षा के कारण तीन रात बिना खाये रह जाने के कारण, मृत्यु के देवता, यमराज को भी बालक नचिकेता को तीन वर देने पडे। नचिकेता मे भी दानशीलता की भावना की पराकाष्ठा है। पिता के द्वारा बूढी तथा दूध देने मे असमर्थ गायो के दान से उसका हृदय दुखी हो जाता है। हृदय की विशालता और परोपकार की भावना से वह अपने शरीर को दान करने की प्रार्थना करता है, एवं आक्रोशयुक्त पिता के आदेश से शरीर को सार्थक बना देने के लिए यमराज के पास जाता है। यमराज के प्रलोभन एवम् उसको छू तक नही पाते है। यम ने तरह–तरह के प्रलोभन अद्भुत् वैभव दिखाये । वश, सम्पत्ति तथा जितनी वस्तुओ की प्राप्ति के लिए दुनिया लालायित रहती है वह उसे सब कुछ देने के लिए उद्यत था। आग्रह केवल इतना था कि नचिकेता मृत्यु सम्बन्धी प्रश्न न पूछे। इस प्रकार की मनोरथ पूर्ति सासारिक जनो के लिए कितनी दुर्लभ वस्तु होती है। परियों के साथ विचरण, उद्यान, वीणा वादन, नृत्य और संगीत लहरी, नचिकेता

चाहता तो असख्य वर्षो तक उन्हे भोग सकता था लेकिन सब ठुकरा दिया। जीवन बीस साल का हो, दो सौ साल का हो, दो हजार साल का हो, नश्वर ही होता है। उसने शान्तिपूर्वक कहा "**तवैव वाहास्तव नृत्यगीते**" । मैं तो मृत्यु का रहस्य ही जानना चाहता हूँ। और अन्तत बालक की श्रद्धाभावना और अडिगता के आगे यमराज को झुकना पडा।

ब्राह्मण के घर पैदा होने से कोई ब्राह्मण नही बनता सच्चा ब्राह्मण तो वही है जो सत्यवादी हो। जाबाला के पुत्र सत्यकाम ने मॉ के पास आकर कहा मै ब्रह्मचारी होना चाहता हूँ किन्तु मुझसे सभी जगह लोग एक ही प्रश्न पूछते है कि तेरा वश क्या है? माता–पिता कौन है? मॉ उत्तर देती है कि, मेरे बच्चे यह तो मुझे भी मालूम नही । जब मै युवती थी मुझे नहीं मालूम कि मैं किस प्रकार गर्भिणी हुई और तेरी मॉ बन गयी। मुझे यह भी ज्ञात नही कि तेरा पिता कौन है? मै तो बस इतना ही जानती हूँ कि मेरा नाम जाबाला है, तेरा नाम सत्यकाम है। तू सत्यकाम जाबाल है। वह गौतम के आश्रम मे गया। आचार्य ने पूछा तुम किसके पुत्र हो? और उसने उत्तर दिया– मुझे कुछ नही मालूम महाराज, मैने अपनी मॉ से भी पूछा था उसने भी वही उत्तर सुना दिया। उत्तर सुनकर आचार्य के मुँह से अपने आप निकल पडा तुम सचमुच ब्राह्मण हो। सच कहने मे तुम्हे जरा भी भय नही हुआ। एक तुम्ही हो जो ब्रह्म विद्या के सच्चे अधिकारी हो।

पुरूरवा और उर्वशी की प्रेमकथा नारी के मातृत्व की उपेक्षा कर उसके विलासिनी रूप को ही सर्वस्व मानने वाले कर्तव्यच्युत, कामातुर मानव के प्रति शक्तिस्रोत नारी की शालीनता का प्रदर्शन प्रथमत कठोर किन्तु परिणामत अति मधुर झिडक है जो विभिन्न युगों मे घटित होती आयी है। पुरूरवा शासन कार्य से उदास, प्रजानुरंजन से विमुख, दिन–रात भोगलिप्सा को शान्त करने मे ही तत्पर किन्तु असफल और अतृप्त, मातृत्व बोध से झुकी हुई उर्वशी की भावनाओ और

इच्छाओ की अवहेलना कर देता है। और अतत उसे उसका दुष्परिणाम भुगतना पडता है।

वशिष्ठ–विश्वामित्र की कथा परस्पर सौहार्द और स्नेह भावना की सूचक है। दोनो ही तप पूत, उर्ध्वरेता और क्रान्तप्रज्ञ कवि है। दोनो मे ही मैत्री का परम साम्राज्य विराजता है। यदि वशिष्ठ मे पृथ्वी की सी क्षमाशीलता है और पर्वत की ऊॅचाई है तो विश्वामित्र में ओज परिपूर्णता, गरिमा और पुजीभूत पौरूष की व्यापनशीलता।

शौनशेपाख्यान अति मधुर वैदिक गीत है। इस कथा का चरैवेति– चरैवेति वाक्य भारतीय सस्कृति का प्राणतत्व है। ऐतरेय ब्राह्मणकार के ये शब्द मानव मात्र को कल्पपर्यन्त प्रगति–पथ पर अग्रसर होने की सत्प्रेरणा प्रदान करते रहेगे।

शुन शेप के आख्यान मे रोहित को प्रेरित करने के लिए प्रस्तुत गीत का अभिप्राय आध्यात्मिक है। . . . .
रोहित शरीर है और इन्द्र उसकी आत्मा। आत्मा का सदेश है कि चलते रहो, चलते रहो। जागते रहने का नाम ही तो जीवन है। चलने वाला ही आत्मा का वरण करता है। कर्म विहीन, बैठा हुआ व्यक्ति पापी है, जघन्य है। आलस्य ही मूर्खता है, वही मरण है और चलते रहना विकास का प्रतीक है। अतएव चलते ही चलो सतत् गति से, विश्वास की दृढता के साथ सकल्प की गरिमा लेकर। चलते–चलते मनुष्य मधु के निर्झर सोमह्रद को पा लेता है।

निश्चय ही शुनशेप मे देवो की गरिमा, उनकी भक्तवत्सलता तथा हृदय मे उद्‌भूत ऋजुता के प्रति अडिग विश्वास है जो अपने आप फूटसा पडता है। विश्वामित्र द्वारा शुनशेप को पुत्र बनाने एव मधुच्छदस् को अधिकार वचित करने की घटना भारतीय सस्कृति मे अनुस्यूत गुणग्राहिता की भावना का जीता जागता चित्र

है। श्रद्धा देव मनु की कहानी भारतीय श्रद्धाभावना और देवता की ऋजुता की प्रतीक है। दध्यड्आथर्वण का आख्यान राष्ट्रीय मगल के लिए जीवन को भी उत्सर्ग कर देने का सदेश देता है। दध्यड्गुरुभावना की पूर्णता के लिए, विद्या की रक्षा के लिए अस्थि तक दे देता है। अरूण वृषजान की कहानी वैदिक गुरुओ की गाथा है। सोभरि काण्व की कथा महान जनो की सगति ही श्रेय है, का चूडान्त निदर्शन है। उषास्ति चाक्रायण का वृत्तान्त अन्न के प्रभाव और महत्व को प्रतिपादित करता है। आत्रेय श्यावाश्व की कथा ऋषि की गरिमा के साथ की कवि साधना की कमनीय अभिव्यक्ति है। गर्भस्थ वामदेव के रूप में भारतीय ऋषि की ज्ञानसम्पत्ति सप्राण हो उठी है। देवापि और शतुन की कथा मे गुरूजन की उपेक्षा का दुष्परिणाम वर्णित है। देवापि मे त्याग और लोक मगल की भावना है। राजगौरव उसकी दृष्टि मे तृण के समान है। अगस्त्य लोपामुद्रा और अन्तेवासी . सवाद मे जहॉ शिष्य मे अपराध को स्वीकार कर लेने की क्षमता है, वही अगस्त्य मे भी क्षमा कर देने की भावना। गुरू को स्वभाव से ही निश्च्छल निष्कपट हृदय मिला है, जो वैदिक ऋषि की अपनी परम्परा प्राप्त निधि है। लोपामुद्रा मे भी जहॉ तपस्या की ऊॅचाई है, वही पर मातृत्व बोझ से झुक जाने की साध भी । वह उसकी पूर्णता के लिए आतुर भी हो उठती है, पति की कामना करती है। कुत्स दिब्य कर्म के लिए अकृत्य कर्म करता है, यज्ञ की रक्षा और देव हित की भावना से दीर्घजिह्वी की हत्या कर देता है। भावयव्य के उपहास पर आतुर रोमशा के वाक्य विचारो के नही, वस्तुत उसके भोले भाले नारी हृदय के उद्गार है। ऋजाश्व और वृकी की कथा भक्त को भगवान की प्रत्येक वस्तु प्यारी होती है, की सूचना देती है। वृकी रूपधारी अश्विनो के रासभ के लिए अधा ऋजाश्व अकृत्य करता है, दूसरे के पशुओ को भी चुरा कर खिला देता है। प्राशित्रहरण की कथा मत्रो की महत्ता का प्रतिपादन करती है। आदर्श मानव, केवल मानव नही देवता या उससे बढकर भी होता है। इस बात का उदाहरण ऋजुओ के देवत्व प्राप्ति की कथा है। उनका चमस् विभाग **सह नाव्वतु**

सह नौ भुनक्तु तथा **तेन् त्यक्तेन् भुजीथा॰ मा गृध॰ कस्यस्विद् धनम्** का सदेश देता है। इतना ही नही त्याग की पराकाष्ठा तो तब होती है, जब वे अपने माता–पिता को अपना यौवन दे देते हैं।

मनुष्य देवता के वश मे नही, देवता ही मानव के वश मे होता है। इस तथ्य को देखना हो तो, वशिष्ठो द्वारा पाशुद्युम्न के यज्ञ से इन्द्र को सुदास के यज्ञ मे बुला लेने की घटना को देखे। सोचकाग्नि उन्हे अपने तीनो भाष्यों को न केवल पुनरुज्जीवत करता है, प्रत्युत उन्हे याग मे भाग भी दिलाता है और आदर्श भाई का सदाचार प्रस्तुत करता है। यम–यमी के सांसारिक प्रलोभनो से विमुख होकर भारतीय मर्यादा की रक्षा करता है। कवष ऐलूष जाति बधनो को तोड ऋषि कोटि मे आ जाता है। दासी और उशिक का पुत्र होकर भी कक्षीवान् मत्रद्रष्टा ऋषि हो जाता है। स्वनय की कन्या के साथ विवाह कर लेता है। उसके सम्मान मे इन्द्र भी अपनी पुत्री वृचया को अर्पित कर देते है। आत्रेयी, अपाला और घोषा की कथाए भक्ति विह्वल नारी के हृदय की निश्छलता और भोलेपन की तथा देवताओ के भक्तप्रेम की प्रतीक है। सोमहरण की कथा मे लोक मगल की कामना है। इन्द्र के द्वारा त्रिशिरस वध और त्रित पर उसका आरोपण पापकर्म, परैरपि यत्कृत तत्तस्य सभाव्यते का अच्छा उदाहरण है। गृत्समद् की कथा मे देवता की भक्तवत्सलता टपकती है। सुबन्धु की कथा मे ऋषियो की जीवन सचारिणी शक्ति का वर्णन है। कण्व और प्रगाथा आख्यान मे नारी की सहज वात्सल्य भावना मातृत्व की लालसा पुरूष हृदय की सकालुता और अतत उसकी उदारता का चित्र है। मरुतो की जन्म कथा मे देवता की दयालुता की मनोरम झाकी है। इन्द्र द्वारा असग को नारी धर्म की शिक्षा मे भारतीय नारी जीवन के प्राण लज्जा का सदेश हैं। ऋभुओ द्वारा तक्षणकर्म करने की घटना भारतीय समाज मे कर्म की महत्ता को प्रतिपादित करती है। मंत्रद्वेष्टा, याग, निदक, वेदार्थदूषक पुत्र भी त्याज्य है।

श्रुति हमे आगे बढते रहने को, चलते रहने को कहती है। चलते–चलते मनुष्य मधु के परम उत्स सोमह्रद को भी पा लेता है, यही वैदिक कथाओ का चरम सदेश है। ऋजु बनो। ऋतानुगामी बनो। श्रेष्ठ का सम्मान करो, सबल बनो और आत्मा का वरण करो, मानव–मानव मे प्रेम हो, प्राणियो मे सद्‌भावना हो, यही इन कथाओ का निचोड है। आसुरी वृत्तियो को कुचल दो, त्याग के साथ भोग करो, देवताओं मे आस्था रखो यही इनका मूलमत्र है।

यह श्रुति सदेश वस्तुत अमृत का निष्कर्ष है। यह वह सोमह्रद् है जिसमे भारतीय ऋषि गोते लगाते है। और अन्त मे श्रद्धा विनत्, आत्म विभोर ऋषि कहने को बाध्य हो उठता है– अपाम सोमममृता अमूमागन्म ज्योतिरविदाम देवान्। किम् नून स्मान्कृणवदरातिः किम् धूर्तिरमृत मर्त्यस्य।

वैदिक देवता मानव के अति निकट है। इनकी सभी क्रियाएं मानव जैसी है। इनमे गुण भी हैं और दुर्गुण भी। स्वय प्रजापति ब्रह्मा अपनी ही पुत्री उषस् के साथ वासना–तृप्ति करते है। सोम गुरु पत्नी तारा का अपहरण कर लेता है। पुरूरवा, आसन्न–प्रसवा उर्वशी के साथ दिन मे तीन बार वासना पूर्ति करता है। इसलिए आदर्श नारी होकर भी उर्वशी वासना के पीछे पागल पुरूरवा को फटकारती ही नही प्रत्युत स्त्रियों को भी मित्रता के अयोग्य और उनके हृदय को सालावृक के समान कठोर बताती है। गन्धर्वो की स्त्री लोलुपता प्रसिद्ध ही है। इन्द्र अहिल्या के जार का अभिनय करते है। प्रजापति वाक् को देखकर स्खलित हो उठते है। फलत· भृगु, अगिरा और अत्रि का जन्म होता है। वृहस्पति ज्येष्ठ भाई उचथ्य की गर्भिणी पत्नी के साथ बलात् सभोग और गर्भस्थ के मना करने पर उसे अधा होने का शाप दे देते है। दीर्घतमा दासी से भी सभोग कर काक्षीवान् को उत्पन्न करते हैं। विश्वामित्र भी अपने पिता के वीर्य से उत्पन्न न होकर पिता के जामाता के द्वारा पत्नी के लिए निर्मित चारू को खा लेने से उत्पन्न हुए थे। सरण्यू का चरित्र भारतीय नारी के

लिए लज्जा की बात है। अगस्त्य उर्वशी को देखकर स्खलित मित्रावरूण के वीर्य से उत्पन्न हुए । इसके अतिरिक्त वध्रिमती सप्तवध्रि असग–शश्वती, सुकन्या च्यवन, अपाला, दिति–इन्द्र, अगस्त्य–लोपा–मुद्रा, इन्द्र–सेना, परावृक्क–कन्याए भावयब्य एव रोमशा प्राशित्र हरण आदि की कथाओ मे भी किसी न किसी रूप मे वासना की गध है। वशिष्ठ वरूण के घर मे चोरी करते है। विश्वामित्र सुदास के धन को चुराकर भागते है। रुद्र भी देवो के धन को चुराते है और दण्ड पाते है। शुनशेप कथा मे माता–पिता द्वारा ही पुत्र के विक्रय और हत्या के सकल्प के दर्शन हो जाते है। दीर्घतमा को उसकी ही पत्नी और पुत्र त्याग देते हैं। दास त्रेतन् उसे मार डालने का प्रयास करता हैं। वामदेव कुत्ते की मास पकाते है। भरद्वाज पणि तथा वृबु से दान ग्रहण करते हैं। इन्द्र यत्र तत्र जिस किसी से भी सोम की याचना करते हैं। कभी–कभी बलात् पी जाते है। एकत और द्वित अपने ही भाई त्रित को कुएं मे गिरा देते है। इन्द्र कृत ब्रह्म हत्या का पाप बेचारे त्रित के ऊपर डाल दिया जाता है। किलाता कुलि के कहने पर श्रद्धा देव मनु पत्नी के आलम्भन को स्वीकार किया।

ये सभी दृष्टान्त मानव के भारतीय समाज के जीवन मूल्यों के नितान्त प्रतिकूल है। तो क्या ये देव हमारे लिए आदर्श हो सकते हैं? क्या इनके आचरण मानव के अन्तर्मन पर श्रद्धा के बीच अकुरित कर सकते हैं? वास्तव मे हमे इनका अधानुकरण नही करना है। देवता वास्तव में मानव मस्तिष्क की ही उपज है। अतएव तत्कालीन समाज और उसके गुण दोष देवो के चरित्र में भी उभर आयें हैं। हमें इन दोषो से पृथक् उनके जीवन के पक्षों को ग्रहण करना होगा। प्रत्येक युग और काल में तत्कालीन समाज की मान्यताएं और अमान्यताए तद्युगीन साहित्य मे आरोपित हो जाती हैं। इसमे किसी का दोष भी नही है। अतएव उनसे घृणा करने की कोई आवश्यकता नहीं है। हम स्वय भले बुरे की परख करें ।

प्रजापति अपनी तीनो ही सन्तानो– देवो, मानवो तथा असुरो को निर्देश देता है– द द.. . द . .। एक उक्षर की धारा में से गगा, यमुना और सरस्वती की तीन अर्थवती धाराए एकाएक सहस्रद्धा फूट पडती है। देवो के प्रति उसका निर्देश है कि दाम्यत–आत्मशासन करो। आत्मशासन जिसका मूल है ब्रह्मचर्य जिसकी शाखा एव प्रशाखा और अमृतत्व जिसका फल है वह दाम्यत अश्वत्थ है। असुरो के प्रति उसका अनुशासन है दयध्वम् दया करो। यह दया धर्म का मूल है। रक्त पिपाशा, हिसा और विद्वेष दया के अभाव की सताने हैं। वह मनुष्यो से कहता है– दान दो, त्याग के साथ भोग करो। केवल अकेले खाने वाला केवल पापी होता है। **केवलाधोभवति केवलाधी**। यह प्रजापति और कोई नही बादलो में चमकती, कडकती विद्युत् है जिसकी चमक कभी–कभी हमारे पाप को इस तरह नग्न करके रख देती है जैसे हमे आत्मबोध कराती हुई सी हमारी कमियो को प्रदर्शित करती हुई सी हमारे लिए दमन, दान और दया की दिशा का सकेत सा कर रही हो। यह दैवी वाक् है। मानो बादल की स्निग्ध गभीर गर्जना प्रजापति के उन अक्षरो को प्रतिवर्ष दोहराती रहती है। एक ही उदार 'द' का पात्र भेद से अर्थ भेद भी हो गया। यही श्रुति की महिमा है।

धर्मात्मा व्यक्ति को चाहिए कि वह देवता और मुनियो द्वारा किये गये कर्मों को न करे और सुनकर उसकी निदा न करें। दूसरो को उलाहना देने से क्या लाभ? उनके आचरण मे देखी गयी बुराइयों को कहने मे कोई हित नहीं जो हम मानवो के लिए शोभन और अनुरूप हो हमे उसे ही करना चाहिए।

वैदिक कथाओं का राष्टीय जीवन में महत्त्व

वेद हमारे जीवन को सर्वथा शीतल करने वाले ऐसे अजस्र प्रवाह है जो अनन्त काल तक मानव मात्र को ऐहिक और पारलौकिक उदात्तता की सम्प्राप्ति की ओजस्विनी प्रेरणा प्रदान करते रहते हैं। वेद हमें श्रृगार बनकर, अग्निमय होकर,

आलोक विखेरने का उपदेश देता है। सदैव चलते रहने को कहता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, राजा, सेनापति और सैनिक, गृहपति–गृहणी और आचार्य सबको समान रूप से उद्‌बुद्ध करता है। कही–कही तो अचेतन नदियो और पर्वतो पर भी चेतना का आरोप कर उनमे सचरण शक्ति डाल देने तक की भी चेष्टा है। जीवन और जगत् से निराश हो दूर भाग जाने का भाव उसमे नही है। वैदिक ऋषि की दृष्टि मे यह ससार अत्यत मनोरम है। अय वैलोक प्रियतम· (अथर्व स० ८/१) और शरीर कही उससे भी अधिक प्यारी है। **'याः वै प्रियतमा तन्वः'** (ऐतरेय ब्राह्मण ४१) यह हमे उत्थान के लिए उत्प्रेरित करता है। **'उत्तिष्ठत् जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत्।'** उठो जगो हे बधु जीवन और प्राण हमे प्राप्त है। अधकार दूर हो गया है । ज्योति ने पदार्पण किया है। आत्म सूर्य की ऊर्ध्व मात्रा के लिए उसने मार्ग खोल दिया है। हम उस अवस्था में पहुॅच गये है। जहॉ आयु ही आयु है।

ऋग्वेद के दशम मण्डल मे सरमा पणि कथा मे सरमा का सदेश भारतीय नीति राजनीति एक कूटनीति का नन्हा सा बीज है जो बाद के साहित्य मे सहस्रधा मुखरित हो उठा। पणियो सरमा से पूछा तू क्यो इधर उधर घूम रही है? तेरा रास्ता कितना दूरवर्ती है? विपरीत दिशा मे गमन करना होता हैं। और तूने नदी के अगाध जल को कैसे पार कर लिया? सरमा ने दृढता से उत्तर दिया– अरे पणियो तुम्हें मालूम नही कि मै इन्द्र की दूती हूॅ। तुम्हारी महान् निधियो की कामना से आयी हूॅ। मेरे अतिक्रमण के भय से रसा भी कॉप उठी और मुझे मार्ग दे दिया। पणियो ने दामनीति से काम लेने की चेष्टा की उससे मित्रता के लिए हाथ भी बढाया और प्रलोभन भी दिया कि आओ तुझे हम तुम्हे अपना मित्र स्वीकार करते हैं। और तुझे अपनी गायों का स्वामित्व भी देते है। किन्तु सरमा ने कहा–जिसकी मैं दूती हूॅ उसकी ओर कोई ऑख भी नही उठा सकता। वह स्वयं शत्रु हंता है। अगाधसलिता नदियॉ भी उसके आगे सिर झुका देती है। यदि तुम लोग बढ़–बढकर बाते करोंगे तो सदा के लिए सुला दिये जाओगे। पणियो ने अबकी दण्डनीति की चाल चली –

जिनको तुम खोजती हुई इस छोर से उस छोर भटक रही हो, बिना युद्ध किये इतनी आसानी से कोई यहॉ से ले नही जा सकता और फिर यदि यही होना होगा तो हमारे तीक्ष्ण आयुध किस दिन के लिये है। सरमा ने इस झासे को भी बृथा कर दिया 'अरे पणियो तुम्हारी बाते नांदानी वाली है, और फिर तुम्हारे शरीर भी बहुत कच्चे किस्म के हैं, तुम्हारे मार्ग भी भी कुटिल हैं । इतना जान लो कि इन्द्र तुझपर कभी दया नही कर सकेगा। पणियो ने फिर भेद की चेष्टा की, देवो ने कौन बडा भला ब्यवहार कर दिया है, तुम अवश्य उनसे सताई हुई हो आओ हम तुम्हे अपनी बहिन कहते और मानते है, तुम हमारी गायो की स्वामिनी बनकर रहो। सरमा उनकी अन्तिम चाल को भी व्यर्थ कर देती है मैं मातृत्वव स्वसृत्व कुछ भी नही जानती । इन सब बातो से मुझे कोई प्रयोजन नही। इसे इन्द्र और अगिरस लोग जाने, उन्होने गायो की खोज मे भेजा है अच्छा हो कि तुम सब यहा से शीघ्र ही भाग जाओ अपनी जान तो बचालो।

इसप्रकार मार्ग की दुर्गमताओ को सहकर, रस को पाकर, विविध प्रलोभनो को ठोकर मारते हुये सरमा अपने लक्ष्य को पूर्ण करती है। उसमें निश्चय की अडिगता है, विश्वास और आत्मसम्मान की सजगता है, और है निर्भीकता पूर्वक लक्ष्य की ओर सतत् गति से बढने की क्षमता इसी आत्मबल व निर्भीकता और अडिगता के सहारे वह स्वामिकार्य को पूर्ण कर, पणियो की सारी चालों को विफल कर उनके दुर्गों में आग लगाकर आदर्श दूती का अभिनय करती है। वह दिखला देती है कि किसी परिस्थिति मे किस प्रकार का आचरण होना चाहिए।

राष्ट्रीय अर्थ में पुरूरवा उर्वशी का पुरूरवा एक दात्रिय राजा है, जिसने अप्सरा उर्वशी को अपनी पत्नी बनाया। प्रजा ने राजा को इसलिए चुना था कि वह दस्युओ से राष्ट्र की रक्षा तथा साम्राज्य की समृद्धि मे दत्तचित्त रहेगा। किन्तु राजा प्रजा की इच्छा के प्रतिकूल पत्नी उर्वशी तथा उसकी सहेलियो के साथ क्रीडा मे

अनुरक्त और विलास–परायण हो चला। वह अपने कर्तव्य को भूल गया, विवाह के चार वर्ष बीत गये। पत्नी गर्भवती हो चली, किन्तु राजा की वासना अतृप्त ही रही वह सदैव उर्वशी के पास रहता। उर्वशी ने उसे प्रजापालन की ओर प्रेरित किया पर असफल रही। सभवत वह पितृ गृह भी चली गयी। पुरूरवा वहा भी पीछे–पीछे लगा रहा और उसके अभाव मे अपने प्राण त्याग का सकल्प कर बैठा। उर्वशी उसे समझाती है कि स्त्री का हृदय भेडिये के समान होता है, वह मित्रता के योग्य नही होती। तुम्हारे मेरे साथ रहने से न तुम्हारा ही कल्याण है, न मेरा ही, न तो बच्चे का और न प्रजा तथा राष्ट्र का ही बच्चा होने पर हम तुम दोनो साथ–साथ रहेगे उसे तब तुम बडे प्यार से खिलाना। और फिर सभवत राष्ट्र कल्याण के लिये राजा को उसकी बात माननी पडती है।

इन्द्राणी तृषाकपि मे इन्द्र राजा है इन्द्राणी उनकी मन्त्रिपरिषद् है। अधिकारी तृषाकपि राष्ट्रीय आय का बहुत बडा भाग स्वय ले लेता है। परिषद उस पर रूष्ट होती है, और राजा से राजा की इन सब विषयो मे सचेत न रहने की शिकायत करती है।

न राजा ही दैवी प्रतिनिधि है, और न तो राज सत्ता ही पैतृक वस्तु। प्रजारजन करने वाला उसे प्रजा की धरोहर रूप मे ही प्राप्त करता है।

राजा का कार्य है, व्यवस्था की स्थापना और बाहय उपद्रवो का शमन। अन्यथा राजा का कोई प्रयोजन नही। देव सर्वत्र असुरो से पराजित हो रहे थे। उन्होने परस्पर विचार किया कि हमारी ये पराजय राजा के अभाव के कारण है। उन्होने सोम को अपना राजा बना दिया। सोम के नेतृत्व मे उन्होंने राष्ट्रीय हित पर आधात करने वाले असुरो पर विजय पा ली। प्रस्तुत कथा शासन की लोकतांत्रिक पद्धति और राजा के कर्तव्यों का सुन्दर निर्देश करती हैं।

राष्ट्रनायक राजा नही वस्तुत उसका पुरोहित तथा अन्य तपपूत एव प्रबुद्ध जन होते है। उसे उनके विचारों का समुचित आदर करना होता है। जब उन्हे समुचित सम्मान नहीं देता तो राष्ट्र का पतन होता है।

गोपायनो सुबन्धु, विप्रबन्धु तथा श्रुतबन्धु का तिरस्कार कर मायावी किलाताकुलि को पुरोहित बनाता है। देवापि संतनु का अतिक्रमण कर राज्य करता है। त्रयरूण अपने पुरोहित वृषजान को अप्रसन्न करता है। सर्वत्र राष्ट्रीय पतन का आरम्भ हो जाता है। उसके निवारण तब होते है। जब मानवीय पुरोहितों एव पुरूजनो को प्रसन्न किया जाता है।

एकता राष्ट्र की आत्मा है, प्राण है, एकता रहित प्रदेश भूभाग मात्र है। आत्मा विहीन अवयव सघात है। उसमे एकता रूपप्राण की प्रतिष्ठा के लिए प्राणो की बाजी लगानी होती है। शरीर का मोह छोडना होता है। देवासुर स्पर्द्धा मे देव असुरो से डर गये कि कही उनके वैमनस्य की सूचना उन्हे न मिल जाय। वे चतुर्द्धा विभक्त हो गये। उन्होने निश्चय किया कि शरीर लोभ का कारण है। उसी की रक्षा के लिए लोग पीछे हट जाते है। उन्होने उसे वरूण राजा के यहॉ रखने का निश्चय किया और वहॉ हममें जो कोई लोभवश ऐसा न करे वह हमारे साथ न चले, उन्होने अपने शरीर को वरूण राजा के यहॉ रख दिया। उसी के प्रतीक रूप में तानूनप्त्र कर्म होता है।

राष्ट्रीय सुरक्षा के अवसर पर राजा की सहायता करने वाला व्यक्ति ही सच्चा राष्ट्र प्रेमी है। और वही सच्चे अर्थो मे सुखी होता है ''जब इन्द्र ने वृत्र को मारा तब सभी देवो ने समझा कि इन्द्र वृत्र को मार नही सका। सभी साथ छोड़कर भाग गये केवल मरूतो ने ही इन्द्र का साथ न छोडा। अतएव उन्हे की यज्ञ में भाग मिला।'' (ऐ० ब्रा० १२ वॉ अध्याय)

गुप्तचर राजाओ की ऑखें हैं। प्रत्येक अधिकारी एव कर्मचारी पर उसकी दृष्टि होनी चाहिए। राष्ट्रीय अर्थ मे वृषाकपि की कथा इसी राजाओ, गुप्तचरो और मत्रियो का पारस्परिक, वैचारिक सामजस्य ही राष्ट्र के कतयावव का मूल है। किरातार्जुनीय कार महाकवि भारवि के शब्दो मे 'सदानुकूलेषु हि कुर्वते रतिम् नृपेष्वमात्येषु च सर्वसम्पद' इन्द्राणी वृषा कपि' कथा राष्ट्रीय हित के इसी तथ्य को उदधोषिका है।

गुरूजनो के अनुशासन का पालन करना राजा का परम पुनीत धर्म है। इसके अभाव में उसे दण्डित और कलकित होना पडता है। इन्द्र देवराज है। जब इन्द्र ने त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप का अपमान किया, वृत्र को मारा, यतियो को गीदडो के सामने फेक दिया, वृहस्पति को फटकारा तो देवो ने इन्द्र को सोमपान से वचित कर दिया था, वेद कालीन राजपुरोहित प्रजाहित का पोषक एव राज्य का सरक्षक है। वह राजा के अभिषेक के समय उसमे अनन्त आकाक्षाओ का विधान करता है। ये जल शिवतम है, सब की औषध है, राष्ट्र की वृद्धि करने वाले है। उसे धारण करके ..इन्ही से प्रजापति ने इन्द्र का , सोम का, वरूण का, यम एवं मनु का– सबका राज्याभिषेक किया था। इन्हीं जलो से तेरा राज्याभिषेक करता हूँ कि तू इस ससार का अधिराज है

तेरी देवी रूपा जननी ने तुझे महान् से भी महान् एवं प्रजाओ पर शासन करने के लिए जन्म दिया।। पूषन् देव के हाथो अग्निवर्चस् द्वारा मै तेरा अभिषेक करता हूॅ, तुझे केवल श्रीयश और अन्नादि प्राप्त हो किन्तु वह उससे शपथ भी लेने मे नही चूकता– जिस रात्रि को तू पैदा हुआ उससे लेकर जिस रात्रि को तू मरेगा, उस क्षण तक जो कुछ तूने लोक मे सुकृत किया या आयु पायी, या प्रजा मिली उस सबको मैं छीन लूॅगा। यदि तूने मुझसे अर्थात प्रजा से द्रोह किया। और राजा भी शका से रहित हो श्रद्धा भाव से शपथ करता है–अगर मै तेरे साथ द्रोह करूँ तो

मुझसे जन्म से मृत्यु तक जो कुछ मैने सुकृत किया है या आयु और प्रजा पायी है उसको तू छीन लेना।

यह है भारतीय वैदिक आर्यजनो की राष्ट्रीय हित चितन भावना की श्रेष्ठता जिसके बल पर विश्व के किसी भी साहित्य मे भारत का मस्तक ऊँचा रखता है। राष्ट्रीय हित सर्वोपरि है। वही सच्चा धर्म है। राष्ट्र हित के लिए उसकी मगल कामना और शक्तिमत्ता के लिए राष्ट्ररक्षा रूप सर्वहुतयाग मे जनता, जीवन और प्राण सबकुछ हवन कर देना चाहिए। दध्यड आर्थवण असुरो से राष्ट्र की रक्षा के लिए अश्विनों को न केवल मधु विद्या और न केवल अपने शिर प्रत्युत अपने अस्थि तक का दान कर देते हैं। वस्तुत· उसका जीवन चरित् राष्ट्रीय इतिहास का अमूल्य रत्न है।

राजसत्ता किसी व्यक्ति पैतृक सम्पत्ति नही है। और न तो राजा दैवी प्रतिनिधि। देवों मे भी राजसत्ता के लिए स्पर्धा हुई, जिसमें इन्द्र विजयी था। राजा अधिकारो का भोक्ता नही, प्रजा के अधिकारो का सरक्षक है राजसत्ता प्रजा की महती सत्ता है। वह उसकी धरोहर है जो राजा के पास रखी जाती है। राजा जब तक उस न्यास को सजोये रहता है तभी तक वह उसके पास रह सकती है अन्यथा राजा को चाहिए कि वह यह धरोहर प्रजा को पुनः लौटा दे। दुष्टरीतु पौंसायन और उसका पुरोहित तभी तक राजपद का अधिकारी है, जब तक वह उस थाती को सँभालने मे समर्थ है। कार्य शक्ति और जनमगल की भावना के अभाव मे प्रजा उन्हे राजच्युत एव वहिष्कृत कर देती है।

पृथ्वी हमारी माता है, हम पृथ्वी के पुत्र हैं माता "भूमिपुत्रोअहम्पृथिव्या·" राजा जब माता पृथ्वी की और राज्यश्री की रक्षा करता है तब तक वह उसके पास रहती है, जब वह भोग विलास रत हो जाता है तो पृथिवी उसका साथ छोड देती है। राष्टीय अर्थ में पुरूरवा उर्वशी की कथा इसी सत्य का उद्घाटन करती है। इन

शाश्वत राष्ट्रीय मूल्यो को ही वैदिक ऋषि ने कथाओं मे उतारा है। कथाये ही किसी राष्ट्र के सुख दु:ख की उसके हर्ष विषाद की अनुभवो भावों और ज्ञान विज्ञान की इतिहास है। इन्हीं कथाओ मे ही राष्ट्रीय जीवन के श्वास–प्रश्वास, स्पदन स्फुरण निमेषोन्मेषु लडखडाने गिरने उठने और पुन चल पडने के असख्य निदर्शन भरे पडे रहते हैं। साहित्य मे सुरक्षित छोटी–छोटी ए कथाये माला मे पिरोई गई अनन्त अमूल्य मणियॉ हैं। हम अतीत से प्रेरणा लेकर वर्तमान को सॅवारते है। तथा भविष्य को नया स्वरूप प्रदान करते है। ये कथाएं शताब्दियो से जनमानस का रजन करती हैं। ये ऐसे स्रोत है जो ऊपर गिरते है। प्रेरणा की स्रोत है। कभी रूक भी जाते है किन्तु फिर दुगने वेग से चल पडते है। इन कथाओ मे कही राष्ट्रीय जीवन के ऑसू विखरे है तो कही उसकी निश्छल मधुर मुस्कान के चित्र है, कही हास्य विनोद है कही गतिमयता है तो कही उसके गम्भीर दार्शनिक चिन्तन। ये समय की शिला पर अकित युग के कठोर सत्य है ये कथाए ही वास्तविक अर्थों मे राष्ट्रीय इतिहास है। इनका अध्ययन ही राष्ट्रीय इतिहास का अध्ययन है। इतिहास में देशकाल के अतिरिक्त शेष सब सत्य हैं वास्तविकता तो यह है कि दोनो एक दूसरे के पूरक हैं। दोनो मिलकर ही सच्चे अर्थों मे इतिहास कहलायेगी। भारतीय इतिहास परमम्परा देशकाल के परे है। वह तो सार्वदेशिक व सार्वकालिक आदर्शों और सत्यो को ही इतिहास मानती है। और इस दृष्टि से वेदमाता मे अपने स्नेहिल आचल मे इतने अधिक रहस्य सजो रखे भारतीय समाज का प्रत्येक श्रद्धालु व्यक्ति इससे आप्यायित होता रहेगा।

वेदमाता के अक मे सुरक्षित इतिहास सस्कृति तथा नवनवोन्मेष के इन्ही तथ्यो को आत्मसात् करने के लिए इन कथाओ का स्वाध्याय आवश्यक है।

वैदिक कथाए एवं उनमे उपलब्ध आध्यात्मिक तथ्य

वैदिक वाङ्मय की परिसमाप्ति प्रायश अध्यात्म मे है। वेदविद्या क्रान्ति दर्शी कवियो और मननशील मनीषियो के तप पूत ज्ञान की अक्षय निधि है। अनुपम आलोक और दिव्यलोक के द्वारा दृष्ट सत्यचित्र है। अध्यात्म परपरा के अनुसार सम्पूर्ण वैदिक कथाए अपने सच्चे स्वरूप में आध्यात्मिक और कही–कही आधिभौतिक एव आधिदैविक अर्थो की प्रतीक हैं। एक ओर यदि इनमें याज्ञिक कर्मों की सगतियो का समावेश है तो दूसरी ओर आधिभौतिक आधिदैवक के साथ ही साथ आध्यात्मिक तथ्यो का उन्मेष भी है याज्ञिक परम्परा के पीछे प्रच्छन्न यह आध्यात्मिक सत्य सामान्य मानव के परे था। कलुषित मानव मन से वाणी के पवित्र आचल पर दावा लगाने की उसकी पवित्रता को धूमिल करने की चेष्टा की, तब वाणी ने भी उससे दूर हट कर श्रद्धा विनत कुछ विरले लोगों के लिए अपने आचल खोल दिए——

उतत्व पश्यन्न ददर्शवाचम् ।
उतत्व श्रृण्वन्श्रृणोत्यनाम्।।
उत त्वस्मै तन्व विससे।
जायैव पत्ये उशती सुवासा ।।   मृ० १०। ७१४ ।।

अनधीतनिरूक्त वेदार्थ ज्ञान रहित व्यक्ति वाणी को देखता हुआ भी उसे नहीं देख पाता। (दूसरा किन्तु अर्थ न जानने वाला) उसे सुनता हुआ भी नही सुनता। किन्तु अर्थग्य के लिए यह अपने अगो को ठीक उसी प्रकार खोल देती है जैसे पति की कामना करती हुई सुन्दर वस्त्रो से अलकृत श्रतुमती पत्नी अपने पति के लिए।

जो वाग्देवता को वस्तुत वही जान सकता है जिसमें उस वाग्देवता का स्वय अर्थज्ञान के बिना वेदो का अध्ययन करने वाला व्यक्ति भारवाही स्थाणु के पुमान किन्तु अर्थज्ञ सारे मगलो का भोक्ता और अतत· वेदज्ञान के कारण विगत् कल्मश होकर स्वर्ग प्राप्ति का अधिकारी बनता है।

एक बार शाकपूणि को गर्व हो गया था कि वह सभी देवताओ को जानता पहचानता है। उसके समक्ष तब एक उभयलिगी देवता प्रकट हुआ। शाकपूणि उसे न जान सका, उसकी मिथ्या ज्ञान गरिमा चूर–चूर हो गयी थी। देवो ने एक बार ब्रह्मा की सहायता से असुरो पर विजय पा ली थी। उनको भी इसी प्रकार का गर्व हुआ था, इन्द्र, अग्नि, वायु सभी सोचते कि मैने ही विजय दिलायी है। उनके सामने यक्ष प्रकट हुआ। सबने उसे अग्नि को जीतने के लिए भेजा। अग्नि उसके पास गया। यक्ष ने पूछा– तुम कौन हो? अग्नि ने कहा मै जातिवेदस् अग्नि हूँ।

यक्ष ने पुन· प्रश्न किया– तुम्हारी शक्ति क्या है? अग्नि ने उत्तर दिया मै सबको जला सकता हूँ। यक्ष ने उसके सामने एक तिनका डाल दिया। अग्नि ने लाख प्रयत्न कर भी तृण को जला न सका वह देवो के पास लौट आया। देवों ने अब पुन वायु को भेजा। यक्ष ने वायु से भी वही प्रश्न किया तुम कौन हो ? वायु ने कहा– मै वायु हूँ मै सबको उड़ा सकता हूँ यक्ष ने उसके समक्ष भी वही तिनका फेंक दिया। वायु ने निरंतर कोशिश की पर वह भी उसे हिला नही सके। वायु भी वहॉ से लौट आया। अंत मे देवों ने इन्द्र को उसके पास भेजा इन्द्र के पास पहॅुचते ही वह यक्ष अन्तर्धान हो गया। अब उसके सामने उमा नामिनी शिव शक्ति प्रकट हुई उसने बताया कि जिसे तुम यक्ष समझते हो वह साक्षात् ब्रह्म हैं। अब तो सभी देवों को अपनी वास्तविक शक्ति का ज्ञान हो गया। वस्तुत· यक्ष को वही जान सकता है जिस पर उमा नाम्नी शक्ति कृपालु हों।

किसी भी देश की पुरा कथाएं तद्युगीन आधुनिक चितन धारा की साहित्यिक अभिव्यक्ति होती है। इन्द्र वृत्र युद्ध की कथा पाप की आसुरी वृत्तियों के दमन करने का रहस्य है। वृत्र पाप रूप है पापम्वै वृत्र· इन्द्र सद्वृत्ति रूप अतएव वृत्र का हन्ता है। वृत्र सद्वृत्ति को भ्रष्ट कर देता है। बुद्धि को मोहित कर देता हैं। वृत्ति ही शक्वर है। वह शिव अर्थात ज्ञान लोक को ढ़के रहता है। वैदिक इन्द्र अध्यात्म अर्थ

मे आत्मा है। इन्द्र से अनुप्राणित होकर ही देवो तथा इन्द्रियो का देवत्व और इन्द्रियत्व है। इसी से इन्द्रदेव देव है। देवाधिदेव है और महादेव हैं।

चत्वारि श्रृगा त्रयौऽस्य पादा
द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य
त्रिधा बद्धौ वृषमो रोरवीति
महादेवो मर्त्या आ विवेश।।

यह वृषभ वस्तुतः आत्मा है। मन , बुद्धि, चित्त और अहकार उसकी चार सीगे हैं। भूत, भविष्यत्, वर्तमान अथवा द्यावा, पृथ्वी और अंतरिक्ष इसके तीन पैर है। ज्ञान और कर्म इसके दो सिर है। सात प्राण ही सात हाथ है। बलिष्ठ वृषभ सत् रजस् तथा तमस् के तीन बधनो से बॅधा है। वृत्र ज्ञान को आवृत्र कर लेता है दिव्यालोकयुक्त आत्म तत्व उसे हटाने के लिए सचेष्ट हो उठता है। यही अजस्त्र चलने वाला देवासुर सग्राम है। वेद में घनाघन. क्षोभणश्चर्षणीनाम् से इसी तुमुल सग्राम का सकेत है। महारथी मानव मन असख्य संकल्पो से सयुक्त देह रूप दिव्य रथ पर बैठकर असुर विजय के लिए आत्मतत्व का आह्वान करता है। और इसी अध्यात्म युद्ध मे विजयी बन जाने का नाम ही अमृतत्व प्राप्ति है।

प्राण ही इन्द्र है, प्राण ही असुर है यही दोनो प्रजापति की संताने है। इन्द्र को जब तक वृत्र रूप अज्ञान के मरने का विश्वास नही हो जाता। तबतक वह उचटा– उचटा सा रहता है अज्ञान रूप वृत्र समाप्त हो जाता है। अच्युतच्युत अनिवारणीयतम् का हन्ता इन्द्र सानन्द विचरण करने लगता है।

यह सब प्राण ही प्राण है। इस प्राण से सब प्राणी प्राणमान हैं। प्राण ही उपासना की वस्तु है। रागादि इन्द्रियॉ उसी की चेतना से अनुप्राणित हैं। प्राण ही सब की सत्ता का कारण है। वृत्र उसके पास पहुॅचते ही चूर–चूर हो जाता

है——— जैसे मिट्टी का ढेला शिलाखण्ड से टकराकर। यह उद्गोथ कथा का संदेश है।

वरूण ऋत का अधिष्ठातृ देव है। त्रिगुणात्मिका प्रकृति उसकी जननी है। इसका फल अमृतत्व है। कुटिलमार्गावलम्बन वरूण के व्रत की अवहेलना है। ऋत विरोधियो को वरूण अपने पास मे जकड लेता है। इसीलिए 'शुनशेप सूक्त' मे ऋषि उत्तम, मध्यम, अधम तीनो पाशो को शिथिल कर देने को कहता है, जिससे कि वह अनागा होकर अदिति की ——— प्रकृति की उपासना मे तत्पर हो जाय। जहॉ पाप है वही निश्रृति है। निश्रृति असत् है, तम् है, मृत्यु है, बन्धन है। इसीलिए वृहदारण्यक मे ऋषि असत् से सत् की ओर, तम् से ज्योति की ओर और मृत्यु से अमृतत्व की ओर जाना चाहता है।

प्रजापति के निरूक्त और अनिरूक्त दो रूप है। निरूक्त अल्प है, मृत्यु है। अनिरूक्त अनन्त एव अमृत है। प्रजापति 'क' है, वही 'ख' भी है। 'क' पूर्ण आनन्द है, और 'ख' शून्य ऊर्ण नाभि के तागों की तरह उसी की कुक्षि मे सृष्टि और विलय दोनो है। प्रथम केन्द्र है, शेष उसी की परिधि में है। पर दोनो ही पूर्ण हैं, एक पूर्ण से दूसरे पूर्ण की व्यक्ति होती है, फिर भी दोनो के दोनों, पूर्ण ही रहते हैं। इसका सज्ञान ही भूमा है। भूमा ही सुख है– भूमा वैसुखम्। वही अमृत है। वही विशिष्ट जिज्ञासा की वस्तु है। वह सदेह और तर्क के परे है। उस पर तर्क करना गार्गी का अति प्रश्न है।

शुनश्शेपाख्यान का शुनश्शेप आध्याप्म अर्थ में

मुमुक्ष मानव आत्माए है। वरूण अपरिमित विस्तार की अधिपति दिव्य शक्ति है। मातृभूता पृथ्वी और पितृभूत द्युलोक ने सब को अन्धकार के राजा के हाथ भौतिक सुखो के बदले बेच दिया है जगत के प्रपच रूपी यज्ञ में जीवन रूपी

यज्ञस्तम्भ के साथ मन, प्राण और अन्न की लिप्सा ने हमे पाशबद्ध कर दिया है। इसीलिए शुन.शेप वरूण से रोता पाशन्मुक्ति की अभ्यर्थना करता है। और अन्त मे बन्धनहीन हो ऋतम्भरा आदि प्रज्ञाओ को प्राप्त कर अधिमानस होता हुआ अतिमानस की कोटि तक पहुँच जाता है।

उपनिषदो की सवाद–कथाए अध्यात्म विद्या की प्राण है। इन सवादो मे जनमानस को आकृष्ट करने वाली सर्वाधिक आकर्षक बात यह है कि वह इतने गम्भीर दार्शनिक तथा आध्यात्मिक विषयो के प्रतिपादन मे हमारे प्राचीन महर्षियो की पर्युत्सुक अन्वेषण–वृति निरन्तर वहिरग तक सीमित न रहकर वस्तु के अन्तस्तत्व तक पहुँचने के लिए आतुर रहती है वृहदारण्योकोपनिषद् (२/११) मे एक अभिमानी ब्राह्मण गार्ग्य बालाकि वाराणसी नरेश अजातशत्रु के पास पहुँचता और दावे के साथ कहता है कि, मैं तुम्हे ब्रह्म का प्रत्यक्ष कराने मे समर्थ हूँ वह प्रत्येक शरीर मे, सूर्य मे, चन्द्रमा मे, विद्युत मे, आकाश मे, वायुमण्डल मे, अग्नि मे, जल मे और जल मे पडते प्रतिबिम्ब मे, धूप और छाँव मे, ध्वनि मे, प्रतिध्वनि मे , जागरण मे और जागने वाले की आँख मे अन्तर्व्याप्त पुरूष तत्व को ही ब्रह्म नाम देता है किन्तु राजा के सामने उसकी ज्ञान गरिमा चूर–चूर हो जाती है। और वह पुरूषत्व के सच्चे स्वरूप को तब जानता है जब समिरपाणि ही राजा की शिष्यता स्वीकार कर लेता है। ब्रह्म सचमुच आत्मानुभव के निरन्तर विकास के अतिरिक्त और आत्मबोध के अतिरिक्त और कुछ नही। यह सृष्टि की विविधता यह अनेकता तो सचमुच ऐसी ही है जैसे कही जलती आग से फूटती चिनगारियाँ दिशा–दिशा में फैल जायें, कोई मकडी अपने ही चारो ओर अपने ही उगले थूक से एक जाली सी बुन दे। आत्म बोध की समाप्ति भी इसी एक अनुभव मे जाकर होती है। यह सब चराचर जगत् मे सारे लोकलोकान्तर मानव दानव – किसी एक तत्व की बाह्यलीला है– एक ही आत्मा के बोध का विस्तार है।

छान्दोग्योपनिषद् (८/७/१२) मे आत्मा के स्वरूप की बडी मार्मिक विवेचना है– देवो मे इन्द्र और असुरो मे विरोचन प्रजापति के चरणो मे ३२ वर्षों तक विधिवत शिष्यवत बैठे कि वे आत्मा के स्वरूप को जान सके प्रजापति ने दोनो की परीक्षा ली– जब दो व्यक्ति परास्परापेक्षी होते है तो उनकी ऑखो मे पड रही प्रतिच्छाया ही क्या वह आत्मा नही होती है? विरोचन को जैसे आत्म लाभ हो गया। आत्मविभोर हो वह भाइयो के पास पहुँचा, और बताया, शरीर रक्षा ही सर्वस्व है यही आत्म विद्या का आरम्भ और अन्त है। किन्तु इन्द्र जानता था कि प्रजापति चकमा दे रहे है। ३२ वर्षो के चिन्तन मनन के बाद वह पुन· आचार्य के समीप गया। प्रजापति ने इस बार कहा– आत्मा शरीर मे नही है, ऑख मे पडती छाया मे नही– स्वप्न मे प्रत्यक्षवत दृष्ट कोई अभय अमरत्व है जिसे कुछ लोग ब्रह्म भी कह लेते है। इन्द्र को इससे कुछ सन्तोष अवश्य हुआ, किन्तु अभी वह देवो के समीप नही पहुॅच पाया था कि सन्शय ने उसे रोका 'आत्मा स्वप्न की तरह कोई अनित्य वस्तु नही हो सकती है।' ३२ वर्षो के बाद उसे पुन आचार्य ने आदेश दिया–'आत्मा के दर्शन मनुष्य गहरी नीद मे ही कर सकता है, उस नीद में जिसमे कि स्वप्नो का कोई नामोनिशान न रह गया हो। किन्तु इस शून्यता मे भी इन्द्र को सन्तोष न हुआ पॉच वर्ष और बीते। इस बार प्रजापति का दीक्षान्त कथन था– 'यह शरीर सचमुच मर्त्य है–मृत्यु का निधान है, किन्तु साथ ही अमर और अशरीर आत्मा का निवास स्थान भी । जब तक आत्मा इस शरीर से लिप्त रहती है, सुख और दुख का अनुभव करती है। यह परिज्ञान होते ही कि शरीर आत्मा का अपना धर्म नही है, वह एक ही क्षण मे ही सुख दुःख से ऊपर उठ जाती है।

आत्म तत्व को ही कही कही उपनिषदो मे प्राण तत्व भी कहा गया है यह प्राण ही वस्तुत उपासना की वस्तु है। इन्द्रियों की सामर्थ्य उसके समक्ष अति तच्छ है एक बार इन्द्रियो और प्राण मे विवाद हुआ कि कौन श्रेष्ठ है? निर्णय के लिए सबने प्रजापति को चुना। प्रजापति ने कहा–'मुझे क्यो व्यर्थ मे ही बीच मे लाते हो?

आपस मे ही निर्णय क्यो नही कर लेते? महान वह है जिसके शरीर छोड चले जाने पर शेष के लिए और भी बढ जाय।'

सबसे पहले वाणी विदा हुई। एक वर्ष तक रूठी रही, किन्तु शरीर का काम वैसे ही यथापूर्व चलता रहा जैसे कि पहले चलता आया था। आखिर मूक व्यक्ति तो भी जी ही लेते है।

ऑखे गयी, फिर कान चला गया, यहॉ तक मन भी चला गया। किन्तु इससे जीवन मे बाधाए ही आयी, मृत्यु नही। क्योकि अन्धे बहरे भी तो जी ही लेते है, और तो और विचार शक्ति के नष्ट हो जाने पर भी मनुष्य आत्म हत्या तो नही कर लेते। सभी इन्द्रियॉ पुन· लौट आयी। इससे उनमे कुछ विनम्रता तो अवश्य ही आयी। अब प्राण की बारी थी। उसके भी जाने की तैयारी की। पर जैसे कोई घोडा बलपूर्वक रस्सी को खीचकर भागने का प्रयास करे और जमीन मे गडा कीला इधर उधर उखडने लगे वही अवस्था इन्द्रियो की होने लगी। यही बात है कि शेष इन्द्रियो को प्राणनाम तो दिया जाता है। लेकिन वाणिया श्रोत्राणि तथा मनासि आदि बहुवचनान्त रूपो मे कोई नही कहता, किन्तु प्राण को प्राण न कहकर उसे 'प्राणा·' कहा गया।

'याज्ञवल्क्य–मैत्रेयी–सवाद' परमार्थिक सत्य के स्वरूप को उद्घाटित कर देने मे पूर्णरूपेण समर्थ है। प्रव्रज्या के समय याज्ञवल्क्य कात्यायनी और मैत्रेयी में सम्पत्ति का विभाजन करना चाहते है, किन्तु मैत्रेयी चौंककर कहती है–स्वामी। सम्पत्ति के इस बॅटवारे मे यदि आप मुझे धन से परिपूर्ण सारी पृथ्वी भी दे दे तो भी क्या मै उससे अमृत को आसानी से प्राप्त कर लूॅगी। याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया– धन–धान्य और सम्पत्ति से अमृत तो प्राप्त नही होगा किन्तु तुम्हारा जीवन वैसा ही हो जायेगा, जैसा प्राय· साधन वान लोगों का हो जाया करता है। मैत्रेयी ने कहा– तो मै यह सब लेकर फिर क्या करूगीं? 'इतने दिन अमृत खोज करके यदि आपने

कुछ पाया हो तो मुझे दो, बस उसी की दो बूँद चाहिए। मै आपसे मात्र उसी की याचना करती हूँ। और तब अन्तत याज्ञवल्क्य देवार्थ के विश्लेषण का सदेश दे, आटम तत्व की खोज का उपाय बताते है।

उद्दालक वारूणि और श्वेतकेतु सवाद मे आत्मतत्व की सूक्ष्मता और एक ही तत्व की विविध नामरूपता का वर्णन है बारह वर्षो तक विद्याध्ययन के पश्चात् श्वेतकेतु अतीव हर्षित हो उठा। अपने को अनूचान मान बैठा। किन्तु उसका ज्ञानाभिमान उस समय चूर्ण–चूर्ण हो गया जब पिता ने उससे ब्रह्म विषयक प्रश्न किया जिसके जानने से सबकुछ ज्ञात हो जाता है। श्वेतकेतु मौन साधे रहा। ब्रह्म के बारे मे कुछ न बता सका। अन्त में पिता ने उसे उपदिष्ट किया। जिस प्रकार तरह–तरह के फूलो से रस लेकर मधुमक्खिया मधु का निर्माण करती है और सब रसो को एक कर देती है– उसी प्रकार देहान्त के समय उस आदि सत् मे विलय के अनन्तर प्राणिमात्र मे दृष्ट वह पूर्वविविधता पुनः दृष्टिगत नही होती जैसे कि मधु मे सम्पृक्त विभिन्न पुष्पो के सुरभि और माधुर्य को अलग कर सकना असम्भव होता है उसी प्रकार प्राणी को– शेर, चीता, भेडिया, पक्षी, कीडे –मकोडे कुछ भी हो मूलत सब एक ही थे। और एक ही हो जायेगे।

अधीत–ग्रन्थ–सूची

१ **वैदिक साहित्य एव सस्कृति** आचार्य बलदेव उपाध्याय, शारदा सस्थान,३७ बी० रवीन्द्रपुरी, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी पचम स०१६८०

२ **साहित्य एव सस्कृति :** डा० निर्मला भार्गव, देवनागर प्रका० जयपुर, २,१६७२

३ **वैदिक साहित्य** प० रामगोविन्द त्रिवेदी, भारतीय ज्ञानपीठ काशी, दुर्गाकुण्ड रोड वाराणसी ४५८

४ **वैदिक साहित्य की रूपरेखा**–छा० रसिक बिहारी जोशी एव डा० जय किशन प्रसाद खण्डेलवाल, साहित्य निकेतन कानपुर

५ **वैदिक माइथालोजी** · अनु० रामकुमार राय, चौखाभा विद्या भवन, वाराणसी १६६१

६ **सस्कृत साहित्य का सक्षिप्त इतिहास** वाचस्पति गेरोला, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी,१६६७

७ **हिस्टी आप सस्कृत निदरेवर**– आ० बलदेव उपाध्याय, शारदा मन्दिर काशी

८ **हिस्टी आफ सस्कृति लिटरेचर**–ए०ए० मैक्डानल, मोतीलाल बनारसी दास, नयी दिल्ली

६ **ए हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर**– वा०१, पार्ट१,एम० विण्टर नित्ज, युनिवर्सिटी आफ कोलकत्ता,१६५६

१० **ए हिस्ट्री आफ सस्कृत लिट्रेचर** एम मैकडानल, इलाहाबद१६२६

११ **ए हिस्ट्री ऑफ एन्सिएण्ट सस्कृत लिटरेचर** मैक्सूमूलर, चौ०स० सिरीज आफिस, वाराणसी १६६८

१२ **रिलीजन आफ द वेद** ब्लूमफील्ड , लन्दन १६५३, न्यूयार्क १६०८

१३ **ऋग्वेदिक लिजेण्ड थ्रू द एजेए** . एच एल० हरियप्पा, हिसेडक्सन सिरीज,१६५३

१४ **इन्साइक्लोपीडिया ऑफ रिलिजन इन वेदिक एथिक्स** आर० आर० मरेर, न्यूयार्क १६५३

१५ **ओरिजिन एण्ड डेवलपमेन्ट आफ रिलिजन इन वेदिक लिटरेटर** पी०एस० देशमुख, आक्सफोर्ड, १६५३

१६ **आर्कटिक होम इन द वेदाज** बालगगाधर तिलक–क, बम्बई,१६५६ स,कलकत्ता १६५६

१७ **वैदिक आख्यान** गगाधर राय–चौ० भवन, वाराणसी।

१८ **ऋग्वेद सहिता मण्डल** १ वाल्यूम सायणाचार्य, एन०एस०सन्त लोक स्माकर मदिर ,पूना १६३३

१६ **ऋग्वेदसहिता** ७ भाग सायणाचार्य सा० विश्वबन्धु बी०बी०आर० आई १६६३–६४

२० **शतपथ ब्रम्हण :** सायण तथा हरीश्वरमिश्र भाष्य सहित ५ भाग लक्ष्मी वेकटेश्वर प्रेत, बम्बई,१६४०

२१ **ऐतरेयब्राम्हण** ख० १–२ सुधाकर मालवीय–तारा पब्लिकेशन वाराणसी।

२२ **ऐतरेयब्राम्हण .** सायणभाष्यसहित–आनन्दाश्रम सस्कृत ग्रथावली १६३०

२३ **शतपथब्राम्हण भाग–१** गगाविष्णु श्रीकृष्णदास मलिक–लक्ष्मी वेकटेश्वर स्त्रीम प्रेस, बम्बई १६४०

२४ **शतपथब्राम्हण** वेवर सम्पादित– बर्लिन लन्दन १६५६

२५ **ऋग्वेद** प० गगा सहायक शर्मा–सस्कृति साहित्य प्रकाशन दिल्ली १६७६

२६ **ऋग्वेदका हिन्दी भाष्य** स्वामी दयानद सरस्वती नेशनल पब्लिशिग हाउस दिल्ली–७

२७ **ऋग्वेदानुक्रमणी** आचार्य शौनक

२८ **निरूक्त .** शिवनायण शास्त्री, इण्डलोजिकल बुक हाउस, वाराणसी दिल्ली।

२६ **निरूक्तम्** खण्ड१, उमाशकर शर्मा, चौ०वि०भवन वाराणसी १६८३

३० **ऋग्वेदिक आर्य** राहुल सास्कृत्यायन –किताब महल, इलाहाबाद तथा दिल्ली १६५७

३१ **वृहददेवता :** रामकुमार राय चौखम्भा सस्कृत सस्थान, वाराणसी

३२ **महाभारत भाग** १–४ महर्षि श्रीकृष्ण द्वैपायन–गीताप्रेस, गोरखपुर

३३ **महाभारत ख** १–२, जयदयालगोयन्दका, गोविन्द भवन कार्यालय गोरखपुर

३४ **सक्षिप्त महाभारत :** चिन्तामणि विनायक वैध–रामचन्द्र गोविन्द दास एण्ड सन्स, वैभव प्रस, बम्बई–१६२१

३५ **नीतिमंजरी** द्या द्विवेदी—शालिग्राम शर्मा हरिहर मण्डल कालभैरव बनारस सिटी

३६ **वैदिक माइथालोजी** ए०ए० मैक्डानेल, बाम्बे एजूकेशन सोसाइटी प्रेस,१९८९

३७ **निरक्त दो खण्ड** दुर्गाचार्य कृत वृत्ति समेत—आनदाश्रम, पूना १९२१—२६

३८ **महाभारत** बी०एस० भण्डारक—रिसर्च इन्स्टीट्यूट , पूना

३९ **ऋग्वेदसहिता** . अनु०एच०एच०विल्सन,७भाग—लन्दन १९५०,८८

४० ————————विश्वेश्वरानद वैदिक रिसर्च इ० होशियारपुर,१९२६ १९६३—६५

४१ **ऐतरेय ब्राम्हण** हरिनारायण आप्टे—आनदाश्रम सस्कृत ग्रन्थावली पूना १९३०—३१

४२ **रिलिजन आफ वेद** ओल्डेन वर्ग, लदन १९२५

४३ **ऋग्वेदभाष्यभूमिका** हरिदत्त तडेकर आगरा १९७१

४४ **काठकसहिता** सातवलेकर—स्वाध्याय मण्डल, आन्ध्र १९४३

४५ **छान्दोग्योपिनिषद** प्रो० रघु श्रीवास्तव तथा लोकेश चन्द्र नागरपुर, १९५४

४६ **साण्डय ब्राम्हण** चौ० सस्कृत सिरीज,१९३५—१९३६

४७ **तैत्तिरीय ब्राम्हण** आनदाश्रम ग्रन्थावली,१९३४मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली १९६४

४८ **निघण्टु पदकोष** कलकत्ता १९५२

४९ **पचविश्वब्राम्हण** केन्द्रीय सस्कृत विद्यापिठ तिरूपति १९६७

५० **मैत्रायाणी सहिता** सातवेलकर— आध्धसतारा १९४२

५१ **वैदिक देवशास्त्र** · डा० सूर्यकान्त—मेहरचन्द्र लक्ष्मणदास, नयी दिल्ली१९६१

५२ **वैदिक देवता** उद्भव एवविकास, गयाचरण त्रिपाठी, भारतीय विद्याप्रकाशन दिल्ली, वाराणसी

५३ **वैदिक गाड्स** : डा० रेले, ऑक्सफोर्ड १९५१

५४ **सस्कृत साहित्य का समीझात्मक इतिहास** डा० कपिलदेव द्विवेदी

५५ **सस्कृति साहित्य की प्रवृत्तियॉ** डा० जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाहन विनोद पुस्तक मदिर आगरा।

५६ **वैदिक वाड्.मय का इतिहासः** डॉ० सूर्यकान्त मेहरचन्द्र लक्ष्मणदास नयी दिल्ली

५७ **वैदिक वाड्.मय का इतिहासः** भगवाददत्त—वैदिक अनुसधान मण्डल माडल टाउन, पजाब,

५८ **वैदिक इण्डेक्स** मेक्डानेल तथा कीथ–मोतीलाल बनारसी दास चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी

५९ **वैदिक कोष** हसराज १९३६

६० **वैदिक पदानुक्रमकोष** . स० विश्वबन्धु शास्त्री, १६ भाग विश्वेश्वरानद वैदिक रिसर्च इन्स्टीट्यूट, होशियारपुर १९५९

६१ **वैदिक बिब्लियोग्राफी** प्रथम भाग–आर०एन० दाण्डेकर कर्नाटक पब्लिशिग हाउस १९४६

६२ **वैदिक बिब्लियोग्राफी** · दूसरा भाग–आरएन० दाण्डेकर, पूना विश्वविद्यालय, १९६१

६३ **वैदिक कोश** : सूर्यकान्त–बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय १९६३

६४ **हिम्न्स आफ द ऋग्वेद** . अनु० आर०टी०एच० ग्रिपिथ दो, भाग चौ० सस्कृत सिरीज, चतुर्थ स० १९६३

६५ **महाभारत की नामानुक्रमणिका** : हिन्दी अनु०सहित, रामनरायण लाल इलाहाबाद, १९४६–१९५१

६६ **डिस्कवरी ऑफ इण्डिया** प० जवाहरलाल नेहरू

६७ **मिसलेनियस एस्सेज** एच०टी० कोलब्रुक

६८ **एथिक्स ऑफ इण्डिया** वा८, हाप्किन्स